फ़रवरी, १६३३

वर्ष ११, खण्ड १
सं० ४, पू० सं० १२४

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

संगीत सौरभ

के० मणीलाल एण्ड को०,

१७३ हरीसन रोड, कलकत्ता

सोना, चाँदी और जवाहिरात का ज़ेवर

मीनाकारी का ज़ेवर

GOLD — SILVER
JEWELLERY
K. MANILALL & Co.
173. HARRISON ROAD
CALCUTTA
SEND 2 AS. FOR CATALOGUE.

व्यापार के लिए ३ दिसम्बर १६३२ का पत्र

के० सिद्दालिङ्गाया लिखते हैं—"पिछली साल आपकी जड़ी से बहुत अच्छा फल मिला एक जड़ी और भेजिए।" इन्हीं महात्मा लामायोगी से तिब्बत की कन्दराओं और हिमालय की गुफाओं में ३७ साल भ्रमण कर यह जड़ी और तान्त्रिक कवच मिला है, जिससे नीचे लिखे सब कार्य ज़रूर सिद्ध होंगे, इसमें सन्देह नहीं। ज़रूरत वाले मँगावें।

विशुद्ध प्रेम—के लिए इससे ज़्यादा आज़माई हुई कोई चीज़ संसार में नहीं। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए मूल्य ३॥); (२) रोग से छुटकारा—पुराना बुरे से बुरा असाध्य कोई भी रोग क्यों न हो, इससे शर्तिया आराम होता है, मूल्य ३॥) ; (३) मुक़द्दमा—चाहे जैसा पेचीदा हो, मगर इससे शर्तिया जीत होगी मूल्य ३॥) ; (४) रोज़गार-तिजारत में लाभ न होता हो, हमेशा घाटा होता हो, इससे उनका रोज़गार बढ़ेगा और लाभ होगा मूल्य ३॥) ; (५) नौकरी—जिनकी नौकरी नहीं लगती हो, बेकार बैठे हों, या हैसियत की नौकरी न मिलती हो, ज़रूर होगी मूल्य ३॥); (६) परीक्षा—प्रमोशन में इससे ज़रूर कामयाबी मिलेगी। विद्यार्थी और नौकरपेशा ज़रूर आज़माइश करें, मूल्य ३॥); (७) तन्दुरुस्ती के लिए यह अपूर्व है, थोड़े ही समय में स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ता है, मूल्य ३॥)

मँगाते वक़्त अपना नाम, काम ज़रूर लिखें। १ जड़ी का मू० ३॥), २ जड़ी का ६), डाक-ख़र्च ।=) अलग। एक जड़ी से सिर्फ़ एक ही काम होता है।

पता—विजय लौज (से० डी), पो० सलकिया, हवड़ा

पागलपन की दवा

डॉ० डब्लू० सी० रॉय, एल० एम० एस० की ५० वर्ष से स्थापित मूर्च्छा, मृगी, अनिद्रा, न्यूरस्थेनिया के लिए भी मुफ़ीद है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि—"मैं डॉ० डब्लू० सी० रॉय की पागलपन की दवा से तथा उसके गुणों से बहुत दिनों से परिचित हूँ।" मूल्य ५) फ़ी शीशी।

पता—एस० सी० रॉय एण्ड कं०
१६७।३ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता

तार का पता :—"Dauphin" कलकत्ता

विविध विषय

चित्र-सूची

चौधरी सोप्स
CHAUDHURY SOAPS
P. DAYAL

शृङ्गार

FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD

[चित्रकार—श्री० भुवन, बी० ए०
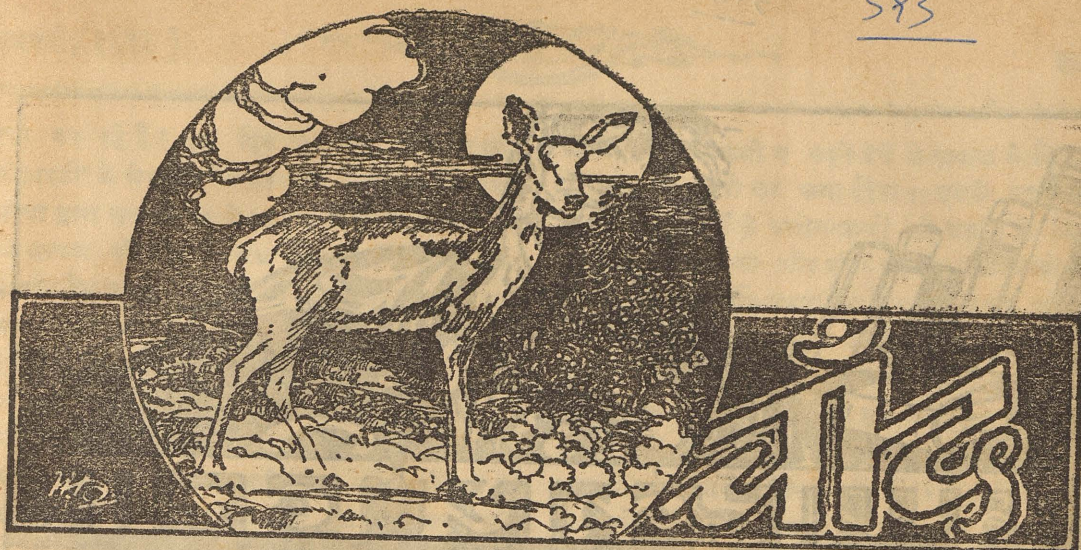
आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | फ़रवरी, १९३३ | सं० ४, पू० सं० १२४

ओ पीलेपन !

[प्रो० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

ओ पीलेपन !
तुमसे ही तो जीवित है मुकुलित वसन्त का मञ्जुल यौवन,
पङ्खड़ियों में शयित बेन छूते हो नव पराग के मधुकन,
अन्य रँगों के साथ कर रहे, इन्द्र-धनुष का तिरछा चुम्बन,
प्राची करती है सज्जित तुमसे प्रिय रवि का रञ्जित आसन ;
ओ पीलेपन !

पल्लव में जाकर समाप्त करते हो उसका छोटा जीवन !
विद्युत में हँस, रुला रहे हो, दर्शन के अभिलाषी नव घन,
सुप्त नेत्र में हँसते आकर, स्वर्ण स्वप्न का लेकर वाहन,
लपटों के हाथों से छूकर, भस्म बनाते हो जग के तन,
ओ पीलेपन !!

स्वर्ण तुम्हारे ही द्वारा मेरे उर का है नव आभूषन
श्याम-मुरारी के कटि के पट का करते रहते हो शासन !
नव-परिणीता की उँगली को चूमा करते हो प्रियतम बन ;
आओ, मेरे यौवन के कुसुमों का तो कर लो आलिङ्गन !
ओ पीलेपन !!!

फ़रवरी, १९३३

विश्वव्यापी अर्थ-सङ्कट

पिछले कई वर्षों से संसार की आर्थिक परिस्थिति जैसी भीषण और विचित्र हो गई है, वैसी आधुनिक इतिहास-काल में और भी कभी हुई थी, यह नहीं कहा जा सकता। अब तक तो लोग यही जानते थे कि जब अवर्षण या किसी अन्य प्रकार के दैवी प्रकोप के कारण पृथ्वी की पैदावार घट जाती है, तो अकाल पड़ जाता है और साधारण लोगों को भूखों मरना पड़ता है, परन्तु आजकल सुनने में आता है, कि चूँकि पिछले तीन-चार वर्षों में पैदावार बहुत अधिक हुई है और कारख़ानों में बनने वाले माल का परिमाण भी बहुत बढ़ गया है, इसलिए लोगों को अन्न-वस्त्र का अभाव हो रहा है! पहले ज़माने में लोग मँहगी के कारण कष्ट पाते थे, परन्तु इस समय सस्ती के कारण मर रहे हैं! आजकल एक ओर तो करोड़ों मनुष्य भूखों मर रहे हैं अथवा भरपेट रोटी नहीं पाते और दूसरी ओर असंख्य मन अन्न तथा अन्य खाद्य-सामग्री खेतों में ही अनावश्यक समझ कर नष्ट कर दी जाती है। एक ओर लोग चिथड़े लपेटे फिरते हैं तथा शीत में ठिठुरते हैं और दूसरी ओर कपड़ा बनाने के हज़ारों कारख़ाने, इसलिए बन्द पड़े हैं या आधा चौथाई काम करते हैं, कि उनके बनाए हुए माल की बाज़ार में माँग नहीं है!

इस विचित्र परिस्थिति के अनेक कारण बतलाए जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि लोगों के पास रुपए नहीं हैं, इसीलिए वे पहले की तरह जीवन-निर्वाह की आवश्यक सामग्री नहीं ख़रीद सकते। परन्तु प्रश्न यह पैदा होता है कि आख़िर रुपए चले कहाँ गए? यदि यह परिस्थिति किसी एक देश की होती तो कल्पना की जा सकती थी कि वहाँ के रुपए किसी अन्य देश में चले गए; परन्तु आजकल तो संसार के प्रत्येक देश में यह सस्ती, बेकारी और भूखों मरने का रोना मचा हुआ है। अमेरिका आधुनिक काल में संसार का सब से अधिक वैभवशाली देश समझा जाता है और संसार के २२० करोड़ पौण्ड सोने का एक बड़ा भाग उसी के पास है; परन्तु अमेरिका में ही इस समय सबसे अधिक बेकारी पाई जाती है और लाखों मनुष्य सरकारी सहायता अथवा अन्य लोगों के दान के भरोसे प्राण-

रक्षा कर रहे हैं! कुछ दिन हुए वहाँ की 'रेड क्रॉस सोसाइटी' के चेयरमैन ने प्रकाशित किया था कि उनकी संस्था द्वारा सन् १९३२ के आरम्भ से दो करोड़ व्यक्तियों को सरकार की ओर से अन्न वितरण किया जा चुका है और डेढ़ करोड़ व्यक्तियों को सरकारी कपास से बना कपड़ा दिया जाने वाला है। रेड क्रॉस वालों का अनुमान है कि जितने लोगों को यह कपड़ा बाँटा जायगा, उससे क़रीब पचगुने लोग वस्त्रों के बिना कष्ट पा रहे हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दुरवस्था का वास्तविक कारण रुपए का अभाव नहीं है। यदि अमेरिका की बात छोड़ दें और केवल भारत की दशा पर विचार करें, तो यहाँ भी रुपए की कमी सिद्ध नहीं होती। पहले सरकार को क़र्ज़ लेने की आवश्यकता पड़ने पर ६-६॥ रुपए प्रति सैकड़ा ब्याज देना पड़ता था, पर अब उसे ५ प्रति सैकड़े पर ही ज़रूरत से अधिक रुपया मिल रहा है। बैङ्कों में अमानती रुपए पर पहले जितना सूद दिया जाता था, अब उससे कम दिया जा रहा है। इतने पर भी लोग उनमें इतना रुपया जमा कर रहे हैं कि बैङ्क वाले सूद की दर और भी घटाने का विचार कर रहे हैं। पहले सरकार पोस्ट ऑफ़िस के 'कैश सर्टीफ़िकेट' पर ६ सैकड़ा सूद देती थी, अब उसे घटा कर उसने ५॥ सैकड़ा कर दिया है। परन्तु अब भी लोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक 'कैश सर्टीफ़िकेट' ख़रीद रहे हैं। इन सब बातों से तो यही प्रकट होता है कि देश का रुपया कहीं चला नहीं गया है, वरन् उसका चलन रुकता जा रहा है और वह बैङ्कों तथा सरकारी ख़ज़ानों में इकट्ठा होता जा रहा है, जिससे साधारण लोगों को जीवन-निर्वाह की ज़रूरी चीज़ें ख़रीदने में दिक़्क़त पड़ रही है।

रुपए के इस प्रकार एक जगह इकट्ठे हो जाने और उसके फल से समस्त संसार के व्यापार में उथल-पुथल मच जाने का मुख्य कारण गत यूरोपीय महायुद्ध है। उसमें यूरोप के समस्त युद्धशील देशों को बहुत अधिक ख़र्च करना पड़ा था, और जब उनका भण्डार ख़ाली हो गया, तो उन्होंने अमेरिका से ऋण लेकर अपना काम चलाया। यह ऋण अधिकांश में युद्ध-सामग्री तथा अन्य आवश्यकीय वस्तुओं के रूप में लिया गया था। इस घटना के फल-स्वरूप अमेरिका एकाएक संसार के समस्त देशों की अपेक्षा धनवान हो गया और उसने अपने ख़ज़ाने में कमी न पड़ने देने के ख़याल से विदेशों के माल पर भारी कर लगा दिया। इसके साथ ही उसने अपने यहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए भी चेष्टा आरम्भ की और शीघ्र ही वह स्वावलम्बी हो गया। अमेरिका कृषि-प्रधान देश है। वहाँ इतना अधिक अन्न और अन्य चीज़ें उत्पन्न होती हैं कि अपना ख़र्च चला लेने के बाद भी बहुत सी खाद्य-सामग्री तथा अन्य वस्तुएँ बच रहती हैं। पहले इस बचे हुए माल को यूरोपियन देश ख़रीद लेते थे, पर इस समय वे उसके ऋण-भार से इतने अधिक दबे हैं कि और अधिक माल ले सकने की उनमें सामर्थ्य ही नहीं है। इस प्रकार ग्राहकों के अभाव से अमेरिका को अपना माल बहुत सस्ते दर से बेचना पड़ता है और उसके कारण समस्त संसार के बाज़ार का भाव बिगड़ जाता है।

अमेरिका से भी कठिन समस्या जर्मनी की है। वह युद्ध में पराजित तो हुआ ही, साथ ही वार्सेलीज़ की सन्धि द्वारा मित्र-राष्ट्रों ने उसके सर पर हर्जाने का इतना अधिक बोझ लाद दिया कि बेचारे का दम घुटने लगा। महायुद्ध में भी उसे अन्य समस्त राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक ख़र्च करना पड़ा था, जिससे उसकी आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी। पर कुछ भी हो, वह ऋण चुकाने को बाध्य था। अन्यथा फ़्रान्स नङ्गी तलवार लिए उसके सर पर खड़ा था। ऐसी परिस्थिति में उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति कारख़ानों में लगा कर तथा कम से कम लागत में माल तैयार करके सस्ते से सस्ते भाव में बेचना पड़ा। उसकी प्रतियोगिता कर सकना अन्य देशों के कारख़ानों के लिए असम्भव हो गया। उनमें कितनों ही को अपना कारबार बन्द कर देना पड़ा और कितनों ही को घाटा सह कर माल बेचना पड़ा।

वस्तुओं के मूल्य घटने का एक और कारण अर्थ-शास्त्र-विशारद बतलाते हैं। गत यूरोपीय महायुद्ध के समय प्रत्येक वस्तु का दाम इतना अधिक बढ़ गया तथा उनकी खपत इतनी अधिक होने लगी कि कारख़ाने वालों तथा अन्य व्यवसाइयों ने कल्पनातीत लाभ उठाया और अपने कारबार की ख़ूब वृद्धि की। इसके फल-स्वरूप कच्चे माल की माँग भी उसी हिसाब से बढ़ी और कृषि-प्रधान देशों में उसकी पूर्ति के लिए विशेष रूप से चेष्टा की जाने लगी। इस प्रकार संसार में व्यवसाय-

वाणिज्य की उन्नति की बाढ़ सी आ गई और लोग बिना इस बात का विचार किए कि ऐसी अवस्था कब तक क़ायम रह सकती है, अधिक से अधिक माल बनाने और बेचने में लग गए। इस चेष्टा के फल-स्वरूप सन् १९२६ से १९२८ तक संसार के व्यवसाय की ऐसी काया-पलट हुई, जैसी पिछले ज़माने में देखने में नहीं आई थी। कारख़ाने वालों ने पुरानी मैशीनों और पुराने तरीक़ों को त्याग कर नवीन आविष्कृत मैशीनों से काम लेना आरम्भ किया, जिससे थोड़ी मज़दूरी और कम ख़र्च द्वारा पहले की अपेक्षा अधिक माल तैयार होने लगा। खेती में भी नए-नए यन्त्रों और वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग आरम्भ हुआ, जिससे पैदावार बहुत बढ़ गई। यद्यपि व्यवसायिक क्षेत्रों में इस प्रकार की उन्नति और परिवर्तन सदा से होता आया था, परन्तु इस बार परिवर्तन की गति ऐसी तीव्र हो गई और वह ऐसे व्यापक रूप से हुआ कि संसार की उत्पत्ति में अकस्मात् बड़ा अन्तर पड़ गया। आरम्भ में तो माल बनाने वालों ने चेष्टा की कि वे परस्पर में सहयोग करके माल का दाम पूर्ववत् स्थिर रक्खेंगे, पर साधारण लोगों के पास रुपए का अभाव होने से यह चेष्टा सफल न हो सकी। फल यह हुआ कि इस समय प्रत्येक देश में सब तरह के माल के गोदाम भरे हुए हैं, पर उसका कोई ख़रीदार नहीं है।

यूरोप और अमेरिका के राजनीतिज्ञ, जिनकी दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही रहती है, इस अर्थ-सङ्कट का कुछ और ही कारण बतलाते हैं। उनका कथन है कि भारत और चीन आदि एशियाई देशों में बहुत सा सोना और चाँदी लोगों ने ज़ेवरों के रूप में फँसा रक्खा है अथवा ज़मीन में गाड़ रक्खा है, इसीलिए संसार में रुपए की कमी हो गई है। इन लोगों के मतानुसार भारत में सात-आठ अरब रुपए का सोना है, जिसमें से अभी केवल एक अरब का सोना बाहर गया है। चाँदी का बहुत बड़ा भण्डार भी इन देशों में बतलाया जाता है। हम नहीं कह सकते कि यूरोपियन राजनीतिज्ञों के इस कथन में कुछ सचाई है अथवा वे अपनी दूषित अर्थ-नीति का लाञ्छन मिटाने के लिए या इन ग़रीब देशों को और भी लूटने के लिए इस तरह की बातें करते हैं। परन्तु यह अवश्य सच है कि पिछले कुछ वर्षों से इन एशियाई देशों में यूरोपियन देशों के साम्राज्यवाद तथा उनकी अपहरण-नीति के विरुद्ध बहुत अधिक घृणा तथा विद्रोह का भाव फैल रहा है तथा वे यथाशक्ति इनके आर्थिक दासत्व से छूटने की चेष्टा कर रहे हैं। इसी प्रवृत्ति ने चीन और भारत में विदेशी माल के बहिष्कार आन्दोलन को जन्म दिया है और इसके फल-स्वरूप इन देशों के कल-कारख़ानों की अभूतपूर्व उन्नति होने लगी है। अब इन देशों में जीवन निर्वाह की साधारण चीज़ों के बनाने के बहुत से कारख़ाने खुल गए हैं और वे प्रायः विदेशी कारख़ानों के मुक़ाबले की चीज़ें तैयार कर रहे हैं। इस कारण कपड़े, दियासलाई, साबुन, सेण्ट, खिलौने, सिगरेट आदि अनेक चीज़ों का, जिनके द्वारा यूरोप वाले अब तक करोड़ों रुपए इन देशों से खींच ले जाते थे, आना लगभग बन्द हो गया है या बहुत घट गया है।

इस अर्थ-सङ्कट के कुप्रभाव से बचने के लिए विभिन्न देश जिस प्रकार स्वार्थपरता से काम ले रहे हैं और दूसरे देशों के माल पर भारी कर लगा कर अपने ही माल को बेचने तथा लाभ उठाने की चेष्टा कर रहे हैं, उससे अवस्था और भी गुरुतर होती जाती है। उदाहरणार्थ, अगर जर्मनी भारत से जूट और अलसी ख़रीदता है तो उससे भारत के किसानों के पास रुपया आता है। उस रुपए से वे इङ्गलैण्ड का कपड़ा ख़रीदते हैं। इङ्गलैण्ड के लोग शायद उस रुपए से स्पेन वालों की बनाई शराब लेंगे, स्पेन वाले अमेरिका से फल मँगाएँगे और अमेरिका जर्मनी से रङ्ग ख़रीदेगा। इस प्रकार एक ही रुपए से कई देशों की चीज़ों का परस्पर में विनिमय हो गया और इस तरह जर्मनी का रुपया फिर जर्मनी में ही पहुँच गया। परन्तु यदि जर्मनी भारत के किसानों से पाट या अलसी न ख़रीदे तो भारत के किसानों, इङ्गलैण्ड के कपड़ा बुनने वालों, स्पेन के शराब बनाने वालों, अमेरिका के फल पैदा करने वालों और जर्मनी के रङ्ग बनाने वालों का माल घर में ही रक्खा रहेगा और इन चीज़ों को तैयार करने वाले श्रमजीवी बेकार हो जायेंगे। आजकल यही दशा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय-क्षेत्र में सर्वत्र देखने में आ रही है। प्रत्येक देश चाहता है कि वह दूसरे देशों के हाथ अधिक से अधिक माल बेच सके और उनका माल स्वयं कम ख़रीदे, जिससे उसका सोना उसे मिल जाए। नतीजा यह होता है कि कोई किसी का माल नहीं ख़रीदता और

तमाम कारबार तथा व्यापार दिन पर दिन मन्दा पड़ता जाता है।

इस मन्दी और कारबार की सुस्ती का सब से बुरा नतीजा कारख़ानों और खेतों के मज़दूरों को भोगना पड़ता है। धनवानों और मालिकों की तो केवल नफ़े की हानि हो रही है, पर श्रमजीवियों के सामने तो रोटियों का सवाल है। जब कारबार अच्छी तरह चलता रहता है, तब भी उन ग़रीबों का गुज़ारा मुश्किल से होता है, तो इस मन्दी की हालत में उनकी कैसी दुर्दशा होती होगी, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। इसके लिए हमको कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है, स्वयं हमारे देश में नौकरी और मज़दूरी की कमी से लाखों व्यक्ति जैसी असुविधा भोग रहे हैं, उसी से हम स्थिति की वास्तविकता को भली-भाँति समझ सकते हैं। जिस कार्यालय में एक या दो वर्ष पहले सौ आदमी काम करते थे, वहाँ अब केवल दस-बीस आदमी दिखलाई देते हैं। अकेले रेलवे-विभाग से सात लाख से अधिक व्यक्ति निकाले गए होंगे। सरकारी दफ़्तरों में भी निरन्तर नौकरों की संख्या घटाई जा रही है। इस प्रकार जो लोग नौकरी से अलग होते हैं, उनको महीनों तक इधर-उधर मारे-मारे फिरने पर भी दूसरा काम नहीं मिलता तथा उनको और उनके परिवार वालों की अकथनीय दुर्दशा होती है। कितने ही लोग किसी छोटे-मोटे व्यापार या दुकानदारी का सहारा लेते हैं, पर उसमें भी गुञ्जायश न होने तथा अनुभव की कमी से पास की थोड़ी सी पूँजी को भी गँवा बैठते हैं। यही दशा इस समय संसार के प्रत्येक देश की हो रही है और जहाँ देखिए, बेकारों की एक बड़ी फ़ौज 'हाय नौकरी, हाय मज़दूरी, हाय काम' पुकारती फिरती है। नीचे हम विभिन्न देशों के बेकारों की एक सूची देते हैं, जिससे पाठकों को परिस्थिति की गम्भीरता का किञ्चित ज्ञान हो सकेगा। यह अङ्क सन् १९३० के अन्त के हैं:—

देश	संख्या
अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र) ...	९०,००,०००
दक्षिण अमेरिका ...	४०,००,०००
मेक्सिको ...	६,००,०००
जर्मनी ...	४५,००,०००
इङ्गलैण्ड ...	४०,००,०००
पोलैण्ड ...	४,००,०००
ऑस्ट्रिया ...	४,००,०००
इटली ...	१०,००,०००
स्पेन ...	४,००,०००
जैकोस्लोवेकिया ...	४,००,०००
जापान ...	१५,००,०००
यूगोस्लैविया ...	२,५०,०००
बेलजियम ...	१,५०,०००
डेनमार्क ...	१,००,०००
हॉलैण्ड ...	१,२०,०००
स्वीज़रलैण्ड ...	१,००,०००
क्यूबा ...	५,००,०००
कैनेडा ...	३,००,०००
मध्य अमेरिका ...	१०,००,०००

इस हिसाब से मालूम होता है कि सन् १९३० के अन्त में बेकार मज़दूरों की संख्या क़रीब ३ करोड़ थी। तब से यह संख्या बराबर बढ़ती ही जाती है और आज-कल अनुमानतः ६ करोड़ से कम न होगी। पर यह हिसाब भी संसार में फैली हुई वास्तविक बेकारी और अर्थकष्ट को प्रकट नहीं करता। प्रथम तो इसमें उन पेशों के बेकारों की गणना नहीं की गई है, जिनके मज़दूरों का कोई सङ्घ वा सङ्गठन नहीं है। दूसरे भारत और चीन जैसे देशों का, जिनमें संसार की आधी आबादी निवास करती है और जहाँ बेकारी तथा दरिद्रता का सब से अधिक प्रभाव पाया जाता है, इसमें ज़िक्र ही नहीं किया गया है। यदि इन सबका हिसाब लगाया जाय, तो निश्चय ही यह संख्या दुगुनी-तिगुनी जान पड़ेगी।

यद्यपि पश्चिमी देशों में इन बेकार लोगों की ख़बर भी सरकार लेती है और उनको सार्वजनिक भण्डार से इतनी सहायता दी जाती है, जिससे उनकी प्राण-रक्षा हो सके, तो भी यह स्थिति किसी दृष्टि से सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती और बेकार लोगों को तरह-तरह के भयङ्कर कष्ट भोगने पड़ते हैं। हाल ही में इङ्गलैण्ड और अमेरिका में जिस प्रकार के 'हङ्गर-मार्च' (बुभुक्षा-प्रदर्शन) हुए हैं, उनसे उन लोगों की दुर्दशा बहुत-कुछ प्रकट होती है और यह भी मालूम पड़ता है कि वर्तमान परिस्थिति का अन्त दिखलाई न देने से लोगों का धैर्य छूटता जाता है।

इस अवस्था का प्रतिकार किस प्रकार हो सकता है, इसके सम्बन्ध में जितने मुँह उतनी ही बातें सुनने

को मिलती हैं। जिन देशों को अमेरिका का क़र्ज़ा चुकाना है, वे कहते हैं कि जब तक समर-ऋण रद्द न कर दिया जायगा अथवा उसमें विशेष कमी न की जायगी, तब तक इस अवस्था का सुधार नहीं हो सकता। अमेरिका कहता है कि यूरोपियन देश आजकल अपनी आमदनी का एक बहुत बड़ा अंश युद्ध-सामग्री और सैन्य-शक्ति की वृद्धि में ख़र्च कर रहे हैं, यदि वे उसे बन्द कर दें या एकदम घटा दें तो बहुत रुपया बच सकता है और बेकारों के लिए ख़र्च दिया जा सकता है। व्यवसायिक क्षेत्र के मुखियाओं का मत है कि जब तक पूर्वीय देशों की क्रय-शक्ति नहीं बढ़ाई जायगी और किसी उपाय से उनको अपना सोना-चाँदी निकाल कर यूरोपियन कार-ख़ाने वालों का माल ख़रीदने को बाध्य नहीं किया जायगा, तब तक कुछ नहीं बन सकता। एक अन्य दल वालों का कहना है कि लोग अर्थ-सङ्कट की पुकार से घबरा कर अपना ख़र्च घटा रहे हैं और रुपए को दबा कर रख रहे हैं, इसीसे परिस्थिति विशेष बिगड़ती जाती है।

पर इस प्रकार केवल अपने मतलब की बात कहने से काम नहीं चल सकता, यह समझ कर संसार के प्रधान-प्रधान देशों ने आगामी अप्रैल या मई महीने में लण्डन में विश्व-अर्थ-नीति सम्मेलन की योजना की है। इस सम्मेलन में इस प्रश्न पर विचार किया जायगा कि संसार की वर्तमान अस्वाभाविक आर्थिक अवस्था का प्रतिकार किस प्रकार किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कितने ही लोगों ने अनेक प्रस्ताव तैयार किए हैं, जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—(१) जर्मनी से युद्ध का हर्जाना लेना बन्द कर दिया जाय। क्योंकि इससे जर्मनी व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में फिर मस्तक उठा सकेगा और उसमें अन्य देशों का माल ख़रीदने की शक्ति उत्पन्न होगी। (२) हर्जाने का अदा करना बन्द करने के साथ ही वह समर-ऋण भी रद्द कर दिया जाय, जो मित्र-शक्तियों (इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, इटली) को अमेरिका को चुकाना है ; क्योंकि ऐसा न होने से मित्र-राष्ट्रों की दशा जर्मनी के समान ही हो जायगी, जिससे संसार के व्यवसाय-वाणिज्य में फिर उथल-पुथल मच जायगी। (३) इस समय विभिन्न देशों ने विदेशी माल पर अतिरिक्त कर लगा कर व्यवसाय-वाणिज्य की स्वाभाविक गति को रुद्ध कर दिया है। इस नीति को त्याग दिया जाय। (४) समर-ऋण के अतिरिक्त एक देश को दूसरे देश का जो क़र्ज़ देना है, उसका ब्याज कम कर दिया जाय। (५) संसार के समस्त देशों में, जिससे थोक माल की दर बढ़े, ऐसी व्यवस्था की जाय। (६) भविष्य के लिए कोई ऐसी योजना की जाय, जिससे एक देश दूसरे देश को बहुत सा रुपया उधार देकर बाद में उसका सर्वस्व अपहरण न कर सके।

पर ये उपाय कहाँ तक कार्य-रूप में परिणत हो सकेंगे और इनसे विश्वव्यापी अर्थ-सङ्कट के मिटाने में किस सीमा तक सफलता प्राप्त हो सकेगी, इसमें बहुत सन्देह है। क्योंकि इन तमाम देशों में सदा बड़ी प्रति-योगिता चलती रहती है और ये प्राणपण से अपनी प्रधानता को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा किया करते हैं। ऐसी दशा में सब देशों का इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेना और हृदय से उनके अनुसार व्यवहार करना कठिन जान पड़ता है। इन प्रस्तावों के अनुसार विशेष स्वार्थ-त्याग अमेरिका को ही करना पड़ेगा, और उसके वर्तमान रुख़ से जान पड़ता है कि जहाँ तक सम्भव होगा, वह अपना क़र्ज़ा कौड़ी-कौड़ी वसूल करने की चेष्टा करेगा। वह चाहे तो दो-एक देशों को लालच दिखा कर अपना साथी बना सकता है और उनकी सहायता से इस सम्मेलन को सहज में ही असफल बना सकता है।

सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ या व्यवसायी, जिनका इस मामले में किसी तरह का स्वार्थ है, इस प्रश्न की उचित मीमांसा नहीं कर सकते। वे जब विचार करने बैठेंगे तो अपने व्यक्तिगत या राष्ट्रीय हित का ख़याल सबसे पहले करेंगे और जहाँ स्वार्थ की प्रधानता होगी, वहाँ समझौता होने की आशा व्यर्थ है। इसलिए हमको इस सम्बन्ध में उन लोगों के मतानुसार विचार करना चाहिए, जो व्यवसाय-वाणिज्य अथवा साम्राज्य-विस्तार की दृष्टि से नहीं, वरन् एक सिद्धान्त की दृष्टि से इस समस्या की विवेचना करते हैं। ऐसे लोगों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। एक अर्थ-शास्त्रवादी और दूसरे साम्यवादी। वैसे ये दोनों ही तरह के व्यक्ति अर्थ-शास्त्र के अनुयायी होते हैं, पर एक अमीरों अथवा पूँजीपतियों के दृष्टि-विन्दु से विचार करते हैं और दूसरे ग़रीबों के।

अर्थ-शास्त्रवादियों का सिद्धान्त है कि व्यवसाय-क्षेत्र में इस प्रकार का सङ्कट समय-समय पर आना एक स्वाभाविक नियम है और इससे उन्नति तथा विकास की गति में सहायता मिलती है। अब तक इस प्रकार के जितने अर्थ-सङ्कट आए हैं, उन सबके पहले और पीछे व्यापार ख़ूब चमकता है। इस प्रकार का उतार-चढ़ाव आर्थिक जीवन में स्वाभाविक है और इससे व्यवसाय को नवीन जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। पर वर्तमान अर्थ-सङ्कट में पिछले अर्थ-सङ्कटों की अपेक्षा कुछ विशेषता है। पिछले अर्थ-सङ्कट जहाँ नियमित थे, वहाँ वर्तमान अर्थ-सङ्कट युगान्तरकारी है। यह पश्चिमी देशों के व्यवसाय में उसी प्रकार की क्रान्ति की सूचना दे रहा है, जैसी क्रान्ति अठारहवीं शताब्दी के अन्त में हुई थी और जिसके फल से यूरोप का व्यापार समस्त संसार में फैल गया था। तब से यूरोपियन देश समस्त पूर्वीय देशों को जीवन-निर्वाह की साधारण तैयार वस्तुएँ पहुँचाते रहे हैं और इससे अपरिमित लाभ उठाते रहे हैं। पर अब पूर्वीय देशों ने भी इस सम्बन्ध में कुछ उन्नति की है और इन साधारण वस्तुओं को स्वयम् तैयार कर सकने की शक्ति उनमें आ गई है। ऐसी दशा में कितनी भी आर्थिक योजनाएँ बनाई जाएँ, पश्चिमी देशों के व्यापार का तब तक घटते जाना अनिवार्य है, जब तक वे अपने कारबार के ढङ्ग को न बदलें। इसके लिए सबसे पहले उनको साधारण चीज़ों का बनाना छोड़ कर केवल उन वस्तुओं के बनाने का प्रबन्ध करना होगा, जो पूर्वीय देशों में अभी नहीं बनाई जा सकतीं। ऐसी वस्तुओं में सबसे प्रधान मैशीनें हैं, जिनकी आवश्यकता पूर्वीय देशों में दिन पर दिन बढ़ती जायगी। इसके सिवा पश्चिमी देशों को अपनी पूँजी कृषि-कार्य में लगानी चाहिए और अपने देशों में वैज्ञानिक विधियों से काम लेने वाले कृषि-उपनिवेश स्थापित करने चाहिएँ। इससे वहाँ के शहरों की बढ़ती हुई आबादी घटने लग जायगी और बेकारी की समस्या भी किसी हद तक हल हो सकेगी।

साम्यवादी भी अर्थ-सङ्कट से बचने का उपाय वर्तमान आर्थिक पद्धति को बदलना बतलाते हैं, पर उनका रास्ता दूसरा है। उनका कहना है कि इस आपत्ति का मूल कारण व्यवसाय-वाणिज्य पर थोड़े से पूँजीपतियों का अधिकार होना है और जब तक यह पद्धति स्थिर रहेगी, तब तक इस प्रकार की घटनाएँ बराबर होती रहेंगी और प्रत्येक बार अवस्था की भीषणता पहले की अपेक्षा अधिक होगी। कारण यह है कि कारख़ानों के मालिक मज़दूरों से जब एक या डेढ़ रुपए का काम करा लेते हैं, तब उनको दस-बारह आना मज़दूरी देते हैं। इस प्रकार मज़दूर जितना माल तैयार करते हैं, उसका केवल आधा या दो तिहाई भाग ख़रीद सकते हैं। शेष आधा या एक तिहाई भाग मालिकों के लिए बचता है। पर मालिकों की संख्या मज़दूरों की अपेक्षा बहुत कम होती है, इसलिए वे चाहे जितना खा लें और ख़र्च कर लें, उनका भण्डार दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। पहले तो वे इस वृद्धि का उपयोग अपने कारबार को बढ़ाने में करते हैं, इसके बाद उसे अन्य देशों में नवीन-नवीन व्यवसाय आरम्भ करने में लगाते हैं, पर अन्त में ऐसा समय आता है, जब कि व्यवसाय को बढ़ाने की गुञ्जायश नहीं रहती और पूँजी तथा माल बेकार पड़ा रह कर दिन पर दिन इकट्ठा होने लगता है। ऐसी अवस्था में उनको लाचार होकर तब तक के लिए कारबार स्थगित कर देना पड़ता है, जब तक दशा सुधर न जाय। पर कारबार बन्द होने से साधारण जनता की आमदनी और भी कम हो जाती है और पहले वे माल का जो आधा भाग ख़रीद लेते थे, उसकी बिक्री भी बन्द हो जाती है। इस प्रकार ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसमें से निकलने का मार्ग ही कहीं दिखलाई नहीं देता। कारख़ाने वाले सोचते हैं कि जब हमारे भरे हुए गोदाम ख़ाली हो जायँ, तो हम फिर से माल तैयार कराना शुरू करें और मज़दूर कहते हैं कि अगर कारबार शुरू हो और हमको वेतन मिले तो हम माल ख़रीदें। यह उलझन दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है और जब तक व्यवसाय-नीति में जड़मूल से परिवर्तन नहीं किया जाता, तब तक इसका स्थायी सुधार हो सकना असम्भव होता है।

यह सच है कि वर्तमान अर्थ-सङ्कट अन्तिम नहीं है और न इसके पश्चात् साम्यवादियों की कल्पना के सफल होने की कोई आशा ही है, पर इतना अवश्य है कि इस प्रकार की प्रत्येक घटना के फल से वर्तमान पूँजीवादी अर्थ-पद्धति की त्रुटियाँ प्रकट होती जाती हैं और जनसाधारण का झुकाव साम्यवादी आदर्श की तरफ़ अधिक होता जाता है। यद्यपि निकट भविष्य में

अर्थ-शास्त्रवादियों का अनुमान ही कार्यरूप में परिणत होता दिखलाई देता है, पर वह अवस्था भी अधिक समय तक स्थायी नहीं हो सकती। वरन् संसार में कारख़ानों की संख्या बढ़ने और व्यवसाय-वाणिज्य का अधिक विस्तार होने से इस प्रकार का अर्थ-सङ्कट और भी जल्दी-जल्दी आने लगेगा। अन्त में कोई ऐसी व्यवस्था होने से ही, जिससे पूँजीपति मनमाना लाभ न उठा सकें और उनके पास बहुत अधिक परिमाण में अतिरिक्त सामग्री इकट्ठी न हो सके, यह जटिल समस्या हल हो सकेगी।

चाँद—फ़रवरी, १९२३

भेड़-चाल

[श्रीमती विद्यावती सहगल]

भारतवर्ष निस्सन्देह हज़ारों वर्ष की गहरी नींद से जाग रहा है। भारतीय बच्चा-बच्चा अपने स्वत्वों की रक्षा करना सीख रहा है। भिन्न-भिन्न प्रकार की राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक उन्नति के लिए आज हम जी तोड़ कर प्रयत्न कर रहे हैं। हमने मनन करने के बाद अपने ह्रास का कारण ही नहीं जान लिया है; बल्कि हम इस बात को भली प्रकार स्वीकार कर चुके हैं कि बिना अपने समाज का सङ्गठन किए हुए अथवा देश के स्त्री-अङ्ग को बिना सुधारे हुए, स्वतन्त्रता की आशा करना उतनी ही बेबुनियाद बात है, जितना नाटे होकर चाँद को छूने का प्रयत्न करना।

देश का शिक्षित समाज अपनी इस भूल पर हाथ मल-मल कर पछता रहा है। वह उसे पुनः राह पर लाने का यथाशक्ति प्रयत्न भी कर रहा है। पर सफलता की बात तो दूर रही, समाज के अधिकांश भाग में उसकी रसाई उतनी भी नहीं हो रही है; जितनी हवा की दीवारों में। इस उन्नति के युग में भी हमारे उद्धार की कोई सूरत क्यों नहीं निकल रही है? यह प्रश्न आज प्रत्येक विचारशील मनुष्य के कानों पर रेंग रहा है। अनेक उदार-हृदय सज्जन बेचारी बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करना हितकर समझते हैं, पर स्वयं अपने घर में इसलिए नहीं कर सकते, कि समाज के चौधरी उन्हें जाति से निकाल देंगे। अनेक समझदार माताएँ इस बात को हृदय से चाहती हैं कि छोटी-छोटी अबोध कन्याओं की शादी न की जावे, पर अपने घर की कन्याओं का विवाह उन्हें आठवें वर्ष, इसलिए कर देना पड़ता है, कि कुल के पुरोहित जी ने छपा हुआ वेदों का मन्त्र* दिखला दिया है। उसमें साफ़-साफ़ लिखा है :—

> अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी,
> दशवर्षा भवेद् कन्या ततऊर्ध्वं रजस्वला।
> माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च,
> त्रयस्ते नर्कं यान्ति द्रष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

अपने घर की लड़कियों का विवाह छोटी ही अवस्था में कर देने का एक और भी कारण है कि समाज की निगाह में वे कहीं 'हेठे' न समझे जावें और तीसरा कारण एक और है, वह यह कि 'मुन्नी की माँ' कहेंगी कि "लड़की में कुछ न कुछ दोष ज़रूर है, नहीं तो अब तक शादी क्यों न ठीक हो जाती ?" दहेज की ज़्यादती को लोग हृदय से धिक्कारने लगे हैं। सैकड़ों, हज़ारों सभाएँ और व्याख्यान इस विषय पर हो चुके हैं; Social Conference (सामाजिक परिषदों) में भी बहुमत से इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास हो चुके हैं, पर स्वयं उसके सभासद लोग 'बड़ों का मान रखने के लिए' स्वयं दहेज इसलिए ले लेते हैं

* अक्सर देखा गया है कि कुछ पाखण्डी और स्वार्थी पण्डित लोग मनगढ़न्त तथा बेबुनियाद बातों को वेद की आड़ में कह कर भोली स्त्रियों को ठगते हैं। इसीलिए 'वेदों' से हमारा मतलब उन झूठी पुस्तकों से है, जो स्वार्थ साधने के लिए धर्म-ग्रन्थों में जोड़ दी गई हैं।

—लेखिका

कि "सदा से ऐसा होता आया है।" कहने का सारांश यह कि समाज का अधिकांश भाग यह कह कर बाधा डाल रहा है कि "हमेशा से ऐसा होता आया है।" यदि घर की किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों से आप पूछें—"फ़लाँ रस्म करने का मतलब (उद्देश्य) क्या है और इसकी उत्पत्ति किस प्रकार और कब से हुई है?" तो यहाँ भी आपको वही पेटेण्ट जवाब मिलेगा कि "सदा से ऐसा होता आया है।" इसी 'भेड़-चाल' के कारण आज भारत की उन्नति में भारी बाधा पड़ रही है। इस दलील से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि हमारा अधिकांश भाग अभी अशिक्षित है और समाज के डर से उसे अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेने का कोई हक़ ही नहीं है।

सरकार से लड़-झगड़ कर एम० ए० की डिग्री प्राप्त की, जर्मनी की ओर से पी-एच० डी० की डिग्री प्रदान की गई है। भारत में ही नहीं, अन्य सभ्य देशों में उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा हो रही है। ऐसे योग्य सज्जनों को भी रस्मोरिवाज (Rites & Customs) के सामने इसलिए सिर झुका देना पड़ता है कि सामाजिक क्षेत्र से उन्हें कुछ भी दिलचस्पी नहीं है। वे बेचारे अङ्गरेज़ी साहित्य की खोज में मतवाले हो रहे हैं। यदि कुछ शिक्षित लोगों ने इन कुरीतियों पर कुछ भी असन्तोष प्रकट किया तो डपट कर घर वालों का उत्तर मिलता है—"बस चुप रहो। सदा से ऐसा होता आया है। तुम तो अङ्गरेज़ी पढ़ कर पूरे आरिया हो गए हो!"

हमारे समाज में इन सामाजिक कुरीतियों का होना कई कारणों से अनिवार्य है। प्रकृति का नियम स्पष्ट तौर से यह बतलाता है कि बहुमत (Majority) सदा अल्पमत (Minority) पर विजय पाता है। यह एक निसर्ग-सिद्ध नियम है और चूँकि हमारे समाज के अधिकांश लोग उचित शिक्षा से सर्वथा वञ्चित हैं, यही कारण है कि शिक्षिता स्त्रियाँ तथा विचारशील पुरुषों की इच्छाओं का ख़ून हो रहा है। "नई रोशनी" के लोग हृदय से नाना प्रकार की उन्नति और समयानुसार रीति-रिवाजों और अपने रहन-सहन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन करने का उद्योग करते हैं, पर बहुमत को अपने पक्ष में न कर सकने के कारण उन्हें इसमें सफलता नहीं होती और हो भी नहीं सकती। कारण स्पष्ट ही है।

भारतीय हिन्दू-समाज में इतनी कुरीतियाँ भरी पड़ी हैं कि उनमें से एक का $\frac{1}{1000}$ अंश लेकर उसी को दूर करने में यदि कोई व्यक्ति अपना सारा जीवन लगा दे, तब भी सफलता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती है। "हमेशा से ऐसा होता आया है" इस बात का सिक्का आज प्रत्येक घर-गृहस्थ की स्त्रियों के कोमल चित्त पर इस बुरी तरह बैठा हुआ है कि दो-चार पीढ़ी तक उसका निकलना असम्भव सी बात है।

किसी भी इतिहास के विद्यार्थी से यह बात छिपी न होगी कि अभागे भारत के पतन का "श्रीगणेश" महाभारत के युद्ध के बाद ही से आरम्भ हो गया था, पर आज हज़ारों वर्षों के बीत जाने पर भी भारतवासियों के कान पर जूँ तक न रेंगी। चाहे इधर की दुनिया उधर हो जावे, पर वे तो बस वही करेंगे, जो "सदा से होता आया है" एक से एक विद्वान भले ही अपना ज्ञान-भण्डार खोज कर उनके सामने रख दें, एक से एक बढ़ कर मार्मिक दलीलें ही चाहे क्यों न आप उनके सामने रख कर हार जाएँ, पर होगा वही "जो सदा से होता आया है।"

सैकड़ों नहीं, बल्कि हज़ारों वर्षों से 'कलियुग' की इस भूमि पर पलने वाले हमारे पण्डित, पुरोहित और पाधा लोग आर्य-पवित्रता की ऐसी लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकते हैं कि बहुत हद तक, उनसे आज शिक्षित समाज घृणा प्रकट करने लग गया है। वे चाहे पढ़े एक अक्षर भी न हों, पर शास्त्रों, पुराणों की आड़ में मनगढ़न्त धर्म-ग्रन्थों की दोहाई देकर सङ्कीर्ण, भयङ्कर और गन्दे घेरे के अन्दर हमें रख कर अपने स्वार्थ-सिद्धि में अन्धे हो रहे हैं। वे अन्ध-परम्परा के चक्कर में स्वयं तो पड़े ही हैं, पर साथ ही हमें भी डुबा रहे हैं। कहने का मतलब यह कि अपने बुद्धि, विवेक और ज्ञान के रहते हुए भी हम उनके हाथों की कठपुतली बने हुए हैं।

धर्म-ग्रन्थों की रचना हमारे लिए होती है, न कि हमारा जन्म धर्म-ग्रन्थों के लिए। मतलब यह कि ये धर्म-ग्रन्थ, जिनकी रचना हज़ारों वर्ष पहिले हो चुकी है, वे ही आज दिन भी काम में आ रहे हैं।

प्रत्येक धर्म और रिवाज प्रायः अनेक कारणों के परिणाम हुआ करते हैं। प्रत्येक धर्म अथवा कोई भी रिवाज उस धर्म अथवा रिवाज के जन्मदाता के अपने

अर्थ-शास्त्रवादियों का अनुमान ही कार्यरूप में परिणत होता दिखलाई देता है, पर वह अवस्था भी अधिक समय तक स्थायी नहीं हो सकती। वरन् संसार में कारख़ानों की संख्या बढ़ने और व्यवसाय-वाणिज्य का अधिक विस्तार होने से इस प्रकार का अर्थ-सङ्कट और भी जल्दी-जल्दी आने लगेगा। अन्त में कोई ऐसी व्यवस्था होने से ही, जिससे पूँजीपति मनमाना लाभ न उठा सकें और उनके पास बहुत अधिक परिमाण में अतिरिक्त सामग्री इकट्ठी न हो सके, यह जटिल समस्या हल हो सकेगी।

चाँद—फ़रवरी, १९२३

भेड़-चाल

[श्रीमती विद्यावती सहगल]

भारतवर्ष निस्सन्देह हज़ारों वर्ष की गहरी नींद से जाग रहा है। भारतीय बच्चा-बच्चा अपने स्वत्वों की रक्षा करना सीख रहा है। भिन्न-भिन्न प्रकार की राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक उन्नति के लिए आज हम जी तोड़ कर प्रयत्न कर रहे हैं। हमने मनन करने के बाद अपने ह्रास का कारण ही नहीं जान लिया है; बल्कि हम इस बात को भली प्रकार स्वीकार कर चुके हैं कि बिना अपने समाज का सङ्गठन किए हुए अथवा देश के स्त्री-अङ्ग को बिना सुधारे हुए, स्वतन्त्रता की आशा करना उतनी ही बेबुनियाद बात है, जितना नाटे होकर चाँद को छूने का प्रयत्न करना।

देश का शिक्षित समाज अपनी इस भूल पर हाथ मल-मल कर पछता रहा है। वह उसे पुनः राह पर लाने का यथाशक्ति प्रयत्न भी कर रहा है। पर सफलता की बात तो दूर रही, समाज के अधिकांश भाग में उसकी रसाई उतनी भी नहीं हो रही है; जितनी हवा की दीवारों में। इस उन्नति के युग में भी हमारे उद्धार की कोई सूरत क्यों नहीं निकल रही है? यह प्रश्न आज प्रत्येक विचारशील मनुष्य के कानों पर रेंग रहा है। अनेक उदार-हृदय सज्जन बेचारी बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह करना हितकर समझते हैं, पर स्वयं अपने घर में इसलिए नहीं कर सकते, कि समाज के चौधरी उन्हें जाति से निकाल देंगे। अनेक समझदार माताएँ इस बात को हृदय से चाहती हैं कि छोटी-छोटी अबोध कन्याओं की शादी न की जावे, पर अपने घर की कन्याओं का विवाह उन्हें आठवें वर्ष, इसलिए कर देना पड़ता है, कि कुल के पुरोहित जी ने छपा हुआ वेदों का मन्त्र* दिखला दिया है। उसमें साफ़-साफ़ लिखा है :—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी,
दशवर्षा भवेद् कन्या तत्ऊर्ध्वं रजस्वला।
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च,
त्रयस्ते नर्कं यान्ति द्रष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

अपने घर की लड़कियों का विवाह छोटी ही अवस्था में कर देने का एक और भी कारण है कि समाज की निगाह में वे कहीं 'हेठे' न समझे जावें और तीसरा कारण एक और है, वह यह कि 'मुन्नी की माँ' कहेंगी कि "लड़की में कुछ न कुछ दोष ज़रूर है, नहीं तो अब तक शादी क्यों न ठीक हो जाती?" दहेज की ज़्यादती को लोग हृदय से धिक्कारने लगे हैं। सैकड़ों, हज़ारों सभाएँ और व्याख्यान इस विषय पर हो चुके हैं; Social Conference (सामाजिक परिषदों) में भी बहुमत से इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास हो चुके हैं, पर स्वयं उसके सभासद लोग 'बड़ों का मान रखने के लिए' स्वयं दहेज इसलिए ले लेते हैं

* अक्सर देखा गया है कि कुछ पाखण्डी और स्वार्थी पण्डित लोग मनगढ़न्त तथा बेबुनियाद बातों को वेद की आड़ में कह कर भोली स्त्रियों को ठगते हैं। इसीलिए 'वेदों' से हमारा मतलब उन झूठी पुस्तकों से है, जो स्वार्थ साधने के लिए धर्म-ग्रन्थों में जोड़ दी गई हैं।

—लेखिका

कि "सदा से ऐसा होता आया है।" कहने का सारांश यह कि समाज का अधिकांश भाग यह कह कर बाधा डाल रहा है कि "हमेशा से ऐसा होता आया है।" यदि घर की किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों से आप पूछें—"फ़लाँ रस्म करने का मतलब (उद्देश्य) क्या है और इसकी उत्पत्ति किस प्रकार और कब से हुई है ?" तो यहाँ भी आपको वही पेटेण्ट जवाब मिलेगा कि "सदा से ऐसा होता आया है।" इसी 'भेड़-चाल' के कारण आज भारत की उन्नति में भारी बाधा पड़ रही है। इस दलील से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि हमारा अधिकांश भाग अभी अशिक्षित है और समाज के डर से उसे अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेने का कोई हक़ ही नहीं है।

सरकार से लड़-झगड़ कर एम० ए० की डिग्री प्राप्त की, जर्मनी की ओर से पी-एच० डी० की डिग्री प्रदान की गई है। भारत में ही नहीं, अन्य सभ्य देशों में उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा हो रही है। ऐसे योग्य सज्जनों को भी रस्मोरिवाज (Rites & Customs) के सामने इसलिए सिर झुका देना पड़ता है कि सामाजिक क्षेत्र से उन्हें कुछ भी दिलचस्पी नहीं है। वे बेचारे अङ्गरेज़ी साहित्य की खोज में मतवाले हो रहे हैं। यदि कुछ शिक्षित लोगों ने इन कुरीतियों पर कुछ भी असन्तोष प्रकट किया तो डपट कर घर वालों का उत्तर मिलता है—"बस चुप रहो। सदा से ऐसा होता आया है। तुम तो अङ्गरेज़ी पढ़ कर पूरे आरिया हो गए हो !"

हमारे समाज में इन सामाजिक कुरीतियों का होना कई कारणों से अनिवार्य है। प्रकृति का नियम स्पष्ट तौर से यह बतलाता है कि बहुमत (Majority) सदा अल्पमत (Minority) पर विजय पाता है। यह एक निसर्ग-सिद्ध नियम है और चूँकि हमारे समाज के अधिकांश लोग उचित शिक्षा से सर्वथा वञ्चित हैं, यही कारण है कि शिक्षिता स्त्रियाँ तथा विचारशील पुरुषों की इच्छाओं का खून हो रहा है। "नई रोशनी" के लोग हृदय से नाना प्रकार की उन्नति और समयानुसार रीति-रिवाजों और अपने रहन-सहन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन करने का उद्योग करते हैं, पर बहुमत को अपने पक्ष में न कर सकने के कारण उन्हें इसमें सफलता नहीं होती और हो भी नहीं सकती। कारण स्पष्ट ही है।

भारतीय हिन्दू-समाज में इतनी कुरीतियाँ भरी पड़ी हैं कि उनमें से एक का $\frac{1}{1000}$ अंश लेकर उसी को दूर करने में यदि कोई व्यक्ति अपना सारा जीवन लगा दे, तब भी सफलता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती है। "हमेशा से ऐसा होता आया है" इस बात का सिक्का आज प्रत्येक घर-गृहस्थ की स्त्रियों के कोमल चित्त पर इस बुरी तरह बैठा हुआ है कि दो-चार पीढ़ी तक उसका निकलना असम्भव सी बात है।

किसी भी इतिहास के विद्यार्थी से यह बात छिपी न होगी कि अभागे भारत के पतन का "श्रीगणेश" महाभारत के युद्ध के बाद ही से आरम्भ हो गया था, पर आज हज़ारों वर्षों के बीत जाने पर भी भारतवासियों के कान पर जूँ तक न रेंगी। चाहे इधर की दुनिया उधर हो जावे, पर वे तो बस वही करेंगे, जो "सदा से होता आया है" एक से एक विद्वान भले ही अपना ज्ञान-भण्डार खोल कर उनके सामने रख दें, एक से एक बढ़ कर मार्मिक दलीलें ही चाहे क्यों न आप उनके सामने रख कर हार जाएँ, पर होगा वही "जो सदा से होता आया है।"

सैकड़ों नहीं, बल्कि हज़ारों वर्षों से 'कलियुग' की इस भूमि पर पलने वाले हमारे पण्डित, पुरोहित और पाधा लोग आर्य-पवित्रता की ऐसी लम्बी-चौड़ी डींगें हाँकते हैं कि बहुत हद तक, उनसे आज शिक्षित समाज घृणा प्रकट करने लग गया है। वे चाहे पढ़े एक अक्षर भी न हों, पर शास्त्रों, पुराणों की आड़ में मनगढ़न्त धर्म-ग्रन्थों की दोहाई देकर सङ्कीर्ण, भयङ्कर और गन्दे घेरे के अन्दर हमें रख कर अपने स्वार्थ-सिद्धि में अन्धे हो रहे हैं। वे अन्ध-परम्परा के चक्कर में स्वयं तो पड़े ही हैं, पर साथ ही हमें भी डुबा रहे हैं। कहने का मतलब यह कि अपने बुद्धि, विवेक और ज्ञान के रहते हुए भी हम उनके हाथों की कठपुतली बने हुए हैं।

धर्म-ग्रन्थों की रचना हमारे लिए होती है, न कि हमारा जन्म धर्म-ग्रन्थों के लिए। मतलब यह कि ये धर्म-ग्रन्थ, जिनकी रचना हज़ारों वर्ष पहिले हो चुकी है, वे ही आज दिन भी काम में आ रहे हैं।

प्रत्येक धर्म और रिवाज प्रायः अनेक कारणों के परिणाम हुआ करते हैं। प्रत्येक धर्म अथवा कोई भी रिवाज उस धर्म अथवा रिवाज के जन्मदाता के अपने

सिद्धान्त मात्र होते हैं। जो सांसारिक और आध्यात्मिक सिद्धान्त या निश्चय महात्मा बुद्ध के थे, वे ही बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त कहलाते हैं। मुहम्मद साहब का जो कुछ अपना "यक़ीन" था, वही मुसलमानों का ईमान है। स्वामी दयानन्द के जो अपने ज़ाती अनुभव थे और उन्हें मथ कर जो सिद्धान्त उन्होंने निकाले थे, प्रत्येक आर्य-समाजी के लिए वही मन्तव्य है। इन सब बातों से हमारे पाठकों को यह बात समझने में अवश्य ही सुविधा हुई होगी कि प्रत्येक धर्म एक व्यक्ति-विशेष के निजी (उसके अपने) सिद्धान्त मात्र हैं। पर यह सिद्धान्त अथवा किसी व्यक्ति-विशेष का सामाजिक आचार-विचार सर्वथा उसकी निजी-धारणा (Conviction) मात्र होते हैं, जिनका जन्म उस समय की परिस्थिति के अनुकूल ही ऐसी महान आत्माएँ दिया करती हैं। पर यहीं हमारी बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है और हम निरुपाय होकर आज भी उन्हीं सिद्धान्तों पर चलने को बाध्य किए जाते हैं, जिन पर हमारे पुरखे वंश-परम्परा से चले आए हैं।

हमारे इस कहने का मतलब यह समझना भूल होगी कि हम अपने बड़ों को मूर्ख समझती हैं। हमारी निगाह में अपने बड़ों की उतनी ही इज़्ज़त है, जितनी एक आज्ञाकारी बालक अथवा बालिका की निगाह में अपनी जन्मदात्री माता की। हमें तो केवल यह सिद्ध करना है कि जिन बातों में एक समय लाभ होता है, समय के फेर से उन्हीं से भारी अनिष्ट भी हो जाता है। पर हमारा समाज इस तर्क को एक क्षण के लिए भी मानने को तैयार नहीं है। वह तो बस एक ही महामन्त्र का जाप करता है कि बस "सदा से ऐसा ही होता आया है।"

परिवर्तन और वृद्धि प्रकृति की दो बड़ी शक्तियाँ हैं। संसार की समस्त हलचलें इन्हीं के सहारे हुआ करती हैं। अङ्गरेज़ी में इसी परिवर्तन को विकास अथवा Evolution कहते हैं।

तात्पर्य यह कि कोई भी एक धर्म अनन्त काल के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। प्रत्येक देश के उत्थान (Rise) अथवा पतन (Fall) के समय उसका स्वरूप सदा बदलता रहता है। संसार के इतिहास से भी यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि सारे धर्म, समाज तथा सभ्यता के उत्कर्ष और व्यक्ति की उन्नति के अनुसार परिवर्तन हुआ करते हैं, पर भारतवासी इस तर्क को नहीं मानते। वे तो वही करेंगे, जो "सदा से होता आया है।"

यदि उनके पिता ने शादी में २०००) 'दहेज' में लिए थे, तो वे उससे एक पैसा भी कम, केवल इसलिए नहीं कर सकते कि "सदा से ऐसा होता आया है" और कन्या के पिता ने यदि अपनी पहली लड़की के विवाह में १०००) ही दहेज के स्वरूप में दिए हैं, तो दूसरी लड़की के विवाह में वह एक कौड़ी भी इससे ज़्यादा देने को केवल इसीलिए तैयार नहीं है कि "सदा से ऐसा होता आया है।" चाहे अभागिनी बालिका को आयु-पर्यन्त अविवाहिता ही क्यों न रहना पड़े!

इस छोटे से लेख में हम इन कुरीतियों के हर एक पहलू पर विचार न कर केवल यह सिद्ध करना चाहती हैं कि लगभग सभी कुरीतियों का एकमात्र कारण हमारी "भेड़-चाल" है।

संसार के सभी अन्य पशुओं में 'भेड़ें' सब से अधिक मूर्ख समझी जाती हैं। भेड़ों का झुण्ड बिना कुछ भेड़ों के अगुआ हुए कभी नहीं चलता। अतएव उन्हें हँकाने के लिए सब से पहले एक क़तार में कुछ भेड़ों को, पहिले मार-मार कर चलाना पड़ता है। जहाँ वे चलीं कि फिर पीछे की भेड़ें बिना कहे ही उनका अनुसरण करती हैं। जिधर आगे की भेड़ें जायँगी, उधर ही बिना विचारे पीछे वाली भेड़ें भी। यदि आगे वाली भेड़ें गड़हे अथवा दुर्भाग्यवश कुएँ में गिर जावें तो बिना विचारे पीछे वाली भी अकारण अपनी जानें दे देंगी; पर अपनी बुद्धि और विवेक से काम न लेंगी। 'भेड़ों' का जो उदाहरण दिया गया है, यह कवियों की कल्पना अथवा कपोल-कल्पित नहीं है। यह सच्ची बात है और हम नित्य अपनी आँखों से इस उदाहरण को कार्य-रूप में भी देखते हैं।

यदि हम अपने समाज की तुलना भी इन्हीं भोली भेड़ों से करें तो अनुचित न होगा। इनमें भी "अगुआ भेड़ों" की ज़रूरत है। पर उनकी नहीं, जो लम्बी-लम्बी धोतियाँ अथवा दुपट्टे फटकार कर केवल व्याख्यान देना ही जानते हैं। बल्कि हमारा समाज इस समय ऐसे 'अगुआ' चाहता है, जो स्वयं अपने सिद्धान्त के अगुआ

बनें। अर्थात् यदि हम बाल-विवाह के विरोधी हैं, तो कन्या को चाहे आयु-पर्यन्त अविवाहिता रहना पड़े, पर इस बात की प्रतिज्ञा कर लें कि हज़ार कठिनाइयों का सामना, और समाज का खुला विरोध ही क्यों न करना पड़े, पर समाज के भय से, आठ वर्ष की भोली कन्या का विवाह कदापि न करेंगे। यदि हम परदे की प्रथा उठाना चाहते हैं, तो पहले अपने घर से इस प्रथा का जन्म देना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। महात्मा गाँधी यदि स्वयं कोट-पतलून और कॉलर पहिन कर आज कॉङ्ग्रेस में खड़े होकर स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करने की सलाह जनता को दें, तो अवश्य ही उनका अपमान होगा। पर नहीं; आज महात्मा गाँधी का अन्य नेताओं की अपेक्षा अधिक आदर केवल इसलिए ही होता है कि वे स्वयं कार्यशाली (Practical) हैं, उन्होंने जब स्वयं खद्दर की कोपीन धारण कर ली है, तभी ऐसा उपदेश देने का साहस किया।

आज हमारा शिक्षित समाज यदि सामाजिक सुधारों का महत्व समझ ले और साथ ही इस बात की प्रतिज्ञा कर ले कि देशवासी चाहे जो करें, पर हम अपने घर में अपनी धारणा (Conviction) के अनुसार ही कार्य करेंगे, तो बात की बात में सामाजिक कुरीतियों का अन्त हो सकता है। एक अङ्गरेज़ विद्वान का यह कहना अक्षरशः सत्य है:—

"Progress is made more economically by rational than by natural selection and the time has arrived for man to control his own evolutions instead of leaving it to the blind forces of nature."

अर्थात्—"संसार में प्रकृति के नियमों की अपेक्षा विवेक से काम लेने से शीघ्र और सरलता से उन्नति हो सकती है। मनुष्यों के लिए अब ऐसा समय उपस्थित हुआ है कि "दैवेच्छा बलीयसी" के भरोसे न रहें, बल्कि अपने विवेक से प्रकृति के नियमों को ढूँढ़ निकालें।"

हमारे कहने का सारांश यह कि अपने निजी धारणा (Self-conviction) पर लोक-निन्दा तो क्या, यदि अपने जीवन की बलि भी करनी पड़े तो उसे सहर्ष स्वीकार करना ही सच्चे सुधारकों का लक्ष्य होना चाहिए।

अबला या सबला?

[श्रीयुत 'विक्रम']

जिनके एक बूँद आँसू में
हिम-गिरि को बहते देखा।
जिनके नयनाहत को हमने
'त्राहि-त्राहि' कहते देखा॥
जिनके प्रखर रूप की ज्वाला
में जग को जलते देखा।
जिनके मृदु शासन का सिक्का
त्रिभुवन में चलते देखा॥
जिनके हित मानव-समाज में
महासमर होते देखा।
जिनके प्रबल मोह में मुनियों
को विवेक खोते देखा॥
जिनके सँग सानन्द कृष्ण से
योगी को रमते देखा।
जिनकी कोमल धाक जगत में
जीवन पर जमते देखा॥
जिनके मधुर हास को सुख से
सदा भुवन भरते देखा।
जिनके करुणा-सम क्रन्दन को
दुखमय जग करते देखा॥
जिनकी कृपा-कोर का सारी
दुनिया को इच्छुक देखा।
जिनके प्रणय-द्वार पर लाखों—
खड़े हुए भिक्षुक देखा॥
जिनके गुण का गान जगत के
कवियों को करते देखा।
जिनके मुसकाते अधरों से
सुघर सुमन झरते देखा॥
जो श्रीहरि के वक्षस्थल पर
जा बैठीं बन कर कमला।
मुझे बता दें कवि-कोविद गन;
वे अबला हैं या सबला?

वेश्या
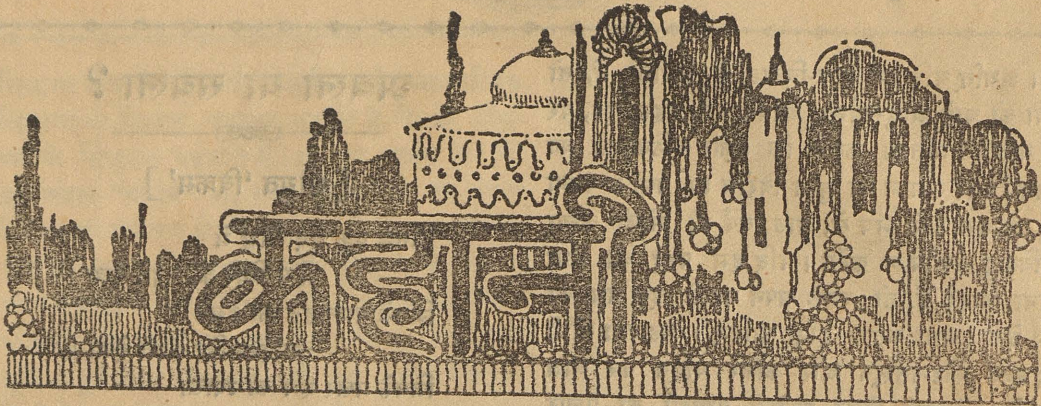
[श्री० प्रेमचन्द जी]

छः महीने बाद कलकत्ते से घर आने पर दयाकृष्ण ने पहला काम जो किया, वह अपने प्रिय मित्र सिंगारसिंह से मातमपुरसी करने जाना था। सिंगार के पिता का आज तीन महीने हुए देहान्त हो गया था। दयाकृष्ण बहुत व्यस्त रहने के कारण उस समय न आ सका था। मातमपुरसी की रस्म पत्र लिख कर अदा कर दी थी। लेकिन ऐसा एक दिन भी नहीं बीता कि सिंगार की याद उसे न आई हो। अभी वह दो-चार महीने और कलकत्ते रहना चाहता था। क्योंकि वहाँ उसने जो कारोबार जारी किया था, उसे सङ्गठित रूप में लाने के लिए उसका वहाँ मौजूद रहना ज़रूरी था और उसकी थोड़े दिन की ग़ैरहाज़िरी से भी हानि की शङ्का थी। किन्तु जब सिंगार की स्त्री लीला का परवाना आ पहुँचा, तो वह अपने को न रोक सका। लीला ने साफ़-साफ़ तो कुछ न लिखा था, केवल उसे तुरन्त बुलाया था, लेकिन दयाकृष्ण को पत्र के शब्दों से कुछ ऐसा अनुमान हुआ कि वहाँ की परिस्थिति चिन्ताजनक है और इस अवसर पर उसका वहाँ पहुँचना ज़रूरी है। सिंगार सम्पन्न बाप का बेटा था, बड़ा ही अल्हड़, बड़ा ही ज़िद्दी, बड़ा ही आरामपसन्द। दृढ़ता या लगन उसे छू भी नहीं गई थी। उसकी माँ उसके बचपन ही में मर चुकी थी, और बाप ने उसके पालने में नियन्त्रण की अपेक्षा स्नेह से ज़्यादा काम लिया था। उसे कभी दुनिया की हवा नहीं लगने दी। उद्योग भी कोई वस्तु है, यह वह जानता ही न था। उसके महज़ इशारे पर हरेक चीज़ सामने आ जाती थी। वह जवान बालक था, जिसमें न अपने विचार थे, न सिद्धान्त। कोई भी आदमी उसे बड़ी आसानी से अपने कपट-बाणों का निशाना बना सकता था। मुख़्तारों और मुनीमों के दाँव-पेच समझना उसके लिए लोहे के चने चबाना था। उसे किसी ऐसे समझदार और हितैषी मित्र की ज़रूरत थी, जो स्वार्थियों के हथकण्डों से उसकी रक्षा करता रहे। दयाकृष्ण पर इस घर के बड़े-बड़े एहसान थे। उस दोस्ती का हक़ अदा करने के लिए उसका आना आवश्यक था।

मुँह-हाथ धोकर सिंगारसिंह के घर पर ही भोजन करने का इरादा करके दयाकृष्ण उससे मिलने चला। नौ बज गए थे और हवा और धूप में गर्मी आने लगी थी।

सिंगारसिंह उसकी ख़बर पाते ही बाहर निकल आया। दयाकृष्ण उसे देख कर चौंक पड़ा। लम्बे-लम्बे केशों की जगह उसके सिर पर घुँघराले बाल थे (वह सिक्ख था), आड़ी माँग निकली हुई। आँखों में न आँसू थे, न शोक का कोई दूसरा चिन्ह, चेहरा कुछ ज़र्द अवश्य था, पर उस पर विलासिता की मुस्कराहट थी। वह एक महीन रेशमी कमीज़ और मख़मली जूते

पहने हुए था। मानों किसी महफ़िल से उठा आ रहा हो। सम्वेदना के शब्द दयाकृष्ण के ओठों तक आकर निराश लौट गए। वहाँ बधाई के शब्द ज़्यादा अनुकूल प्रतीत हो रहे थे।

सिंगारसिंह लपक कर उसके गले से लिपट गया और बोला—तुम ख़ूब आए यार, इधर तुम्हारी बहुत याद आ रही थी। मगर पहले यह बतला दो, वहाँ का कारोबार बन्द कर आए या नहीं? अगर वह झञ्झट छोड़ आए हो, तो पहले उसे तिलाञ्जली दे आओ। अब आप यहाँ से जाने न पाएँगे। मैंने तो भई, अपना ढँड़ा बदल दिया। बताओ कब तक तपस्या करता। अब तो आए-दिन जलसे होते हैं। मैंने कहा यार, दुनिया में आए तो कुछ दिन सैर-सपाटे का आनन्द भी उठा लो। नहीं एक दिन योंही हाथ मलते चले जायँगे। हसरत क्यों दिल में रह जाय।

दयाकृष्ण विस्मय से उसके मुँह की ओर ताकने लगा। यह वही सिंगार है या कोई और! बाप के मरते ही इतनी तब्दीली!

दोनों मित्र कमरे में गए और सोफ़े पर बैठे। सरदार साहब के सामने इस कमरे में फ़र्श और मसनद की अमलदारी थी। अब दर्जनों गद्देदार सोफ़े और कुरसियाँ हैं, क़ालीन का फ़र्श है, रेशमी परदे हैं, बड़े-बड़े आईने हैं। सरदार साहब को सञ्चय की धुन थी, सिंगार को उड़ाने की धुन है।

सिंगार ने एक सिगार जला कर कहा—तेरी बहुत याद आती थी यार, तेरी जान की क़सम।

दयाकृष्ण ने शिकवा किया—क्यों झूठ बोलते हो भाई, महीनों गुज़र जाते थे, एक ख़त लिखने की तो आपको फ़ुर्सत न मिलती थी, मेरी याद आती थी।

सिंगार ने अल्हड़पन से कहा—बस इसी बात पर मेरी सेहत का एक जाम पियो। अरे यार, इस ज़िन्दगी में और क्या रक्खा है। हँसी-खेल में जो वक़्त कट जाय उसे ग़नीमत समझो। मैंने तो वह तपस्या त्याग दी। अब तो आए-दिन जलसे होते हैं, कभी दोस्तों की दावत है, कभी दरिया का सैर, कभी गाना-बजाना, कभी शराब के दौर। मैंने कहा, लाओ कुछ दिन यह बहार भी देख लूँ। हसरत क्यों दिल में रह जाय। आदमी संसार में कुछ भोगने के लिए आता है। यही ज़िन्दगी के मज़े हैं। जिसने यह मज़े नहीं चक्खे, उसका जीना वृथा है। बस दोस्तों की मजलिस हो, बग़ल में माशूक़ हो, और हाथ में प्याला हो। इसके सिवा मुझे और कुछ न चाहिए।

उसने अलमारी खोल कर एक बोतल निकाली और दो ग्लासों में शराब ढाल कर बोला—यह मेरी सेहत का जाम है। इन्कार न करना। मैं तुम्हारी सेहत का जाम पीता हूँ।

दयाकृष्ण को कभी शराब पीने का अवसर न मिला था। वह इतना धर्मात्मा तो न था कि शराब पीना पाप समझता, हाँ उसे दुर्व्यसन समझता था। गन्ध ही से उसका जी मालिश करने लगा। उसे भय हुआ कि वह शराब की घूँट चाहे मुँह में ले ले, उसे कण्ठ के नीचे नहीं उतार सकता। उसने प्याले को शिष्टाचार के तौर पर हाथ में ले लिया, फिर उसे ज्यों का त्यों मेज़ पर रख कर बोला—तुम जानते हो, मैंने कभी नहीं पी। इस समय मुझे क्षमा करो। दस-पाँच दिन में यह फ़न भी सीख जाऊँगा। मगर यह तो बताओ, अपना कारोबार भी कुछ देखते हो, या इसी में पड़े रहते हो?

सिंगार ने अरुचि से मुँह बना कर कहा—ओह, क्या ज़िक्र तुमने छेड़ दिया यार, कारोबार के पीछे इस छोटी सी ज़िन्दगी को तबाह नहीं कर सकता। न कोई साथ लाया है न साथ ले जायगा। पापा ने मर-मर कर धन सञ्चय किया। क्या हाथ लगा? पचास तक पहुँचते-पहुँचते चल बसे। उनकी आत्मा अब भी संसार के सुखों के लिए तरस रही होगी। धन छोड़ कर मरने से फ़ाक़े मस्त रहना कहीं अच्छा है। धन की चिन्ता तो नहीं सताती, यह हाय तो नहीं होती कि मेरे बाद क्या होगा! तुमने ग्लास मेज़ पर रख दी। ज़रा पियो, आँखें खुल जाएँगी। दिल हरा हो जायगा। और लोग सोडा और बरफ़ मिलाते हैं, मैं तो ख़ालिस पीता हूँ। इच्छा हो तो तुम्हारे लिए बरफ़ मँगाऊँ?

दयाकृष्ण ने फिर क्षमा माँगी, मगर सिंगार ग्लास पर ग्लास पीता गया। उसकी आँखें लाल-लाल निकल आईं, ऊल-जलूल बकने लगा, ख़ूब डींगें मारीं, फिर बेसुरे राग में एक बाज़ारी गीत गाने लगा। अन्त में उसी कुरसी पर पड़ा-पड़ा बेसुध हो गया।

२

सहसा पीछे का परदा हटा और लीला ने उसे इशारे से बुलाया। दयाकृष्ण की धमनियों में शतगुण वेग से रक्त दौड़ने लगा। उसकी सङ्कोचमय, भीरु प्रकृति भीतर से जितनी ही रूपासक्त थी, बाहर से उतनी ही विरक्त। सुन्दरियों के सम्मुख आकर वह स्वयं अवाक् हो जाता था, उसके कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ जाती थी और आँखें झुक जाती थीं। लेकिन मन उनके चरणों पर लोट कर अपने आपको समर्पित कर देने के लिए विकल हो जाता था। मित्रगण उसे बूढ़े बाबा कहा करते थे। स्त्रियाँ उसे अरसिक समझ कर उससे उदासीन रहती थीं। किसी युवती के साथ लङ्का तक रेल में एकान्त यात्रा करके भी वह उससे एक शब्द भी बोलने का साहस न करता। हाँ, यदि युवती स्वयं उसे छेड़ती तो वह अपने प्राण तक उसकी भेंट कर देता। उसके इस सङ्कोचमय, अवरुद्ध जीवन में लीला ही एक युवती थी, जिसने उसके मन को समझा था और उससे सपाक सहृदयता का व्यवहार किया था। तभी से दयाकृष्ण मन से उसका उपासक हो गया था। उसके अनुभव-शून्य हृदय में लीला नारी-जाति का सब से सुन्दर आदर्श थी। उसकी प्यासी आत्मा को शर्बत या लेमनेड की उतनी इच्छा न थी, जितना ठण्डे, मीठे पानी की। लीला में रूप है, लावण्य है, सुकुमारता है, इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उससे ज़्यादा रूपवान, लावण्यमयी और सुकुमार युवतियाँ उसने पार्कों में देखी थीं। लीला में सहृदयता है, विचार है, दया है, इन्हीं तत्वों की ओर उसका आकर्षण था। उसकी रसिकता में आत्म-समर्पण के सिवा और कोई भाव न था। लीला के किसी आदेश का पालन करना उसकी सब से बड़ी कामना थी, उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए इतना काफ़ी था। उसने काँपते हाथों से परदा उठाया और अन्दर जाकर लीला के सामने खड़ा हो गया और विस्मय-भरी आँखों से उसे देखने लगा। उसने लीला को यहाँ न देखा होता तो पहचान भी न सकता। वह रूप, यौवन और विकास की देवी इस तरह मुरझा गई थी, जैसे किसी ने उसके प्राणों को चूस कर निकाल लिया हो। करुण स्वर में बोला—यह तुम्हारा क्या हाल है लीला! बीमार हो क्या? मुझे सूचना तक न दी।

लीला मुसकिरा कर बोली—तुमसे मतलब! मैं बीमार हूँ या अच्छी हूँ, तुम्हारी बला से। तुम तो अपने सैर-सपाटे करते रहे। छः महीने के बाद जब आपको याद आई है, तो पूछते हो बीमार हो! मैं उस रोग में ग्रस्त हूँ, जो प्राण लेकर ही छोड़ता है। तुमने इन महाशय की हालत देखी। उनका यह रङ्ग देख कर मेरे दिल पर क्या गुज़रती है, यह क्या मैं अपने मुँह से कहूँ तभी समझोगे? मैं अब इस घर में ज़बरदस्ती पड़ी हूँ और बेहयाई से जीती हूँ। किसी को मेरी चाह या चिन्ता नहीं है। पापा क्या मरे, मेरा सोहाग ही उठ गया। कुछ समझाती हूँ तो बेवक़ूफ़ बनाई जाती हूँ। रात-रात भर न जाने कहाँ ग़ायब रहते हैं। जब देखो नशे में मस्त। हफ़्तों घर में नहीं आते कि दो बातें तो कर लूँ। अगर इनके यही ढङ्ग रहे तो साल दो साल में रोटियों को मुहताज हो जायँगे।

दया ने पूछा—यह लत इन्हें कैसे पड़ गई? यह बातें तो इनमें न थीं।

लीला ने व्यथित स्वर में कहा—रुपए की बलिहारी है और क्या। इसीलिए तो बूढ़े मर-मर के कमाते हैं और मरने के बाद लड़कों के लिए छोड़ जाते हैं। अपने मन में समझते होंगे, हम लड़कों के लिए बैठने का ठिकाना किए जाते हैं। मैं कहती हूँ, तुम उनके सर्वनाश का सामान किए जाते हो, उनके लिए ज़हर बोए जाते हो। पापा ने लाखों रुपए की सम्पत्ति न छोड़ी होती तो आज यह महाशय किसी काम में लगे होते, कुछ घर की चिन्ता होती, कुछ ज़िम्मेदारी होती। नहीं तो बैङ्क से रुपए निकाले और उड़ाए। अगर मुझे विश्वास होता कि सम्पत्ति समाप्त करके वह सीधे मार्ग पर आ जायँगे, तो मुझे ज़रा भी दुःख न होता। पर मुझे तो यह भय है कि ऐसे लोग फिर किसी काम के नहीं रहते। या तो जेलख़ाने में मरते हैं, या अनाथालय में। आपकी एक वेश्या से आशनाई है। माधुरी नाम है। और वह इन्हें उल्टे छुरे से मूँड़ रही है, जैसा उसका धर्म है। आपको यह ख़ब्त हो गया है कि वह मुझ पर जान देती है। उससे विवाह का प्रस्ताव भी किया जा चुका है। मालूम नहीं, उसने क्या जवाब दिया। कई बार जी में आया कि जब यहाँ किसी से कोई नाता ही नहीं है, तो अपने घर चली जाऊँ, लेकिन डरती हूँ कि अब तो यह

और भी स्वतन्त्र हो जायँगे। मुझे किसी पर विश्वास है तो वह तुम हो। इसीलिए तुम्हें बुलाया था कि शायद तुम्हारे समझाने-बुझाने का कुछ असर हो। अगर तुम भी असफल हुए तो मैं एक क्षण यहाँ न रहूँगी। भोजन तैयार है, चलो कुछ खालो।

दयाकृष्ण ने सिंगारसिंह की ओर सङ्केत करके कहा—और यह?

"यह तो अब कहीं दो-तीन बजे चेतेंगे।"

"बुरा मानेंगे।"

"मैं अब इन बातों की परवाह नहीं करती। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अगर मुझे कभी आँखें दिखाईं तो मैं भी इन्हें मज़ा चखा दूँगी। मेरे पिता जी फ़ौज में सूबेदार मेजर हैं। मेरी देह में उनका रक्त है।"

लीला की मुद्रा उत्तेजित हो गई। विद्रोह की वह आग, जो महीनों से पड़ी सुलग रही थी, प्रचण्ड हो उठी।

उसने उसी लहजे में कहा—मेरी इस घर में इतनी साँसत हुई है, इतना अपमान हुआ है और हो रहा है कि मैं उसका किसी तरह भी प्रतिकार करके आत्मग्लानि का अनुभव न करूँगी। मैंने पापा से अपना हाल छिपा रक्खा है। आज लिख दूँ तो इनकी सारी मशीख़त उतर जाय। नारी होने का दण्ड भोग रही हूँ। लेकिन नारी के धैर्य की भी सीमा है।

दयाकृष्ण उस सुकुमारी का वह तमतमाया हुआ चेहरा, वह जलती हुई आँखें, वह काँपते हुए होंठ देख कर काँप उठा। उसकी दशा उस आदमी की सी हो गई, जो किसी रोगी को दर्द से तड़पते देख कर वैद्य को बुलाने दौड़े। आर्द्र कण्ठ से बोला—इस समय मुझे क्षमा करो लीला, फिर कभी तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार करूँगा। तुम्हें अपनी ओर से इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे अपना सेवक समझती रहना। मुझे न मालूम था कि तुम्हें इतना कष्ट है, नहीं शायद अब तक मैंने कुछ युक्ति सोची होती। मेरा यह शरीर तुम्हारे किसी काम आए, इससे बढ़ कर सौभाग्य की बात मेरे लिए और क्या होगी।

दयाकृष्ण यहाँ से चला तो उसके मन में इतना उल्लास भरा हुआ था, मानों विमान पर बैठा हुआ स्वर्ग की ओर जा रहा है। आज उसे जीवन में एक ऐसा लक्ष्य मिल गया था, जिसके लिए वह जी भी सकता है, मर भी सकता है। वह एक महिला का विश्वासपात्र हो गया था। इस रत्न को वह अपने हाथ से कभी न जाने देगा, चाहे उसकी जान ही क्यों न जाय।

३

एक महीना गुज़र गया। दयाकृष्ण सिंगारसिंह के घर नहीं आया। न सिंगारसिंह ने उसकी परवाह की। इस एक ही मुलाक़ात में उसने समझ लिया था कि वह इस नए रङ्ग में आने वाला आदमी नहीं है। ऐसे सात्विक जनों के लिए उसके यहाँ स्थान न था। वहाँ तो रँगीले, रसिया, अय्याश, बिगड़े दिलों ही की चाह थी। हाँ, लीला को हमेशा उसकी याद आती रहती थी।

मगर दयाकृष्ण के स्वभाव में अब वह संयम नहीं है। विलासिता का जादू उस पर भी चलता हुआ मालूम होता है। माधुरी के घर उसका आना-जाना भी शुरू हो गया है। वह सिंगारसिंह का मित्र नहीं रहा, प्रतिद्वन्द्वी हो गया है। दोनों एक ही प्रतिमा के उपासक हैं। मगर उनकी उपासना में अन्तर है। सिंगार की दृष्टि में माधुरी केवल विलास की एक वस्तु है, केवल विनोद का एक यन्त्र। दयाकृष्ण विनय की मूर्ति है, जो माधुरी की सेवा में ही प्रसन्न है। सिंगार माधुरी के हास-विलास को अपना ज़रख़रीद हक़ समझता है, दयाकृष्ण इसी में सन्तुष्ट है कि माधुरी उसकी सेवाओं को स्वीकार करती है। माधुरी की ओर से ज़रा भी अरुचि देख कर वह उसी तरह बिगड़ जायगा, जैसे अपनी प्यारी घोड़ी की मुँहज़ोरी पर। दयाकृष्ण अपने को उसकी कृपा-दृष्टि के योग्य ही नहीं समझता। सिंगार जो कुछ माधुरी को देता है, गर्व भरे आत्म-प्रदर्शन के साथ, मानो उस पर कोई एहसान कर रहा हो। दयाकृष्ण के पास देने को है ही क्या, पर वह जो कुछ भेंट करता है, वह ऐसी श्रद्धा से, मानों देवता को फूल चढ़ाता हो। सिंगार का आसक्त मन माधुरी को अपने पिंजरे में बन्द रखना चाहता है, जिसमें उस पर किसी की निगाह न पड़े। दयाकृष्ण निर्लिप्त भाव से उसकी स्वच्छन्द क्रीड़ा का आनन्द उठाता है। माधुरी को अब तक जितने आदमियों से साबिक़ा पड़ा था, वे सब सिंगारसिंह की ही भाँति कामुक, ईर्ष्यालु, दम्भी और कोमल भावों से शून्य थे, रूप को भोग की वस्तु समझने वाले। दयाकृष्ण उन

सभों से अलग था, सहृदय, भद्र और सेवाशील, मानों उस पर अपनी आत्मा को समर्पण कर देना चाहता हो। माधुरी को अब अपने जीवन में कोई ऐसा पदार्थ मिल गया है, जिसे वह बड़ी एहतियात से सँभाल कर रखना चाहती है। जड़ाऊ गहने अब उसकी आँखों में उतने मूल्यवान नहीं रहे, जितनी यह फ़क़ीर की दी हुई तावीज़। जड़ाऊ गहने हमेशा मिलेंगे, यह तावीज़ खो गई तो फिर शायद ही कभी हाथ आए। जड़ाऊ गहने केवल उसकी विलास-प्रवृत्ति को उत्तेजित करते हैं, पर इस तावीज़ में तो कोई दैवी शक्ति है, जो न जाने कैसे उसमें सदनुराग और परिष्कार-भावना को जगाती है। दयाकृष्ण कभी प्रेम-प्रदर्शन नहीं करता, अपनी विरह-व्यथा के राग नहीं अलापता, पर माधुरी को उस पर पूरा विश्वास है। सिंगारसिंह के प्रलाप में उसे बनावट और दिखावे का आभास होता है। वह चाहती है, यह जल्द यहाँ से टले। लेकिन दयाकृष्ण के संयत भाषण में उसे गहराई तथा गाम्भीर्य और गुरुत्व का आभास होता है। औरों की वह प्रेमिका है, लेकिन दयाकृष्ण की आशिक़, जिसके क़दमों की आहट पाकर उसके अन्दर एक तूफ़ान उठने लगता है। उसके जीवन में यह नई अनुभूति है। अब तक वह दूसरों के भोग की वस्तु थी, अब कम से कम एक प्राणी की दृष्टि में वह आदर और प्रेम की वस्तु है।

सिंगारसिंह को जब से दयाकृष्ण के इस प्रेमाभिनय की सूचना मिली है, उसके ख़ून का प्यासा हो गया है। ईर्षाग्नि से फुँका जा रहा है। उसने दयाकृष्ण के पीछे कई शोहदे लगा रक्खे हैं कि उसे जहाँ पाएँ उसका काम तमाम कर दें। वह ख़ुद पिस्तौल लिए उसकी टोह में रहता है। दयाकृष्ण इस ख़तरे को समझता है, जानता है; पर अपने नियत समय पर माधुरी के पास बिला नाग़ा आ जाता है। मालूम होता है, उसे अपनी जान का कुछ भी मोह नहीं है। शोहदे उसे देख कर क्यों कतरा जाते हैं, मौक़ा पाकर भी क्यों उस पर वार नहीं करते, इसका रहस्य वह नहीं समझता।

एक दिन माधुरी ने उससे कहा—कृष्ण जी, तुम यहाँ न आया करो। तुम्हें तो पता नहीं है, पर यहाँ तुम्हारे बीसों दुश्मन हैं। मैं डरती हूँ कि किसी दिन कोई बात न हो जाय।

शिशिर की तुषार-मण्डित सन्ध्या थी। माधुरी एक काश्मीरी शाल ओढ़े हुए अँगीठी के सामने बैठी हुई थी। कमरे में बिजली का रजत प्रकाश फैला हुआ था। दयाकृष्ण ने देखा, माधुरी की आँखें सजल हो गई हैं और वह मुँह फेर कर उन्हें दयाकृष्ण से छिपाने की चेष्टा कर रही है। प्रदर्शन पर सुखभोग करने वाली रमणी क्यों सम्वरणशील हो गई है, यह उसका अनाड़ी मन न समझ सका। हाँ, माधुरी के गोरे, प्रसन्न, सङ्कोच-हीन मुख पर लज्जा-मिश्रित मधुरिमा की ऐसी छटा उसने कभी न देखी थी। आज उसने उस मुख पर कुल-वधू की भीरु आकांक्षा और दृढ़ वात्सल्य देखा और उस अभिनय में सत्य का उदय हो गया।

उसने स्थिर भाव से जवाब दिया—मैं तो किसी की बुराई नहीं करता, मुझसे किसी को क्यों बैर होने लगा। मैं यहाँ किसी का बाधक नहीं, किसी का विरोधी नहीं। दाता के द्वार पर सभी भिक्षुक जाते हैं। अपना-अपना भाग्य है, किसी को एक चुटकी मिलती है, किसी को पूरा थाल। कोई क्यों किसी से जले? अगर किसी पर तुम्हारी विशेष कृपा है, तो मैं उसे भाग्यशाली समझ कर उसका आदर करूँगा। जलूँ क्यों?

माधुरी ने स्नेह-कातर स्वर में कहा—जी नहीं, आप कल से न आया कीजिए।

दयाकृष्ण मुसकिरा कर बोला—तुम मुझे यहाँ आने से नहीं रोक सकतीं। भिक्षुक को तुम दुत्कार सकती हो, द्वार पर आने से नहीं रोक सकतीं।

माधुरी स्नेह की आँखों से उसे देखने लगी, फिर बोली—क्या सभी आदमी तुम्हीं जैसे निष्कपट हैं?

"तो फिर मैं क्या करूँ?"

"यहाँ न आया करो।"

"यह मेरे बस की बात नहीं।"

माधुरी एक क्षण तक विचार करके बोली—एक बात कहूँ मानोगे, चलो हम तुम किसी दूसरे नगर की राह लें।

"केवल इसलिए कि कुछ लोग मुझसे ख़ार खाते हैं।"

"ख़ार नहीं खाते, तुम्हारी जान के गाहक हैं।"

दयाकृष्ण उसी अविचलित भाव से बोला—जिस दिन प्रेम का यह पुरस्कार मिलेगा, वह मेरे जीवन का

नया दिन होगा माधुरी, इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है। तब मैं तुमसे पृथक् न रह कर तुम्हारे मन में, तुम्हारी स्मृति में रहूँगा।

माधुरी ने कोमल हाथ से उसके गाल पर थपकी दी। उसकी आँखें भर आई थीं। इन शब्दों में जो प्यार भरा हुआ था, वह जैसे पिचकारी की धार की तरह उसके हृदय में समा गया। ऐसी विकल वेदना! ऐसा नशा! इसे वह क्या कहे।

उसने करुण स्वर में कहा—ऐसी बातें न किया करो कृष्णा, नहीं मैं सच कहती हूँ, एक दिन ज़हर खाकर तुम्हारे चरणों पर सो जाऊँगी। तुम्हारे इन शब्दों में न जाने क्या जादू था कि मैं जैसे फुँक उठी। अब आप ख़ुदा के लिए यहाँ न आया कीजिए, नहीं देख लेना मैं एक दिन प्राण दे दूँगी। तुम क्या जानो, हत्यारा सिंगार किस बुरी तरह तुम्हारे पीछे पड़ा हुआ है। मैं उसके शोहदों की ख़ुशामद करते-करते हार गई। कितना कहती हूँ, दयाकृष्ण से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके सामने तुम्हारी कितनी निन्दा करती हूँ, कितना कोसती हूँ, लेकिन उस निर्दयी को मुझ पर विश्वास नहीं आता। तुम्हारे लिए मैंने इन गुण्डों की कितनी मिन्नतें की हैं, उनके हाथों कितना अपमान सहा है, वह तुमसे न कहना ही अच्छा है। जिनका मुँह देखना भी मैं अपनी शान के ख़िलाफ़ समझती हूँ, उनके पैरों पड़ी हूँ। लेकिन ये कुत्ते हड्डियों के टुकड़े पाकर और भी शेर होते जाते हैं। मैं अब उनसे तङ्ग आ गई हूँ और तुमसे हाथ जोड़ कर कहती हूँ कि यहाँ से किसी ऐसी जगह चले चलो, जहाँ हमें कोई न जानता हो। वहाँ शान्ति के साथ पड़े रहें। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। आज इसका निश्चय कराए बिना मैं तुम्हें न जाने दूँगी। मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझ पर अब भी विश्वास नहीं है। तुम्हें सन्देह है कि मैं तुम्हारे साथ कपट करूँगी।

दयाकृष्ण ने टोंका—नहीं माधुरी, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मेरे मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं आया। पहले ही दिन मुझे न जाने क्यों, कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम अपनी और बहिनों से कुछ पृथक् हो। मैंने तुममें वह शील और सङ्कोच देखा, जो मैंने कुल-बधुओं में देखा है।

माधुरी ने उसकी आँखों में आँखें गड़ा कर कहा—तुम झूठ बोलने की कला में इतने निपुण नहीं हो कृष्णा कि एक वेश्या को भुलावा दे सको। मैं न शीलवती हूँ, न सङ्कोचवती हूँ और न अपनी दूसरी बहिनों से अभिन्न हूँ। मैं वेश्या हूँ, उतनी ही कलुषित, उतनी ही विलासान्ध, उतनी ही मायाविनी; जितनी मेरी दूसरी बहिनें, बल्कि उनसे कुछ ज़्यादा। न तुम अन्य पुरुषों की तरह मेरे पास विनोद और वासना-तृप्ति के लिए आए थे। नहीं, महीनों आते रहने पर भी तुम यों अलिप्त न रहते। तुमने कभी डींग नहीं मारी, मुझे धन का प्रलोभन नहीं दिया। मैंने भी कभी तुमसे धन की आशा नहीं की। तुमने अपनी वास्तविक स्थिति मुझसे कह दी। फिर भी मैंने तुम्हें एक नहीं, अनेक ऐसे अवसर दिए कि कोई दूसरा आदमी उन्हें न छोड़ता। लेकिन तुम्हें मैं अपने पञ्जे में न ला सकी। तुम चाहे और जिस इरादे से आए हो, भोग की इच्छा से नहीं आए। अगर मैं तुम्हें इतना नीच, इतना हृदयहीन, इतना विलासान्ध समझती तो इस तरह तुम्हारे नाज़ न उठाती। फिर मैं भी तुम्हारे साथ मित्र-भाव रखने लगी। समझ लिया मेरी परीक्षा हो रही है। जब तक इस परीक्षा में सफल न हो जाऊँ, तुम्हें नहीं पा सकती। तुम जितने सज्जन हो, उतने ही कठोर हो।

यह कहते हुए माधुरी ने दयाकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और अनुराग और समर्पण भरी चितवनों से उसे देख कर बोली—सच बताओ कृष्णा, तुम मुझमें क्या देख कर आकर्षित हुए थे। देखो, बहानेबाज़ी न करना। तुम रूप पर मुग्ध होने वाले आदमी नहीं हो, मैं क़सम खा सकती हूँ।

दयाकृष्ण ने सङ्कट में पड़ कर कहा—रूप इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है माधुरी। वह मन का आईना है।

"यहाँ मुझसे रूपवान स्त्रियों की कमी नहीं है।"

"यह तो अपनी-अपनी निगाह है। मेरे पूर्व संस्कार रहे होंगे।"

माधुरी ने भवें सिकोड़ कर कहा—तुम फिर झूठ बोल रहे हो, चेहरा कहे देता है।

दयाकृष्ण ने परास्त होकर पूछा—पूछ कर क्या करोगी माधुरी? मैं डरता हूँ, कहीं तुम मुझसे घृणा न

करने लगो। सम्भव है, तुम मेरा जो रूप देख रही हो, वह मेरा असली रूप न हो।

माधुरी का मुँह लटक गया। विरक्त सी होकर बोली—इसका खुले शब्दों में यह अर्थ है कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है। ठीक है, वेश्याओं पर विश्वास करना भी नहीं चाहिए। विद्वानों और महात्माओं का उपदेश कैसे न मानोगे।

नारी-हृदय इस समस्या पर विजय पाने के लिए अपने अस्त्रों से काम लेने लगा।

दयाकृष्ण पहले ही हमले में हिम्मत छोड़ बैठा। बोला—तुम तो नाराज़ हुई जाती हो माधुरी। मैंने तो केवल इस विचार से कहा था कि तुम मुझे धोखेबाज़ समझने लगोगी। तुम्हें शायद मालूम नहीं है, सिंगारसिंह ने मुझ पर कितने एहसान किए हैं। मैं उन्हीं के टुकड़ों पर पला हूँ। इसमें रत्ती भर भी मुबालग़ा नहीं है। यहाँ आकर जब मैंने उनके रङ्ग-ढङ्ग देखे और उनकी साध्वी स्त्री लीला को बहुत दुखी पाया तो सोचते-सोचते मुझे यही उपाय सूझा कि किसी तरह सिंगारसिंह को तुम्हारे पञ्जे से छुड़ाऊँ। मेरे इस अभिनय का यही रहस्य है। लेकिन उन्हें छुड़ा तो न सका, ख़ुद फँस गया। मेरे इस फ़रेब की जो सज़ा चाहो दो, सिर झुकाए हुए हूँ।

माधुरी का अभिमान टूट गया। जल कर बोली—तो यह कहिए कि आप लीलादेवी के आशिक़ हैं। मुझे पहले से मालूम होता तो तुम्हें इस घर में घुसने न देती। तुम तो एक ही छिपे रुस्तम निकले।

वह तोते के पिंजरे के पास जाकर उसे पुचकारने का बहाना करने लगी। मन में जो एक दाह उठ रही थी, उसे कैसे शान्त करे।

दयाकृष्ण ने तिरस्कार भरे स्वर में कहा—मैं लीला का आशिक़ नहीं हूँ माधुरी, उस देवी को कलङ्कित न करो। मैं आज तुमसे शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने कभी उसे इस निगाह से नहीं देखा। उसके प्रति मेरा वही भाव था, जो अपने किसी आत्मीय को दुख में देख कर हरेक मनुष्य के मन में आता है।

"किसी से प्रेम करना तो पाप नहीं है, तुम व्यर्थ में अपनी और लीला की सफ़ाई दे रहे हो।"

"मैं नहीं चाहता कि लीला पर किसी तरह का आक्षेप किया जाय।"

"अच्छा साहब, लीजिए लीला का नाम न लूँगी। मैंने मान लिया वह सती है, साध्वी है और केवल उनकी आज्ञा से ××× "

दयाकृष्ण ने बात काटी—उनकी कोई आज्ञा नहीं थी।

"ओहो, तुम तो ज़बान पकड़ते हो कृष्णा। क्षमा करो, उनकी आज्ञा से नहीं, तुम अपनी इच्छा से आए थे। अब तो राज़ी हुए। अब यह बताओ, आगे तुम्हारे क्या इरादे हैं। मैं वचन तो दे दूँगी, मगर अपने संस्कारों को नहीं बदल सकती। मेरा मन दुर्बल है। मेरा सतीत्व कब का नष्ट हो चुका है। अन्य मूल्यवान पदार्थों की ही तरह रूप और यौवन की रक्षा भी बलवान हाथों से हो सकती है। मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने पर तैयार हो? तुम्हारा आश्रय पाकर, तुम्हारे प्रेम की शक्ति से, मुझे विश्वास है, मैं जीवन के सारे प्रलोभनों का सामना कर सकती हूँ। मैं इस सोने के महल को ठुकरा दूँगी, लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छाँह तो मिलनी चाहिए। वह छाँह तुम मुझे दोगे? अगर नहीं दे सकते तो मुझे छोड़ दो। मैं अपने हाल में मगन हूँ। मैं वादा करती हूँ, सिंगारसिंह से मैं कोई सम्बन्ध न रक्खूँगी। वह मुझे घेरेगा, रोएगा, सम्भव है गुण्डों से मेरा अपमान कराए, आतङ्क दिखाए, लेकिन मैं सब कुछ झेल लूँगी, तुम्हारी ख़ातिर से ×××।"

आगे और कुछ न कह कर वह तृष्णा भरी, लेकिन उसके साथ ही निरपेक्ष नेत्रों से दयाकृष्ण की ओर देखने लगी, जैसे कोई दूकानदार गाहक को बुलाता तो है, पर साथ ही यह भी दिखाना चाहता है कि उसे उसकी परवाह नहीं है।

दयाकृष्ण क्या जवाब दे? सङ्घर्षमय संसार में उसने अभी केवल एक क़दम टिका पाया है। इधर वह अङ्गुल भर जगह भी उससे छिन गई है। शायद ज़ोर मार कर वह फिर वह स्थान पा जाय, लेकिन वहाँ बैठने की जगह नहीं है, और एक दूसरे प्राणी को लेकर तो वह खड़ा भी नहीं रह सकता। अगर मान लिया जाय कि अदम्य उद्योग से दोनों के लिए स्थान निकाल लेगा, तो

आत्म-सम्मान को कहाँ ले जाय? संसार क्या कहेगा! लीला क्या फिर उसका मुँह देखना चाहेगी, सिंगार से वह फिर आँखें मिला सकेगा? यह भी छोड़ो। लीला अगर उसे पतित समझती है समझे, सिंगार अगर उससे जलता है जले, उसे इसकी परवाह नहीं है, लेकिन अपने मन को क्या करे? विश्वास उसके अन्दर आकर जाल में फँसे पक्षी की भाँति फड़फड़ा कर निकल भागता है। कुलीना अपने साथ विश्वास का वरदान लिए आती है। उसके साहचर्य में हमें कभी सन्देह नहीं होता। वहाँ सन्देह के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण चाहिए। कुत्सिता सन्देह का संस्कार लिए आती है। वहाँ विश्वास के लिए प्रत्यक्ष—अत्यन्त प्रत्यक्ष—प्रमाण की ज़रूरत है। उसने नम्रता से कहा—तुम जानती हो, मेरी क्या हालत है?

"हाँ, ख़ूब जानती हूँ।"

"और उस हालत में तुम प्रसन्न रह सकोगी?"

"तुम ऐसा प्रश्न क्यों करते हो कृष्णा, मुझे दुख होता है। तुम्हारे मन में जो सन्देह है, वह मैं जानती हूँ, समझती हूँ। मुझे भ्रम हुआ था कि तुमने भी मुझे जान लिया है, समझ लिया है। अब मालूम हुआ, मैं धोखे में थी।"

वह उठ कर वहाँ से जाने लगी। दयाकृष्ण ने उसका हाथ पकड़ लिया और प्रार्थी भाव से बोला—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो माधुरी। मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है × × ×

माधुरी ने खड़े-खड़े विरक्त मन से कहा—तुम झूठ बोल रहे हो, बिलकुल झूठ। तुम अब भी मन से यह स्वीकार नहीं कर रहे हो कि कोई स्त्री स्वेच्छा से रूप का व्यवसाय नहीं करती। पैसे के लिए अपनी लज्जा को उघाड़ना, तुम्हारी समझ में कुछ ऐसी आनन्द की बात है, जिसे वेश्या शौक़ से करती है। तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से बहुत दूर समझते हो। तुम इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती। तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है, और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है, तो किस तरह प्राणों की भाँति उसे सञ्चित रखती है। खारे पानी के समुद्र में मीठे पानी का छोटा सा पात्र कितना प्रिय होता है, इसे वह क्या जाने, जो मीठे पानी के मटके उँडेलता रहता हो।

दयाकृष्ण कुछ ऐसे असमञ्जस में पड़ा हुआ था कि उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। उसके मन में जो शङ्का चिनगारी की भाँति छिपी हुई है, वह बाहर निकल कर कितनी भयङ्कर ज्वाला उत्पन्न कर देगी। उसने कपट का जो अभिनय किया था, प्रेम का जो स्वाँग रचा था, उसकी ग्लानि उसे और भी व्यथित कर रही थी।

सहसा माधुरी ने निष्ठुरता से पूछा—तुम यहाँ क्यों बैठे हो?

दयाकृष्ण ने अपमान को पीकर कहा—मुझे सोचने के लिए कुछ समय दो माधुरी!

"क्या सोचने के लिए?"

"अपना कर्त्तव्य।"

"मैंने अपना कर्त्तव्य सोचने के लिए तो तुमसे समय नहीं माँगा। तुम अगर मेरे उद्धार की बात सोच रहे हो, तो उसे दिल से निकाल डालो। मैं भ्रष्टा हूँ और तुम साधुता के पुतले हो—जब तक यह भाव तुम्हारे अन्दर रहेगा, मैं तुमसे उसी तरह बात करूँगी जैसे औरों के साथ करती हूँ। मैं अगर भ्रष्टा हूँ तो जो लोग मेरे यहाँ अपना मुँह काला करने आते हैं, वे कुछ कम भ्रष्ट नहीं हैं। तुम जो एक मित्र की स्त्री पर दाँत लगाए हुए हो, तुम जो एक सरला अबला के साथ झूठे प्रेम का स्वाँग करते हो, तुम्हारे हाथों अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो तो उसे ठुकरा दूँ।

दयाकृष्ण ने लाल आँखें करके कहा—तुमने फिर वही आक्षेप किया!

माधुरी तिलमिला उठी। उसकी रही-सही मृदुता भी ईर्ष्या के उमड़ते हुए प्रवाह में समा गई। लीला पर आक्षेप भी असह्य है, इसलिए कि वह कुलवधू है। मैं वेश्या हूँ, इसलिए मेरे प्रेम का उपहार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

उसने अविचलित भाव से कहा—आक्षेप नहीं कर रही हूँ, सच्ची बात कह रही हूँ। तुम्हारे डर से बिल खोदने नहीं जा रही हूँ। तुम स्वीकार करो या न करो, तुम लीला पर मरते हो। तुम्हारी लीला तुम्हें मुबारक

रहे। मैं अपने सिंगारसिंह ही में प्रसन्न हूँ। उद्धार की लालसा अब नहीं रही। पहले जाकर अपना उद्धार करो। अब से ख़बरदार, कभी भूल कर भी यहाँ न आना, नहीं पछताओगे। तुम जैसे रँगे हुए सियार पतितों का उद्धार नहीं करते। उद्धार वही कर सकते हैं, जो उद्धार के अभिमान को हृदय में आने ही नहीं देते। जहाँ प्रेम है वहाँ किसी तरह का भेद नहीं रह सकता।

यह कहने के साथ ही वह उठ कर बराबर वाले दूसरे कमरे में चली गई और अन्दर से द्वार बन्द कर लिया। दयाकृष्ण कुछ देर वहाँ मर्माहत सा बैठा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया, मानों देह में प्राण न हो।

४

दो दिन दयाकृष्ण घर से न निकला। माधुरी ने उसके साथ जो व्यवहार किया, इसकी उसे आशा न थी। माधुरी को उससे प्रेम था, इसका उसे विश्वास था। लेकिन जो प्रेम इतना असहिष्णु हो, जो दूसरे के मनोभावों का ज़रा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलङ्क आरोपण करने में भी सङ्कोच न करे, वह उन्माद हो सकता है, प्रेम नहीं। उसने बहुत अच्छा किया कि माधुरी के कपट-जाल में न फँसा, नहीं उसकी न जाने क्या दुर्गति होती।

पर दूसरे क्षण उसके भाव बदल जाते और माधुरी के प्रति उसका मन कोमलता से भर जाता। अब वह अपनी अनुदारता पर, अपनी सङ्कीर्णता पर पछताता। उसे माधुरी पर सन्देह करने का कोई कारण न था। ऐसी दशा में ईर्ष्या स्वाभाविक है और वह ईर्ष्या ही क्या, जिसमें डङ्क न हो, विष न हो। माना, समाज उसकी निन्दा करता। यह भी मान लिया कि माधुरी सती भार्या न होती। कम से कम सिंगारसिंह तो उसके पञ्जे से निकल जाता। दयाकृष्ण के सिर से ऋण का भार तो कुछ हलका हो जाता, लीला का जीवन तो सुखी हो जाता।

सहसा किसी ने द्वार खटखटाया। उसने द्वार खोला तो सिंगारसिंह सामने खड़ा था। बाल बिखरे हुए, कुछ अस्त-व्यस्त।

दयाकृष्ण ने हाथ मिलाते हुए पूछा—क्या पाँव-पाँव ही आ रहे हो, मुझे क्यों न बुला लिया?

सिंगार ने उसे चुभती हुई आँखों से देख कर कहा—मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि माधुरी कहाँ है। अवश्य तुम्हारे घर में होगी।

"क्यों, अपने घर पर होगी, मुझे क्या ख़बर? मेरे घर क्यों आने लगी?"

"इन बहानों से काम न चलेगा, समझ गए। मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारा ख़ून पी जाऊँगा, वरना ठीक-ठीक बता दो, वह कहाँ गई।"

"मैं बिलकुल कुछ नहीं जानता, तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। मैं तो दो दिन से घर से निकला ही नहीं।"

"रात को मैं उसके पास था। सवेरे मुझे उसका यह पत्र मिला। मैं उसी वक़्त दौड़ा हुआ उसके घर गया। वहाँ उसका पता न था। नौकरों से इतना मालूम हुआ, ताँगे पर बैठ कर कहीं गई है। कहाँ गई है, यह कोई न बता सका। मुझे शक हुआ, यहाँ आई होगी। जब तक तुम्हारे घर की तलाशी न ले लूँगा, मुझे चैन न आएगा।

उसने मकान का एक-एक कोना देखा, तख़्त के नीचे, अलमारी के पीछे। तब निराश होकर बोला—बड़ी बेवफ़ा और मक्कार औरत है। ज़रा इस ख़त को पढ़ो।

दोनों फ़र्श पर बैठ गए। दयाकृष्ण ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया—

"सरदार साहब! मैं आज कुछ दिनों के लिए यहाँ से जा रही हूँ। कब लौटूँगी, कुछ नहीं जानती। कहाँ जा रही हूँ, यह भी नहीं जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बेशर्मी और बेहयाई की ज़िन्दगी से मुझे घृणा हो रही है, और घृणा हो रही है उन लम्पटों से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलौना थी और जिनमें तुम मुख्य हो। तुम महीनों से मुझ पर सोने और रेशम की वर्षा कर रहे हो। मगर मैं तुमसे पूछती हूँ, उससे लाख गुने सोने और दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहिन या स्त्री को इस रूप के बाज़ार में बैठने दोगे? कभी नहीं। उन देवियों में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे तुम संसार भर की दौलत से भी मूल्यवान समझते हो। लेकिन जब तुम शराब के नशे में चूर, अपने एक-एक अङ्ग में काम का उन्माद भरे आते थे, तो तुम्हें कभी

ध्यान आता था कि तुम उसी अमूल्य वस्तु को किस निर्दयता के साथ पैरों से कुचल रहे हो? कभी ध्यान आता था कि अपनी कुल-देवियों को इस अवस्था में देख कर तुम्हें कितना दुख होता? कभी नहीं। यह उन गीदड़ों और गिद्धों की मनोवृत्ति है, जो किसी लाश को देख कर चारों ओर से जमा हो जाते हैं और उसे नोच-नोच कर खाते हैं। यह समझ रक्खो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती। यदि वह ऐसा कर रही है, तो समझ लो उसके लिए और कोई आश्रय, और कोई आधार नहीं है। और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवस्था से अपनी वासना तृप्त करता है, और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलङ्क लगा कर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं है? लेकिन तुम उसे उस मन्दिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मन्दिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जायगी। ख़ैर, पुरुष-समाज जितना अत्याचार चाहे कर ले। हम असहाय हैं, अशक्त हैं; आत्माभिमान को भूल बैठी हैं। लेकिन × × ×"

सहसा सिंगारसिंह ने उसके हाथ से वह पत्र छीन लिया और जेब में रखता हुआ बोला—क्या बड़े ग़ौर से पढ़ रहे हो, कोई नई बात नहीं है। सब कुछ वही है, जो तुमने सिखाया है। यही करने तो तुम उसके यहाँ जाते थे। मैं कहता हूँ, तुम्हें मुझसे इतनी जलन क्यों हो गई? मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुराई न की थी। इस साल भर में मैंने माधुरी पर दस हज़ार से कम न फूँके होंगे। घर में जो कुछ मूल्यवान था, वह मैंने उसके चरणों पर चढ़ा दिया, और आज उसे साहस हो रहा है कि वह हमारी कुल-देवियों की बराबरी करे। यह सब तुम्हारा प्रसाद है। सत्तर चूहे खाके बिल्ली हज को चली। कितनी बेवफ़ा ज़ात है! ऐसों को तो गोली मार दे। जिस पर सारा घर लुटा दिया, जिसके पीछे सारे शहर में बदनाम हुआ, वह आज मुझे उपदेश करने चली है। ज़रूर इसमें कोई न कोई रहस्य है। कोई नया शिकार फँसा होगा। मगर मुझसे भाग कर जाएँगी कहाँ। ढूँढ़ न निकालूँ, तो नाम नहीं। कम्बख़्त कैसी प्रेम-भरी बातें करती थी कि मुझ पर घड़ों नशा चढ़ जाता था। बस कोई नया शिकार फँस गया। यह बात न हो तो मूँछ मुड़ा लूँ।

दयाकृष्ण उसके सफ़ाचट चेहरे की ओर देख कर मुसकिराया—तुम्हारी मूँछें तो पहले ही मुँड़ चुकी हैं।

इस हलके से विनोद ने जैसे सिंगारसिंह के घाव पर मरहम रख दिया। वह बेसरो-सामान घर, वह फटा फ़र्श, वह टूटी-फूटी चीज़ें देख कर उसे दयाकृष्ण पर दया आ गई। चोट की तिलमिलाहट में वह जवाब देने के लिए ईंट-पत्थर ढूँढ़ रहा था। पर अब चोट ठण्डी पड़ गई थी और दर्द घनीभूत हो रहा था, और दर्द के साथ सौहार्द्र भी जाग रहा था। जब आग ही बुझ गई तो धुआँ कहाँ से आता।

उसने पूछा—सच कहना, तुमसे भी कभी प्रेम की बातें करती थी?

दयाकृष्ण ने मुसकिराते हुए कहा—मुझसे! मैं तो ख़ाली उसकी सूरत देखने जाता था।

"सूरत देख कर दिल पर क़ाबू तो नहीं रहता।"

"यह तो अपनी-अपनी रुचि है।"

"है मोहिनी, देखते ही कलेजे पर छुरी चल जाती है।"

"मेरे कलेजे पर तो कभी छुरी नहीं चली। यही इच्छा होती थी कि इसके पैरों पर गिर पड़ूँ।"

"इसी शायरी ने तो यह अनर्थ किया। तुम जैसे बुद्धुओं को किसी देहातिन से शादी करके रहना चाहिए। चले थे वेश्या से प्रेम करने।"

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—मगर है बेवफ़ा, मक्कार।

"तुमने उससे वफ़ा की आशा की, मुझे तो यही अफ़सोस है।"

"तुमने वह दिल ही नहीं पाया, तुमसे क्या कहूँ।"

एक मिनिट के बाद उसने सहृदय भाव से कहा—अपने पत्र में उसने बातें तो सच्ची लिखी हैं, चाहे कोई माने या न माने। सौन्दर्य को बाज़ारी चीज़ समझना कुछ बहुत अच्छी बात तो नहीं है।

दयाकृष्ण ने पुचारा दिया—जब स्त्री अपना रूप बेचती है तो उसके ख़रीदार भी निकल आते हैं। फिर यहाँ तो कितनी ही जातियाँ हैं, जिनका यही पेशा है।

"यह पेशा चला कैसे?"

"पुरुषों की दुर्बलता से।"

"नहीं, मैं समझता हूँ, बिस्मिल्लाह पुरुषों ने की होगी।"

इसके बाद एकाएक जेब से घड़ी निकाल कर देखता हुआ बोला—ओहो! दो बज गए और अभी मैं यहीं बैठा हूँ। आज शाम को मेरे यहाँ खाना खाना। ज़रा इस विषय पर बातें होंगी। अभी तो उसे ढूँढ़ निकालना है। वह है कहीं इसी शहर में। घर वालों से भी कुछ नहीं कहा। बुढ़िया नायका सिर पीट रही थी। उस्ताद जी भी अपनी तक़दीर को रो रहे थे। न जाने कहाँ जाकर छिप रही।

उसने उठ कर दयाकृष्ण से हाथ मिलाया और चला।

दयाकृष्ण ने पूछा—मेरी तरफ़ से तो तुम्हारा दिल साफ़ हो गया?

सिंगार ने पीछे फिर कर कहा—हुआ भी और नहीं भी हुआ। और बाहर निकल गया।

५

सात-आठ दिन तक सिंगारसिंह ने सारा शहर छाना, पुलिस में रिपोर्ट की, समाचार-पत्रों में नोटिस छपाई, अपने आदमी दौड़ाए, लेकिन माधुरी का कुछ भी सुराग़ न मिला। फिर महफ़िल कैसे गर्म होती! मित्रवृन्द सुबह-शाम हाज़िरी देने आते और अपना सा मुँह लेकर लौट जाते। सिंगार के पास उनके साथ गपशप करने का समय न था।

गरमी के दिन। सजा हुआ कमरा भट्टी बना हुआ था। ख़स की टट्टियाँ भी थीं, पङ्खा भी, लेकिन गरमी जैसे किसी के समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करना चाहती, अपने दिल का बुख़ार निकाल कर ही रहेगी।

सिंगारसिंह अपने भीतर वाले कमरे में बैठा हुआ पेग पर पेग चढ़ा रहा था, पर अन्दर की आग न शान्त होती थी। इस आग ने ऊपर की घास-फूस को जला कर भस्म कर दिया था और अब अन्तस्तल की जड़ विरक्ति और अचल विचार को द्रवित करके बड़े वेग से ऊपर फेंक रही थी। माधुरी की बेवफ़ाई ने उसके आमोदी हृदय को इतना आहत कर दिया था कि अब अपना जीवन ही उसे बेकार सा मालूम होता था। माधुरी उसके जीवन में सबसे सत्य वस्तु थी, सत्य भी और सुन्दर भी। उसके जीवन की सारी रेखाएँ इसी बिन्दु पर आकर जमा हो जाती थीं। वह बिन्दु एकाएक पानी के बुलबुले की भाँति मिट गया और अब वह सारी रेखाएँ, वह सारी भावनाएँ, वह सारी मृदु स्मृतियाँ, उन झल्लाई हुई मधु-मक्खियों की तरह भनभनाती फिरती थीं, जिनका छत्ता जला दिया गया हो। जब माधुरी ने कपट-व्यवहार किया तो और किससे कोई आशा की जाय? इस जीवन ही में क्या है? आम में रस ही न रहा तो गुठली किस काम की?

लीला कई दिन से महफ़िल में सन्नाटा देख कर चकित हो रही थी। उसने कई महीनों से घर के किसी विषय में बोलना छोड़ दिया था। बाहर से जो आदेश मिलता था, उसे बिना कुछ कहे-सुने पूरा करना ही उसके जीवन का क्रम था। वीतराग सी हो गई थी। न किसी शौक़ से वास्ता था, न सिंगार से।

मगर इस कई दिन के सन्नाटे ने उसके उदास मन को भी चिन्तित कर दिया। चाहती थी कुछ पूछे, लेकिन पूछे कैसे? मान जो टूट जाता। मान ही किस बात का। मान तब करे जब कोई उसकी बात पूछता हो। मान-अपमान से उसे कोई प्रयोजन नहीं। नारी ही क्यों हुई।

उसने धीरे-धीरे कमरे का पर्दा हटा कर अन्दर झाँका। देखा, सिंगारसिंह सोफ़ा पर चुपचाप लेटा हुआ है, जैसे कोई पक्षी साँझ के सन्नाटे में परों में मुँह छिपाए बैठा हो।

समीप आकर बोली—मेरे मुँह पर तो ताला डाल दिया गया है, लेकिन क्या करूँ, बिना बोले रहा नहीं जाता। कई दिन से सरकार की महफ़िल में सन्नाटा क्यों है। तबीयत तो अच्छी है?

सिंगार ने उसकी ओर आँखें उठाईं। उनमें व्यथा भरी हुई थी।

कहा—तुम अपने मैके क्यों नहीं चली जातीं लीला?

"आपकी जो आज्ञा। पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर न था।"

"वह कोई बात नहीं। मैं बिलकुल अच्छा हूँ। ऐसे बेहयाओं को मौत भी नहीं आती। अब इस जीवन से जी भर गया। कुछ दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। तुम अपने घर चली जाओ तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।"

"भला आपको मेरी इतनी चिन्ता तो है।"

"अपने साथ जो कुछ ले जाना चाहती हो, ले जाओ।"

"मैंने इस घर की चीज़ों को अपनी समझना छोड़ दिया है।"

"मैं नाराज़ होकर नहीं कह रहा हूँ लीला। न जाने कब लौटूँ। तुम यहाँ अकेली कैसे रहोगी?"

कई महीनों के बाद लीला ने पति की आँखों में स्नेह की झलक देखी।

"मेरा विवाह तो इस घर की सम्पत्ति से नहीं हुआ है, तुमसे हुआ है। जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगी।"

"मेरे साथ तो अब तक तुम्हें रोना ही पड़ा।"

लीला ने देखा, उसकी आँखों में आँसू की एक बूँद नीले आकाश में चन्द्रमा की तरह गिरने-गिरने हो रही थी। उसका मन भी पुलकित हो उठा। महीनों की क्षुधाग्नि में जलने के बाद अन्न का एक दाना पाकर वह उसे कैसे ठुकरा दे। पेट नहीं भरेगा, कुछ भी नहीं होगा, लेकिन उस दाने को ठुकराना क्या उसके बस की बात थी?

उसने बिलकुल पास आकर अपने अञ्चल को उसके समीप ले जाकर कहा—मैं तो तुम्हारी हो गई। हँसाओगे हँसूँगी, रुलाओगे रोऊँगी, रक्खोगे तो रहूँगी, निकालोगे तो भी रहूँगी, मेरा घर तुम हो, धन तुम हो, धर्म तुम हो, अच्छी हूँ तो तुम्हारी हूँ, बुरी हूँ तो तुम्हारी हूँ।

और दूसरे क्षण सिंगार के विशाल सीने पर उसका सिर रक्खा हुआ था और उसके हाथ थे लीला की कमर में। दोनों के मुख पर हर्ष की लाली थी, आँखों में हर्ष के आँसू और मन में एक ऐसा तूफ़ान, जो उसे न जाने कहाँ उड़ा ले जायगा।

एक क्षण के बाद सिंगार ने कहा—तुमने कुछ सुना, माधुरी भाग गई और पगला दयाकृष्ण उसकी खोज में निकला है।

लीला को विश्वास न आया—दयाकृष्ण!

"हाँ जी, जिस दिन वह भागी है, उसके दूसरे ही दिन वह भी चल दिया।"

"वह तो ऐसा आदमी नहीं है। और माधुरी क्यों भागी?"

"दोनों में प्रेम हो गया था। माधुरी उसके साथ रहना चाहती थी। वह राज़ी न हुआ।"

लीला ने एक लम्बी साँस ली। दयाकृष्ण के वह शब्द याद आए, जो उसने कई महीने पहले कहे थे। दयाकृष्ण की वह याचना-भरी आँखें उसके मन को मसोसने लगीं।

सहसा किसी ने बड़े ज़ोर से द्वार खोला और धड़धड़ाता हुआ भीतर वाले कमरे के द्वार पर आ गया।

सिंगार ने चकित होकर कहा—अरे! तुम्हारी यह क्या हालत है कृष्णा! किधर से आ रहे हो?

दयाकृष्ण की आँखें लाल थीं, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, चेहरे पर घबराहट, जैसे कोई दीवाना हो।

उसने चिल्ला कर कहा—तुमने सुना, माधुरी इस संसार में नहीं रही!

और दोनों हाथों से सिर पीट-पीट कर रोने लगा, मानों हृदय को और प्राणों को आँखों से बहा देगा।

❧ ❧ ❧

"कितने ही मनुष्य ऐसे हैं, जो यदि कोई उपकार करने में समर्थ न हों तो उसे इस रीति से व्यक्त करते हैं कि उससे ही हमें प्रसन्नता होती है; कितने ही ऐसे हैं जो उपकार इतनी भद्दी तरह से करते हैं कि जितनी हमें उनके उपकार से प्रसन्नता न हो, उससे अधिक उनके उपकार करने की रीति से दुःख होता है। यदि हमारा रूमाल अकस्मात् पृथ्वी पर गिर पड़े और कोई उसे चिमटी से उठा कर दे तो हमें कितना बुरा लगे।"

—काल्टन

"यह अच्छा है कि तुममें ऐसी योग्यता हो जाय, जिससे दूसरे तुम्हारा आदर करने लगें। लेकिन अगर तुम केवल चिकने-चुपड़े बन कर—अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर—अपना आदर चाहो, तो यह बहुत बुरा है। बदचलन अमीर आदमी की अपेक्षा भलामानस ग़रीब आदमी कहीं ज़्यादा अच्छा और आदर के योग्य है। सीधा-सादा ग़रीब आदमी उस बदमाश से अच्छा है, जो ख़ूब बन-ठन के रहता हो और गाड़ी-घोड़ा रखता हो।"

—स्माइल्स

देवदूत

[श्री० बाबूलाल प्रेम]

जिसने पश्चिम के प्रवाह को,
उलट दिया प्राची दिशि को।
जिसने सहस्रार्चि सम नाशी,
रूढ़ि अविद्या की निशि को॥
पीड़ित हुआ हृदय-तल जिसका,
ध्वंस देख कर वैदिक धर्म।
जो अनाथ अबला विलाप सुनि,
हो जाता था आहत मर्म॥
आलोकित, अतीत अम्बर में,
विमल कीर्ति अङ्कित जिसकी।
जिसकी प्रभापूर्ण किरणों से,
पथ की तमोराशि खिसकी॥
जिसके तर्क-अस्त्र के सम्मुख,
नैय्यायिक तार्किक थे मौन।
आर्य-जाति सुन तुझे बता दूं,
देवदूत वह ऋषि था कौन॥
श्वासोच्छ्वास आर्त्त दीनों का,
अन्त्यजों का अश्रु विपात।
मूक वेदना ललनाओं की,
वह्नि-रूप जलती दिन-रात॥
क्षार-क्षार होकर ऋषि-संस्कृति,
बहु रज-कण-वत् हुई विभक्त।
विचर रहे थे महाशून्य में,
पञ्चतत्व सम यह अव्यक्त॥
ज्यों सुयोग पाकर भू-उत्थित,
जलकण बन जाते घनश्याम।
दावानल कवलित भूतल से,
उगते अङ्कुर नवल ललाम॥
त्यों अदृष्ट में निहित तत्व वह,
पाकर काल सुलभ अनुरूप।
दिव्य विभूति-युक्त अवनी पर,
प्रकटे दयानन्द के रूप॥

इसीलिए उस अन्तस्थल में,
थी अबला अनाथ की हूक।
दग्धीभूत किया करती थी,
वह्नि-वेदना नीरव मूक॥
वैदिक संस्कृति से निर्मित तन,
वेद चतुष्टय उसके प्राण।
कारण सदृश कार्य होता है,
ऋषि का जीवन प्रबल प्रमाण॥
विभु विभूतियुत वह वरेण्य नर,
जब उतरा भूमीतल पर।
क्षुधा तृषा अघ ओघ ताप बहु,
उपजे थे जगतीतल पर॥
सामग्री सञ्चित जो गृह पर,
उससे ही होता अर्चन।
इसी हेतु तेरे स्वागत में,
हुए व्यङ्ग पत्थर वर्षन॥
पुष्प पत्र अमि फल सुस्वादु हवि,
मणि माणिक शुभ स्तुति गेय।
सांसारिकता में प्रवृत्त जो,
उन मनुजों को हैं यह देय॥
हे महर्षि! तू लोकोत्तर था,
सृष्टि-सुधारक रुद्र अजेय।
आशुतोष ही तुझे जान कर,
दिया हलाहल का था पेय॥
इसीलिए तूने निज घातक,
प्राण-दण्ड से छुड़वाए।
वरद हस्त से धन आशिष दे,
उसके बन्धन खुलवाए॥
कैसे कहूँ कि तू मानव था,
जब थे तव देवोपम कार्य।
काया-पलट विश्व की कर दी,
प्रकटित किए भूमि पर आर्य॥

आत्मा की कल्पना

[श्री० सत्यभक्त]

ध्यात्मवादी दार्शनिक हज़ारों वर्षों से आत्मा के स्वरूप, उसके लक्षण, उसके स्वभाव और शरीर में उसके स्थान के विषय में विवेचना तथा वादविवाद करते आए हैं। हिन्दू-धर्मशास्त्रों में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख और ज्ञान—ये आत्मा के लक्षण माने गए हैं। इनके सिवा साँस लेना और बाहर निकालना; आँख बन्द करना और खोलना; चलना; भूख-प्यास और हर्ष, शोक अनुभव करना; सोचना; स्मरण करना आदि भी आत्मा के गुण माने गए हैं। आत्मा शरीर के किस भाग में निवास करती है, इस सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिकों के विभिन्न मत हैं। भारतीय दार्शनिकों के मतानुसार आत्मा समस्त शरीर में व्याप्त है। यूरोप का डेसकार्टिस नामक दार्शनिक आत्मा का स्थान मस्तिष्क की 'पाइनल' नाम की एक ग्रन्थि में, जिसका आकार मटर के बराबर है और जिसका वर्ण भूरा है, बतलाता है। अन्य दार्शनिकों की सम्मति में आत्मा मस्तिष्क के तीसरे आवरण में व्याप्त है। इस प्रकार दार्शनिकगण सदा से आत्मा के विषय में छान-बीन करते आए हैं, परन्तु उनमें से किसी ने इस बात का पता लगाने की चेष्टा नहीं की कि आत्मा की कल्पना ने मनुष्य के हृदय में किस प्रकार प्रवेश किया और किस प्रकार उसमें वृद्धि तथा परिवर्तन होता गया।

आदि युग में, जब कि मनुष्य नितान्त जङ्गली अवस्था में रहता था, तब वह वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक आदर्शवादी था और प्रत्येक पदार्थ में आत्मा के अस्तित्व की कल्पना कर लेता था। उसके दिमाग़ में मनुष्य-जीवन और प्रकृति सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उठा करती थीं, जिनका निर्णय वह अपनी योग्यता और ज्ञान के अनुसार करता था। यद्यपि उसके निर्णय अधिकांश में भ्रमपूर्ण होते थे, परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने अकाट्य सत्य का रूप ग्रहण कर लिया और उनके आधार पर बड़े-बड़े दर्शन-शास्त्रों की रचना की गई। यद्यपि ये सिद्धान्त असत्य थे, परन्तु उनको मिटाने के लिए सैकड़ों वर्ष तक चेष्टा करनी पड़ी। उदाहरण के लिए पृथ्वी के गिर्द सूर्य की परिक्रमा करने का सिद्धान्त, जो अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता था, कई सौ वर्ष पूर्व विज्ञान द्वारा असत्य सिद्ध किया जा चुका है, पर अब भी करोड़ों अपढ़ और पढ़े व्यक्ति उसे सच समझते हैं और जो लोग उसे नहीं भी मानते, वे भी बोलचाल में 'सूर्य का उदय हुआ' अथवा 'सूर्य अस्त हुआ' जैसे मुहावरों का प्रयोग करते हैं।

स्वप्न क्या है और किस लिए आता है, इस समस्या का निर्णय भी आज तक सन्तोषजनक रीति से नहीं हो सका है। प्राचीनकाल का जङ्गली मनुष्य भी इस समस्या के कारण बड़े सोच-विचार में पड़ा रहता था। वह स्वप्न में अपने को यात्रा करते, युद्ध करते अथवा शिकार खेलते देखता था, परन्तु जब जागता था तो जहाँ सोया था वहीं पड़ा पाता था। वह बहुत सोच-विचार करने पर भी इसका कारण न समझ पाता था कि आख़िर ये दृश्य उसे किस प्रकार दिखलाई देते हैं? इसका सबसे सरल और सम्भव उत्तर उसकी बुद्धि के अनुसार यही हो सकता था कि मनुष्य का शरीर दो भागों में बँटा है। एक स्थूल शरीर, जो आँखों से दिखलाई देता है और छूने से जान पड़ता है, और दूसरा सूक्ष्म शरीर, जो कि हवा की तरह न दिखलाई देता है, न पकड़ा जा सकता है। बहुत-कुछ विचार करने पर वह इसी निर्णय पर पहुँचा कि रात के समय निद्रा आ जाने पर सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से पृथक् होकर शिकार खेलने या युद्ध करने जाता है और फिर वापस

आकर स्थूल शरीर में समा जाता है। ऑस्ट्रेलिया के निवासियों का विश्वास है कि जब मनुष्य खुर्राटे लेने लगता है तो उसका सूक्ष्म शरीर बाहर चला जाता है। अगर किसी कारणवश यह सूक्ष्म शरीर वापस न आए तो मनुष्य जाग्रत नहीं हो सकता। इसलिए किसी भी व्यक्ति को इस दूसरे शरीर को अप्रसन्न करने का कोई काम नहीं करना चाहिए; अन्यथा सम्भव है वह देह को छोड़ कर चल दे। इसी कारण गहरी नींद में सोते हुए किसी व्यक्ति को एकाएक जगाना अनुचित माना जाता है। क्योंकि सम्भव है कि उसकी आत्मा किसी दूरवर्ती स्थान पर हो और जल्दी न लौट सके। कुछ प्रदेशों में सोते हुए आदमी का चेहरा रौग़न वग़ैरह लगा कर बदल देना या उसके नक़ली मूँछ वग़ैरह लगा देना हत्या के तुल्य समझा जाता है। क्योंकि उस व्यक्ति की आत्मा अपने निवास-स्थान को न पहिचान कर लौट जायगी और व्यक्ति की मृत्यु हो जायगी। यह भी विश्वास किया जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के जीवन-काल में उसकी आत्मा देह को छोड़ कर चल दे, तो उस व्यक्ति का शव बहुत दिनों तक बिना गले-सड़े रक्खा रह सकता है। हमारे यहाँ और अन्य देशों में भी अनेक ऐसे क़िस्से प्रसिद्ध हैं, जिनमें कोई सिद्ध पुरुष या जादूगर अपने शरीर को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति के मुर्दा शरीर में प्रविष्ट हो जाता है और दो-चार महीने या इससे भी अधिक समय तक उसी में बना रहता है। जङ्गली मनुष्य जब स्वप्न में अपने किसी पूर्व पुरुष के सम्बन्धी को देखता था, तो वह समझता था कि वे पुनर्जीवित होकर उससे मिलने आए हैं। उस युग में लोगों की मृत्यु प्रायः हथियार अथवा किसी अन्य दुर्घटना द्वारा होती थी, इसलिए जब कोई व्यक्ति बुढ़ापे अथवा बीमारी के कारण मरता था तो ख़याल किया जाता था कि किसी जादूगर ने उसके सूक्ष्म शरीर को रोक लिया है या किसी दुष्ट आत्मा ने उसे बहका दिया है।

इस प्रकार स्वप्न की क्रिया के आधार पर जङ्गली मनुष्यों के मस्तिष्क में सूक्ष्म शरीर की कल्पना उत्पन्न हुई और उस पर विचार करते हुए स्वभावतः उसने अन्य अनेकों ऐसी कल्पनाओं की सृष्टि कर डाली, जो बाद में परिष्कृत और विकसित रूप में मज़हबों और दार्शनिक प्रणालियों में सम्मिलित हो गईं। इस विचार-प्रणाली द्वारा जङ्गली मनुष्य को दृश्य जगत की अनेक ऐसी घटनाओं के विषय में समाधान हो गया, जिनका प्राकृतिक कारण जान सकने में वह असमर्थ था। इस दृष्टि से यह दो शरीरों का सिद्धान्त, जिसने सभ्यता की वृद्धि होने पर आत्मा के महान सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लिया, मानवीय मस्तिष्क का सर्व-प्रथम वैज्ञानिक तर्क अथवा अनुमान था।

आत्मा शरीर का प्रतिरूप है। उसके भी मस्तक, हाथ, पैर, हृदय, पेट आदि समस्त अङ्ग माने गए हैं। शरीर के साथ-साथ वह भी आकार और शक्ति में बढ़ता-घटता रहता और उसीके अनुसार बुड्ढा या जवान होता है। उत्तरी ध्रुव के निवासी एस्किमो, जो किसी मौसम में ख़ूब ख़ुशहाल रहते हैं और किसी में आधा ही पेट खाने को पाते हैं, समझते हैं कि उनका सूक्ष्म शरीर भी स्थूल शरीर के साथ मोटा और दुबला होता है। आत्मा का प्रत्येक अङ्ग शरीर के उसी अङ्ग में अवस्थित है। यह सूक्ष्म शरीर छाया के समान स्पर्श से जाना न जा सकने वाला समझा जाता है, इसलिए कितने ही लोग शरीर की छाया को ही आत्मा समझते हैं। भूमध्य-रेखा पर रहने वाले जङ्गली दोपहर के समय अपने घर से बाहर निकलने में डरते हैं, क्योंकि वहाँ उस समय सूर्य के ठीक सर पर होने से छाया बिल्कुल दिखलाई नहीं देती और ऐसी दशा में वे मृत्यु की सम्भावना करने लगते हैं। हमारे देश में अनेक लोग छाया-पुरुष का साधन करते हैं और उसके द्वारा भूत-भविष्यत् की बातें जानने की चेष्टा करते हैं। निर्मल पानी या किसी चमकदार चीज़ में दिखलाई देने वाला किसी व्यक्ति का प्रतिबिम्ब उसकी आत्मा का प्रतिबिम्ब माना जाता है, जिसे हथियार द्वारा मारा या घायल किया जा सकता है। अगर किसी व्यक्ति का चित्र बना कर अपने पास रख लिया जाय, तो यह उसकी आत्मा को अपने पास रख लेने के बराबर है। इस भय से कितने ही जङ्गली अब भी अपनी तस्वीर नहीं उतारने देते।

यूनान के प्राचीन निवासी आत्मा को अति सूक्ष्म वायु की तरह मानते थे, जिसका शब्द कानों से सुना जा सकता है। ऑस्ट्रेलिया वाले समझते हैं कि उनकी आत्माएँ पेड़ों पर रहती हैं और एक डाली से दूसरी डाली पर कूदती फिरती हैं। वे आत्माओं की आवाज़ भी सुनते हैं। बहुत से लोगों का ख़याल है कि आत्मा

नाक, मुँह, आँख आदि के रास्ते से बाहर निकलती है और चेष्टा करने से उसे पकड़ा जा सकता है या किसी खोखली चीज़ में बन्द किया जा सकता है। भारतवर्ष के देहातियों में बहुत दिनों तक यह क़िस्सा प्रसिद्ध था कि जब महारानी विक्टोरिया मरने लगीं, तो डॉक्टरों ने उसे शीशे के एक बक्स में, जिसमें से हवा निकलने का कोई रास्ता न था, बन्द कर दिया। परन्तु जैसे ही मरने का नियत क्षण आया, उसकी आत्मा शीशे को तोड़ कर बाहर निकल गई।

आत्मा देह से पृथक् हो जाने पर भी किसी न किसी रूप में उससे संलग्न रहती है। आरम्भ में यह शव के साथ संलग्न रहती है और जब मांस गल-सड़ जाता है, तो हड्डियों के साथ। हड्डियों में भी मस्तक की हड्डी के साथ आत्मा का विशेष सम्बन्ध माना जाता है। कितनी ही जङ्गली जातियों में अपने पूर्वजों के मस्तक और अन्य हड्डियों को भी इसलिए सुरक्षित रक्खा जाता है, कि उनकी आत्मा घर में ही बनी रहे और अपनी सन्तान की सहायता करती रहे। यूनानी लोग मृत व्यक्तियों की कन्धे की हड्डी को बड़ी सावधानी से घर में रखते थे। हमारे देश में भी महात्मा समझे जाने वाले व्यक्तियों की हड्डियाँ साधारण लोगों की हड्डियों की तरह जल में नहीं बहाई जातीं, वरन् उनको सुरक्षित रखने के लिए उन पर समाधि या छतरी बना दी जाती है और उसकी मानता मानी जाती है। ईसाई धर्म वाले भी अपने सन्त पुरुषों की हड्डियों को यत्नपूर्वक रखते थे। कई शताब्दी पूर्व यूरोप के प्रत्येक शहर और गिर्जे में किसी न किसी सन्त की हड्डियाँ सुरक्षित रक्खी जाती थीं, जिससे उसकी आत्मा वहाँ मौजूद रहे। वेनिस के प्रजातन्त्र राज्य ने पोप और टर्की के सुलतान के आक्रमणों से अपने देश की रक्षा करने के लिए सिकन्दरिया (मिश्र) से सेण्ट मार्क की हड्डियाँ मँगाई थीं और सेण्ट रोकेस की हड्डियाँ तक अन्य स्थान से चोरी कराई थीं। इसी उद्देश्य से कितनी ही प्राचीन जङ्गली जातियों में अपने सम्बन्धियों के शव को खा लेने की प्रथा थी। कारण यही था कि वे अपने प्रियजन की आत्मा को कुटुम्ब से पृथक् नहीं होने देना चाहते थे। मिश्र के प्राचीन निवासी शव को कोई विशेष मसाला लगा कर रख देते थे, जिससे वह चिरकाल तक सुरक्षित रहे और उसकी आत्मा को इधर-उधर न भटकना पड़े। उन लोगों की समाधियों में, जिनका पता यूरोपियन अन्वेषकों ने लगाया है, कितनी ही मूर्तियाँ भी मिलती हैं। मैसपेरो नामक विद्वान की सम्मति है कि उन मूर्तियों को इसलिए रक्खा गया है, जिससे शव के नष्ट हो जाने की दशा में आत्मा उनमें रह सके।

प्राचीन काल में लोगों का यह भी विश्वास था कि मृत व्यक्ति की आत्मा क़ब्र के पत्थरों में रहती है। इस विश्वास के कारण तस्मानिया में स्त्रियों और पुरुषों की क़ब्रों का विवाह करने की प्रथा प्रचलित हो गई थी। क़ब्रों पर जो वृक्ष उग आते हैं अथवा उनमें जो प्राणी रहने लगते हैं, उनमें भी आत्मा का अंश माना जाता है। क़ब्रों के आस-पास यदि कोई पुराना सर्प दिखलाई देता है, तो उसे मृत व्यक्ति का अवतार समझ लिया जाता है।

प्राकृतिक नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण जङ्गली मनुष्य की धारणा होती है कि वह मन्त्र-तन्त्र द्वारा प्राकृतिक शक्तियों को भी अपने कुटुम्बियों की तरह वश में कर सकता है और उनसे इच्छानुसार काम ले सकता है। वह मन्त्र पढ़ कर सूर्य को रोक सकता है, पानी बरसा सकता है और तूफ़ान उठा सकता है। इस तरह की शक्ति मृत आत्माओं में जीवित व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत अधिक मानी जाती है। इसलिए जब जङ्गली मनुष्य स्वयम् इन कामों को नहीं कर सकते, तो वे मृतात्माओं से प्रार्थना करते हैं। अमेरिका के रेड इण्डियन शिकार को जाते समय उनसे बहुत सा शिकार मिलने की प्रार्थना करना कभी नहीं भूलते। आत्माएँ मामूली लोगों की अपेक्षा सरदार लोगों की प्रार्थनाएँ विशेष ध्यान से सुनती हैं। इसलिए जब कोई बड़ी आपत्ति पड़ती है, तो लोग सरदारों से प्रार्थना करने को कहते हैं और यदि उनको सफलता नहीं मिलती तो उनके प्राण सङ्कट में पड़ जाते हैं। जब अफ़्रीका के हबशी अपनी प्रार्थना से दीर्घकालीन दुर्भिक्ष का प्रतिकार नहीं कर सकते, तो वे अपने राजा को उसके पूर्व पुरुषों की समाधियों पर घसीट ले जाते हैं और उससे पानी बरसाने के लिए प्रार्थना कराते हैं। यदि इस पर भी पानी नहीं बरसता, तो वे राजा को ख़ूब पीटते अथवा मार डालते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि उसने ठीक ढङ्ग से प्रार्थना नहीं की। नवीं शताब्दी में ओलाफ़ नाम का बादशाह इसलिए जीता जला दिया गया, क्योंकि

वह अपने पूर्वजों की आत्माओं से दुर्भिक्ष का अन्त नहीं करा सका।

विभिन्न प्रकार की बीमारियों और शारीरिक कष्टों का आत्माओं के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यदि बीमारी साधारण दवादारू से अच्छी न हो अथवा उसका कोई कारण समझ में न आवे तो लोग उसे तुरन्त भूत-प्रेत की करनी समझ लेते हैं। इस विश्वास का हमारे देश में इतना प्राबल्य है कि आधे से अधिक बीमारों का इलाज वैद्यों के स्थान पर ओझों और स्यानों से कराया जाता है। तस्मानिया देश के रहने वाले बीमार लोगों को किसी मरते हुए व्यक्ति के बिस्तरे के आसपास खड़ा कर देते हैं, ताकि उसकी आत्मा उनको आरोग्य कर दे। खेती-बारी पर तो आत्माओं का प्रभाव इतना अधिक माना जाता है कि प्रायः सभी देशों के जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य निवासी उनसे सफलता की कामना करते हैं। न्यू गायना में जब खेत में बीज डाला जाता है, तो किसान उसके बीच में कुछ केला और गन्ना रख देते हैं और अपने पूर्वजों का नाम लेकर कहते हैं—"आपके लिए यह भोजन रक्खा है। हमारी फ़सल को प्रचुर और उत्तम बनाइए। यदि वह प्रचुर और उत्तम न हुई तो यह आपके और हमारे लिए भी बड़ी लज्जा की बात होगी।"

मृत व्यक्तियों की आत्माएँ अपने कुटुम्ब और फ़िर्क़े के लिए बड़ी लाभजनक मानी जाती हैं। वे स्वप्न में उनके पास आकर उनको अच्छी सलाह देती हैं, जीवित और मृत शत्रुओं से उनकी रक्षा करती हैं और उनकी तरफ़ से युद्धों में भाग लेकर लड़ती हैं। प्लूटार्क नाम के सुप्रसिद्ध इतिहासकार ने लिखा है कि जब ईरान वालों ने यूनान पर हमला किया, तो थीसियस नामक मृत योद्धा की आत्मा ने दर्शन देकर यूनानी सेना का नायकत्व किया। कितनी ही बार इस प्रकार का विश्वास रखने वाले लोग किसी महान व्यक्ति को इसलिए मार डालते हैं, कि उसकी शक्तिशाली आत्मा उन्हीं के बीच में रहे। उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रान्त के आसपास रहने वाले पठान लोगों के गाँव में अगर कोई धर्मात्मा या साधु पुरुष पहुँच जाता है, तो वे उसे सदा अपने ही यहाँ रखने की चेष्टा करते हैं और यदि वह जाना चाहता है, तो उसे मार कर उसकी क़ब्र गाँव में बना देते हैं, जिससे वह सदा उनकी सहायता करता रहे। ताहिती टापू के निवासी यद्यपि कप्तान कुक को बहुत अधिक आदर की दृष्टि से देखते थे, पर इस डर से कि वह कुछ समय में इङ्गलैण्ड लौट जायगा, उन्होंने उसकी हत्या कर डाली। अङ्गरेज़ी शासन के आरम्भ में सर रिचार्ड बर्टन नाम का एक उच्च अङ्गरेज़ पदाधिकारी एक बार ब्राह्मण का रूप धारण करके भारतवर्ष के अनजान प्रदेशों की खोज कर रहा था। उसके दिखावटी धर्माचरण और साधुता को देख कर लोग इतने प्रभावान्वित हो गए कि एक गाँव में उसके मार डालने का षड्यन्त्र किया गया, जिससे उसके प्राण बड़ी कठिनाई से बचे।

मृतात्माएँ तभी तक जीवित व्यक्तियों के मनोरथों को पूर्ण कर सकती हैं, जब तक वे अपनी समाधियों में रहें और उनको जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ मिलती रहें। समाधियों पर रात के समय दिया जलाया जाता है और उन पर वस्त्र तथा फूल, बतासे, मिठाई आदि चढ़ाए जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया के निवासी समाधियों के पास आग जलाते हैं, जिससे आत्माएँ वहाँ आकर ताप सकें। उनके भोजन के लिए खाद्य पदार्थ और पीने के लिए दूध, शराब आदि पहुँचाए जाते हैं। जब ज़मीन इन पेय पदार्थों को सोख लेती है तो समझा जाता है कि उन्हें आत्माओं ने पी लिया।

आत्माओं को इस प्रकार भोजन देने से मानवीय सभ्यता के आरम्भ में एक बहुत बड़ा लाभ हुआ है। ग्राण्ट ऐलन नामक विद्वान के मतानुसार खेती का आविष्कार विशेषतया इसी प्रथा से हुआ है। जब जङ्गली मनुष्य किसी मृत व्यक्ति की आत्मा के लिए तरह-तरह के बीज और फल उसकी क़ब्र पर रखता था या गाड़ देता था तो समय पाकर वे पौधे के रूप में परिणत हो जाते थे। क़ब्र की मिट्टी के ख़ूब नर्म और साफ़ होने तथा उस पर समय-समय ख़ून और अन्य पीने की चीज़ें पड़ते रहने से ये पौधे अन्य जङ्गली पौधों की अपेक्षा अधिक बड़े तथा पुष्ट होते थे, पर जङ्गली मनुष्य अपने परिश्रम का महत्व न समझ कर इसे मृतात्मा की कृपा समझता था। तब वह क़ब्र के आसपास की ज़मीन में भी बीज बोता था और आशा करता था कि आत्मा वहाँ भी अपना भाव डालेगी। इस प्रकार उसने धीरे-धीरे खेती के रहस्य को समझ लिया, परन्तु आत्मा के सहयोग का भाव, जिसकी जड़ बड़ी गहरी जम चुकी थी,

उसके मस्तिष्क से दूर न हो सका, और आज तक विभिन्न रूपों में देखने में आता है।

जङ्गली मनुष्य अधिक संख्या तक गिनती कर सकने में असमर्थ था और अपनी उम्र का भी उसे ज्ञान नहीं रहता था, इसलिए अमरत्व का भाव उसके दिमाग़ में घुस सकना असम्भव था। वह आत्मा का अस्तित्व तभी तक मानता था जब तक उसकी स्मृति क़ायम रहे। उस काल के व्यक्ति अपने पिता, पितामह और उन्हीं पूर्वजों की आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करते थे, जिनको वे जानते थे या जिनके सम्बन्ध में उन्होंने सुना था। वे उन लोगों की आत्मा में भी विश्वास करते थे, जिनकी स्मृति किसी विशेष कारणवश स्थिर रह जाती थी। इस प्रकार के व्यक्तियों का चरित्र प्रायः कहा-सुना जाता था और उसमें नए-नए अद्भुत कर्म या करिश्मे जुड़ते जाते थे। धीरे-धीरे अधिक समय व्यतीत हो जाने पर ऐसे लोग देवताओं अथवा अवतारों का रूप ग्रहण कर लेते थे।

पर यह भी सम्भव था कि जिन लोगों की स्मृति शेष नहीं है, उनकी भी आत्मा मौजूद हो, इसलिए उनकी भी अभ्यर्थना की जाने लगी। सूडान-निवासी हब्शी जब अपने पित्रों को कुछ अर्पण करता है तो कहता है—"हे पिता, मैं तुम्हारे तमाम सम्बन्धियों को नहीं जानता, तुम उन सबको जानते हो, उनको भी अपने साथ भोजन करने को बुलाओ।" हमारे देश में पितृ-पक्ष के अवसर पर जब परिचित मृत व्यक्तियों का श्राद्ध उनकी मृत्यु-तिथि पर करते हैं, तो अन्तिम दिन समस्त भूले-भटके सम्बन्धियों का श्राद्ध किया जाता है। प्राचीन यूनानी भी भूले हुए व्यक्तियों की आत्माओं से प्रार्थना करते थे और उनको भेंट चढ़ाते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि उनकी अभ्यर्थना न की जायगी, तो वे हमको हानि पहुँचा सकती हैं, पर यदि उनका सम्मान किया जायगा तो वे हमारा कल्याण करेंगी।

जङ्गली मनुष्य प्रत्येक प्राणी में अपनी ही तरह आत्मा मानता था, और यह भी अनुमान करता था कि शायद उनमें से किसी में उसके पूर्वजों की आत्मा मौजूद हो। इतना ही नहीं, वह पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, तारागण और वृक्ष तथा अन्य अचैतन्य पदार्थों तक में आत्मा की कल्पना करता था। वेदों में जल, वायु, अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियों को ईश्वरीय आत्मा का स्वरूप माना गया है और इनसे मनुष्यों के कल्याण की प्रार्थना की गई है। जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य लोगों के मतानुसार प्रत्येक वस्तु में आत्मा का होना आवश्यकीय था। यही कारण है कि वे क़ब्र या चिता पर जानवरों की बलि देते हैं और बर्तन या हथियारों को तोड़ते हैं। वे समझते हैं कि ऐसा करने से इन पदार्थों की आत्मा मृत व्यक्ति के उपयोग में आ सकेगी।

स्वर्ग और परलोक

मानवीय स्वभाव की यह विचित्रता है कि वह प्रायः अपने ही मस्तिष्क और हाथ द्वारा उत्पन्न की हुई वस्तुओं से डरता रहता है। यही दशा आत्मा के सिद्धान्त की हुई। आरम्भ में जो आत्माएँ मनुष्य की सहायक और कल्याण करने वाली मानी जाती थीं, वे ही कुछ समय बाद उसके भय का कारण बन गईं। जङ्गली मनुष्य जीवित व्यक्तियों की अपेक्षा मृत आत्माओं से अधिक भयभीत रहने लगा। क्योंकि जीवित व्यक्तियों को वह देख सकता था और उनसे बचने का उपाय कर सकता था, पर इन अदृश्य प्राणियों का प्रतिकार कर सकना कठिन था। ये आत्माएँ जीवित अथवा मृत अवस्था में अपने साथ किए गए वास्तविक और काल्पनिक अपकारों का बदला लेने में बड़ी तेज़ समझी जाती थीं, और मनुष्यों को जितने दुःख, विपत्तियाँ और बीमारियाँ आदि भोगनी पड़ती थीं, उनका कारण इन आत्माओं का कोप ही समझा जाता था। आरम्भ में जब लोगों का कोई नियत निवास-स्थान न था, वे किसी व्यक्ति के मरने पर डर के मारे उस जगह को ही छोड़ देते थे। पर जब ऐसा करना असम्भव हो गया, तो वे मृत व्यक्ति के हाथ-पैर बाँध कर उसे ज़मीन में गहरा गढ़ा खोद कर गाड़ देते थे और सावधानी के लिए उस पर बड़े-बड़े पत्थर रख देते थे, जिससे उसकी आत्मा बाहर न निकल सके। जबकि शव किसी शत्रु का होता था तो वे उसकी पीठ की हड्डी तोड़ देते थे और अँगूठा काट डालते थे, जिससे वह धनुष न खींच सके। प्राचीन यूनानी अपने शत्रुओं को दफ़नाने के पहले उनके हाथ-पैर काट डालते थे, ताकि वे लड़ न सकें। इस विश्वास की जड़ यहाँ तक जम गई थी कि इङ्गलैण्ड में कुछ वर्ष पहले तक आत्म-हत्या करने वाले व्यक्ति के शव को ज़मीन में कील से जड़ देते थे, जिससे वह अपनी क़ब्र को छोड़ कर बाहर रहने

वाले लोगों को कष्ट न दे सकें। मृतात्माओं के बदला लेने के इसी विश्वास के कारण धीरे-धीरे जङ्गली जातियों में से नर-मांस को खाने और हत्या करने की प्रवृत्ति कम हो गई। कुछ ही वर्ष पहले की बात है कि नार्वे का एक पादरी किसी टापू में जङ्गली जाति वालों के हाथ में पड़ गया, जो उसे मारने को तैयार थे। पर जब पादरी ने कहा कि मेरी आत्मा सदा यहीं रहेगी तो उन्होंने भयभीत होकर उसे छोड़ दिया। जङ्गली और अर्द्ध-सभ्य मनुष्य केवल मनुष्य की मृतात्मा से ही नहीं, वरन् पशु और अन्य प्राणियों की मृतात्मा से भी डरते हैं। एक प्राचीन पुस्तक में इस सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरञ्जक प्रथा का वर्णन किया गया है। उससे विदित होता है कि फ़िनलैण्ड के निवासी जिस समय रीछ को मारते और उसकी खाल निकालते थे, उस समय उसकी प्रशंसा के गीत गाते जाते थे, जिससे उसकी मृतात्मा उनसे बदला न ले। वे उसे "परम सुन्दर, कमल-चरण, मनुष्यों के पूर्वज और श्रेष्ठ वीर" आदि के नाम से सम्बोधन करते थे, और उसको मारने वाला उसे विश्वास दिलाने की चेष्टा करता था कि वह भाले से नहीं मारा गया है, वरन् पेड़ से कूदते हुए स्वयम् ही घायल हो गया है।

पर इन तमाम उपायों के करने पर भी जङ्गली मनुष्य का पीछा मृतात्माओं के काल्पनिक भय से नहीं छूटता था और वह सदा यही अनुभव किया करता था कि वे उसे घेर कर खड़ी हैं और अभिशाप दे रही हैं। अन्त में उसके हृदय में उनके निवास के लिए एक स्वतन्त्र प्रदेश नियत कर देने की कल्पना उत्पन्न हुई। यह प्रदेश समुद्र के पार या ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर जहाँ मनुष्य नहीं जा सकते थे, कल्पित किया गया था। आत्माएँ उस प्रदेश को राज़ी से चली जाएँ, इसके लिए विभिन्न उपायों का अवलम्बन किया जाता था। भारत में रहने वाली बोडा जाति वाले अपने मृत-सम्बन्धियों के नाम पर चावल और मदिरा उत्सर्ग करके कहते हैं—"इनको खाओ-पियो। अब तक तुम हमारे साथ खाते-पीते रहे थे, पर अब तुम ऐसा नहीं कर सकते। पहले तुम हममें से ही एक थे, पर अब नहीं हो। अब हम तुम्हारे पास नहीं आएँगे और तुम भी हमारे पास न आना।" बोर्नियो के रहने वाले मृतात्मा से कहते हैं कि "हमारे साथ रहने से अब तुमको टूटी हुई टोकरी के सिवा और कुछ सोने को नहीं मिल सकता।" एक अन्य जाति वाले मृतक-संस्कार के समय एक पक्षी को छोड़ते थे, जो मृतात्मा को जहाँ तक बने जल्दी से ले जाय। पर इतने पर भी कितनी ही आत्माएँ अपने सम्बन्धियों को छोड़ कर जाने को राज़ी नहीं होती थीं, इसलिए उनके साथ बल-प्रयोग किया जाता था। ऑस्ट्रेलिया के निवासी और गोल्ड कोस्ट (अफ़्रिका) के हब्शी मृतात्माओं को भगाने के लिए गाँव में चारों तरफ़ दौड़ते-फिरते हैं और हवा में लाठियाँ चलाते जाते हैं, जिससे आत्माएँ वहाँ न ठहर सकें।

आत्माओं से पीछा छुड़ाने के इस अप्रिय और भयपूर्ण मार्ग से बचने के लिए जङ्गली मनुष्य ने एक और उपाय का अवलम्बन किया। उसने मृतात्माओं के निवास-स्थान को, जहाँ तक उसको कल्पना शक्ति से बन पड़ा, सुन्दर और आनन्दपूर्ण बनाने की चेष्टा की, जिससे आत्माएँ वहाँ जाने में आगा-पीछा न करें और न वहाँ से फिर वापस आने की इच्छा करें। इस उद्देश्य से समस्त प्राचीन जातियों ने स्वर्ग या बहिश्त की कल्पना की थी, जहाँ मृतात्माएँ अत्यन्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती हैं। ऑस्ट्रेलिया वालों की आत्मा रस्सी द्वारा चढ़ कर बादलों में बने एक छेद के पास पहुँचती है। इस छेद के दूसरी तरफ़ परलोक अवस्थित है, जहाँ प्रत्येक वस्तु पृथ्वी की अपेक्षा श्रेष्ठ है। ऑस्ट्रेलिया के निवासी जब किसी काङ्गरू (एक प्रकार का जङ्गली पशु) को मोटा-ताज़ा और मस्त बतलाना चाहते हैं तो वे कहते हैं कि वह मेघ-प्रदेश में रहने वालों की तरह दिखलाई देता है। प्राचीन यूनानी भी आत्माओं के स्वर्ग में जाने का मार्ग बादलों के छेदों में होकर मानते थे। अमेरिका के रेड इण्डियनों की आत्माएँ उस रमणीक वनस्थली में हिरणों का शिकार करती फिरती हैं और ग्रीनलैण्ड (बर्फ़िस्तान) के रहने वालों की आत्माओं को उस प्रदेश में, जहाँ सूर्य क्षितिज पर रहता है, बारहसिंहे, समुद्री मछलियाँ और समुद्री पक्षी इच्छानुसार परि-माण में मिलते हैं। हिन्दुओं की आत्माओं को स्वर्ग में अमृतोपम व्यञ्जन, मिष्टान्न, दूध और फल मिलते हैं तथा मुसलमानों के स्वर्ग में शहद और शराब की नहरें बहती हैं। इस प्रकार जिस देश के निवासी जिस तरह रहते

और खाते-पीते हैं, उसी को बढ़ा-चढ़ा कर उन्होंने मृतात्माओं के प्रदेश की कल्पना कर डाली। धीरे-धीरे जङ्गली मनुष्य की इस कल्पना ने इतनी गहरी जड़ जमा ली कि एक ज़माने में स्वर्ग में पृथ्वी की ख़बरें ले जाने के लिए मनुष्यों का बलिदान किया जाता था और कितने ही स्त्री तथा पुरुष इस काम के लिए ख़ुशी से तैयार होते थे। हमारे देश में स्वर्ग जाने का सबसे सीधा रास्ता यज्ञ बना दिया गया था। उसमें जो कोई पशु या मनुष्य मारा जाता था, उसके लिए स्वर्गीय सुख सुरक्षित था। पुराणों में मनुष्यों के सदेह स्वर्ग पहुँचने के क़िस्से पाए जाते हैं। यूनान के पुराण ग्रन्थों में भी 'ओलिम्पस' के सम्बन्ध में इससे मिलती-जुलती बातें मौजूद हैं।

आरम्भ में स्वर्ग का मार्ग प्रत्येक पुरुष और स्त्री के लिए खुला रहता था, चाहे उसमें किसी तरह का गुण हो या न हो। उस समय यह किसी तरह के पुरस्कार की तरह नहीं, वरन् अधिकार की भाँति माना जाता था। इसके सिवाय मृतात्मा से पीछा छुड़ाने के लिए लोग स्वयं उनको वहाँ भेजने को उत्सुक रहते थे। पर जब आत्माओं को ख़ुशी से वहाँ जाने की आदत लग गई तो उससे चरित्र-सम्बन्धी शिक्षा का काम लिया जाने लगा, तब स्वर्ग को विशेष रूप से उन लोगों के लिए सुरक्षित बना दिया गया, जो देश या जाति की रक्षा के लिए प्राण देते हैं। हमारे देश में युद्ध में प्राण देने वाला योद्धा सूर्यलोक को वेध कर सीधा स्वर्ग पहुँच जाता था। उसको ले जाने के लिए देवदूत सोने के रथ में आते थे और स्वर्ग पहुँचने पर अप्सराएँ उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए तैयार रहती थीं। इस भावना के कारण लोग युद्ध से विमुख होने के बजाय उसमें मर जाना अधिक लाभजनक समझते थे। मैक्सिको के प्राचीन निवासियों के विश्वासानुसार शत्रु के मुक़ाबले या उसके अत्याचारों से मरने वाले वीर की आत्मा को 'टिओगामिक' देवी स्वर्ग पहुँचा देती थी! नार्वे के युद्ध में मारे जाने वाले लोगों को स्वर्ग में पहुँचाने के लिए 'वल्कीर' नाम की देव-दूतिकाएँ नियुक्त की गई थीं। कितनी ही जातियों के विश्वासानुसार इन स्वर्गीय स्थानों में केवल युवा पुरुष और स्त्री ही रह सकते थे। बूढ़े लोगों को ऐसी जगह भेजा जाता था, जहाँ सदैव सोते रहना पड़ता है। बालक भी स्वर्ग में नहीं जा सकते, इसके लिए उन्हें दुबारा जन्म लेने की आवश्यकता है। इस विश्वास के कारण कितनी ही जातियों में बच्चों को रास्ते के किनारे गाड़ देने का नियम था, जिससे उनकी आत्मा आने-जाने वाली स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करके जन्म ले सके। जब इस परलोक सम्बन्धी विचार की जड़ अच्छी तरह जम गई, तो मृतक के शव को गाड़ने के बजाय जला देने की रीति प्रचलित हुई, जिससे आत्मा शरीर का मोह त्याग कर शीघ्र परलोक को रवाना हो जाय।

आत्मा के सिद्धान्त का लोप

आत्मा का सिद्धान्त, जिसकी कल्पना जङ्गली मनुष्य ने की थी और जो अर्द्ध-सभ्य मनुष्य द्वारा विकसित किया गया था, बीच के युग में प्रायः लोप हो गया। यद्यपि उस समय भी मृतक संस्कार की प्रथा प्रचलित थी, पर उसका महत्व बहुत घट गया था और लोग केवल एक रूढ़ि की भाँति उसका पालन करते थे। इस कारण मृतक संस्कार के समय मनुष्यों और पशुओं का बलिदान करने की प्रथा उठ गई, और उसके साथ केवल दिखावे के लिए कुछ गिनती की चीज़ें जलाई जाने लगीं। क्योंकि अब लोगों को इस बात पर विश्वास नहीं रहा था कि वे मृत व्यक्ति के किसी काम आ सकेंगी।

इस परिवर्तन के फल-स्वरूप लोगों की मानसिक प्रवृत्ति ने एक नया ही रूप ग्रहण कर लिया और दार्शनिक लोग यह शिक्षा देने लगे कि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का सदा के लिए अन्त हो जाता है, परलोक आदि की धारणा मिथ्या है और इसलिए मनुष्य को जब तक जीवित रहे, सुख से समय व्यतीत करना चाहिए। 'एकलेज़सिएट' नामक प्राचीन ग्रन्थ में, जिसके रचयिता यहूदी दार्शनिक थे, लिखा है—"जैसे पशु का सदा के लिए अन्त हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का भी अन्त हो जाता है। दोनों के प्राण एक समान हैं और इसलिए मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ नहीं समझा जा सकता। × × × कौन कह सकता है कि मनुष्य की आत्मा ऊपर जाती है और पशु की आत्मा नीचे। × × × मेरी सम्मति में यही मार्ग श्रेष्ठ है कि मनुष्य खाए, पिए और अपने परिश्रम के फल का भली-भाँति उपभोग करे। यही ईश्वरीय दान है कि जब तक संसार में

रहो, ख़ुशी के साथ जीवित रहो। × × ×तुमको जो कुछ काम करने को मिले उसे अपनी पूरी शक्ति से करो, क्योंकि क़ब्र में, जहाँ तुमको जाना है, न कोई काम है, न कोई योजना है, न ज्ञान है और न विद्या है।" एक दूसरे कवि ने लिखा है—"पृथ्वी की गोद में मैं बिना किसी तरह के शब्द के एक पत्थर की तरह पड़ा रहूँगा।" भारतवर्ष में भी बृहस्पति आदि आचार्यों ने जो चार्वाक मत चलाया था, उसकी शिक्षा इसी प्रकार की थी। इस मत सम्बन्धी जो उद्धरण 'सर्वदर्शन संग्रह' आदि ग्रन्थों में मिलते हैं, उनसे विदित होता है कि बृहस्पति के मतानुसार "यह देह भस्म हो जाने वाली है, इसलिए मनुष्य को परलोक का ख़याल छोड़ कर सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करना चाहिए।.........यदि यज्ञ में मारे जाने वाले पशु को स्वर्ग प्राप्त होता है, तो यज्ञकर्ता अपने पिता को ही मार कर स्वर्ग क्यों नहीं भेज देता।"

यद्यपि इतिहासकारों ने आत्मा के सिद्धान्त के लोप होने और फिर प्रकट होने का वर्णन किया है, पर उन्होंने इस बात पर कभी विचार नहीं किया कि इस आश्चर्य-जनक घटना के वास्तविक कारण क्या थे। इन कारणों का पता लगाना उनके लिए सहज भी न था, क्योंकि उस समय ज्ञान-विज्ञान की उन्नति बाल्यावस्था में थी और खोज करने के बहुत कम साधन उपलब्ध थे। इन कारणों का ठीक पता साम्यवाद के आचार्य मार्क्स और उसके अनुयायी अन्य विद्वानों की विशेष विचारशैली द्वारा हाल ही में लगा है। इन विद्वानों के मतानुसार मनुष्य-जाति के विचारों तथा प्रथाओं में परिवर्तन होने का मुख्य कारण समाज का आर्थिक सङ्गठन है। जङ्गली अवस्था में प्रत्येक फ़िर्क़े या जाति के समस्त प्राणी समान माने जाते थे और उनका जायदाद पर समान रूप से अधिकार होता था। अगर कोई अन्तर था तो यही कि पुरुष शिकार करके भोजन सामग्री लाने का काम करता था और स्त्री घर का प्रबन्ध करती थी, रक्षा करती थी, भोजन पकाती थी और वितरण करती थी। इन महत्व-पूर्ण कार्यों के फल-स्वरूप उसकी बौद्धिक उन्नति पुरुष से अधिक हुई और समाज में उसका प्रभाव भी अधिक माना जाने लगा। वही लापरवाह और अदूरदर्शी जङ्गली पुरुष की भाग्य-विधाता थी और जन्म से मरण तक उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती रहती थी। ऐसी दशा में स्त्रियों का पुरुषों द्वारा विशेष रूप से सम्मान किया जाना स्वाभाविक था। यही कारण था कि अति प्राचीन काल से विद्या, बुद्धि, धन, शक्ति आदि समस्त गुणों की अधिष्ठात्री देवियों को माना गया था। प्राचीन यूनानी अपने भाग्य की अधिष्ठात्री 'मोइरी' और 'परसी' नाम की देवियों को मानते थे, जिनका अर्थ लैटिन भाषा में गृह-प्रबन्ध-कर्त्री से है।

जब आर्थिक अधिकार इस प्रकार समान था, तो अन्य सब विषयों में भी समानता का भाव पाया जाना आवश्यकीय था, क्योंकि मनुष्य की चरित्र और धर्म सम्बन्धी भावनाओं का उदय मुख्यतया आर्थिक स्थिति से ही होता है। इसलिए जब जङ्गली मनुष्य ने आत्मा और परलोक का अन्वेषण किया तो फ़िर्क़े के प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा मानी गई और प्रत्येक को स्वर्ग में जाने का अधिकार दिया गया। समस्त पुरुष और स्त्री बिना किसी तरह के अपवाद के उस सुन्दर प्रदेश में पृथ्वी की तरह रहते थे। जब कि पुरुष शिकार करते थे, स्त्रियाँ घर का प्रबन्ध करती थीं, और खाल के कपड़े बनाती थीं। परलोक में भी स्त्रियाँ ही गृह की शासिका मानी जाती थीं।

जब तक समाज में सम्मिलित रूप से जीवन निर्वाह करने की प्रथा प्रचलित रही, तब तक स्त्रियों की यह प्रधानता अक्षुण्ण रही। इस युग में विवाह की प्रथा प्रचलित न थी और फ़िर्क़े की समस्त स्त्रियों का समस्त पुरुषों से अबाध रूप से सम्बन्ध रहता था। उनसे जो सन्तानें उत्पन्न होती थीं, वे भी फ़िर्क़े की मानी जाती थीं। ये बच्चे अपने पिता के सम्बन्ध में सर्वथा अनजान रहते थे, केवल माता को पहिचानते थे। इस कारण से भी घर में माता की प्रधानता रहती थी और उसी के नाम से वंश-परम्परा चलती थी। इस प्रकार की वंश-परम्परा को Matriarchal (मातृ-प्रधान) कहते थे। पर जब मनुष्य ने जङ्गली अवस्था से सभ्यता की तरफ़ क़दम बढ़ाया और विवाह-प्रथा की सृष्टि हुई, तब एक फ़िर्क़ा कितने ही कुटुम्बों में बँट गया। ऐसे कुटुम्बों में आरम्भ में कुछ समय तक माता की प्रधानता रही, पर आर्थिक स्थिति के बदल जाने से धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम हो गया और पिता की प्रधानता हो गई। इस प्रकार के प्रत्येक कुटुम्ब का अपने घर और आस-पास की ज़मीन

पर पूर्ण अधिकार रहता था। खेती की ज़मीन अब भी सार्वजनिक समझी जाती थी, पर अब उसको सम्मिलित रूप से जोतने-बोने की प्रथा नष्ट हो गई थी और उसे प्रत्येक वर्ष तमाम कुटुम्बों में बाँट दिया जाता था। यह वार्षिक बटवारे की प्रथा भी अन्त में बन्द हो गई और प्रत्येक कुटुम्ब अपने खेतों का स्थायी रूप से स्वामी मान लिया गया।

इस आर्थिक विकास का प्रभाव मनुष्यों की धार्मिक धारणा पर भी पड़ा। इसके फल से परलोक सम्बन्धी विश्वास, जिसके अनुसार वहाँ पर समस्त आत्माएँ सम्मिलित रूप से जीवन निर्वाह करती थीं, नष्ट हो गया। इसके साथ ही मातृ-प्रधान कुटुम्ब-प्रथा के स्थान पर पितृ-प्रधान (Patriarchal) कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित होने से मनुष्य के आध्यात्मिक विचारों में एक और आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। इस समय चूँकि एकमात्र घर का मुखिया या कुलपति ही सम्पत्ति का मालिक था, इसलिए केवल उसी में आत्मा का अस्तित्व माना जाने लगा और कुटुम्ब के शेष व्यक्ति आत्मा-रहित हो गए। स्त्रियों में आत्मा न होने के सिद्धान्त का जन्म इसी समय हुआ और इसकी जड़ यहाँ तक जम गई कि ईसाई धर्म की स्थापना के सैकड़ों वर्ष बाद तक लोग इस पर विश्वास करते रहे। स्त्रियों के साथ ही कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति भी बिना आत्मा के माने जाने लगे, क्योंकि उनके पास किसी तरह की जायदाद न थी। परलोक का विश्वास नष्ट हो जाने से कुलपति की आत्मा को घर में ही रखने की ज़रूरत पड़ी और इससे पितृ-पूजन की प्रथा का प्रचार हुआ, जो अब भी संसार के अनेक भागों में विभिन्न रूपों में प्रचलित है। पित्रों का समाधि-स्थान घर के बीच में नियत किया गया, जहाँ किसी बाहरी मनुष्य की दृष्टि उस पर न पड़ सके।

कुटुम्ब के मुखिया अथवा कुलपति में आत्मा का अस्तित्व मानने का एक विशेष कारण था, जैसा कि विभिन्न देशों की पौराणिक कथाओं से प्रकट होता है। स्त्रियों ने पुरुषों की प्रधानता को सहज में स्वीकार नहीं कर लिया, और इसके लिए कुटुम्ब के प्रधान व्यक्तियों को बहुत-कुछ लड़ाई-झगड़ा करने तथा शक्ति से काम लेने की आवश्यकता पड़ी। जमदग्नि ऋषि के क़िस्से में, जिसने अपने छोटे पुत्रों को अपनी स्त्री के मारने का आदेश दिया था और उनके इनकार करने पर उन सबको तथा उनकी माता को बड़े पुत्र परशुराम द्वारा क़त्ल कराया था, इसी तथ्य की झलक पाई जाती है! यूनान में भी पितृ-प्रधान वंश-प्रथा की स्थापना करने वाले ज़ियस को मातृ-प्रधान प्रथा के पक्षपाती टीटन, गाइआ, क्रोनोस आदि से युद्ध करना पड़ा था। ऐसी परिस्थिति में पितृ-प्रधान प्रथा के प्रचलित हो जाने पर भी कुलपतियों को सदैव अपने विरोधियों की तरफ़ से खटका बना रहता था, और इस बात का बड़ा अन्देशा था कि उनके मरने के बाद उनके उत्तराधिकारी के आदेश को, यदि वह कम उम्र हुआ तो, कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति मानेंगे या नहीं। इसलिए कुलपति के मरने के बाद भी उसकी आत्मा का घर में बना रहना आवश्यक हो गया। वह अपने उत्तराधिकारी को समय-समय पर ज़रूरी मामलों में सलाह देता रहता था, और उसके प्रभाव तथा श्रद्धा के कारण कुटुम्ब के अधिक उम्र वाले तथा योग्य व्यक्ति भी कम उम्र के उत्तराधिकारी की आज्ञानुसार चलते थे। यदि इस प्रकार का प्रबन्ध न किया जाता, तो कुटुम्ब के विभिन्न व्यक्तियों में फूट हो जाना और फल-स्वरूप पैतृक सम्पत्ति का नष्ट हो जाना बहुत सम्भव था। इसी पैतृक सम्पत्ति की रक्षा के भाव के कारण उस युग के मनुष्य पुत्र का होना अत्यावश्यक समझते थे, और जिसके पुत्र नहीं होता था वह या तो अपनी स्त्री को त्याग कर दूसरा विवाह करता था या स्त्री नियोग-विधि द्वारा किसी अन्य व्यक्ति से संयोग करके सन्तान उत्पन्न करती थी। इस प्रकार की सन्तान प्राचीन काल में सर्वथा वैध मानी जाती थी। इस प्रथा का प्रतिपादन करते हुए मनु ने लिखा है कि "बछड़े पर साँड़ के स्वामी का अधिकार नहीं होता, वरन् गाय के स्वामी का अधिकार माना जाता है।"

मनुष्य की जङ्गली दशा में जो आत्मा बहुत अधिक भय का कारण मानी जाती थी, वह पितृ-प्रधान प्रथा वाले समाज में मनुष्यों की रक्षक तथा शिक्षक बन गई। पूर्वजों की आत्माएँ गृह के मध्य में निवास करती थीं, और वहीं से कुटुम्ब की रक्षा करती थीं, जायदाद का प्रबन्ध करती थीं और अपने उत्तराधिकारी तत्कालीन कुलपति को उचित सम्मति देती रहती थीं।

कुलपति बिना अपने मृत पूर्वजों की सलाह लिए कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं कर सकता था।

जङ्गली मनुष्य की आत्मा परलोक में अपने जीवन-निर्वाह की सामग्री शिकार करके या जङ्गल से फल इकट्ठे करके स्वयं ही प्राप्त कर लेती थी। पर जब कि परलोक की धारणा नष्ट हो गई और कुलपतियों की आत्माएँ समाधि में ही रहने लगीं, तो उनको खाने-पीने की सामग्री जुटाने का भार उनके सम्बन्धियों पर पड़ा। इस ख़्याल ने पुत्र उत्पन्न करने और वंश की परम्परा को स्थिर रखने की भावना को और भी दृढ़ कर दिया और जब कुछ काल पश्चात् दहेज की प्रथा प्रचलित हो जाने से कुटुम्ब में स्त्री का प्रभाव फिर से बढ़ा और उसने किसी प्रकार व्यभिचार द्वारा सन्तान उत्पन्न कराना स्वीकार न किया, तो दत्तक पुत्र लेने की प्रथा चलाई गई।

अब उस कल्पना में भी संशोधन करने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा, जो जङ्गली मनुष्य ने स्वप्न के सम्बन्ध में की थी। जङ्गली मनुष्य का विश्वास था कि स्वप्न में जीवित या मृत व्यक्तियों की आत्माएँ दिखलाई देती हैं। पर अब, जबकि कुलपति के सिवाय किसी जीवित या मृत व्यक्ति की आत्मा का अस्तित्व नहीं माना जाता था, उपरोक्त सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया जा सकता था, इसलिए अब यह विश्वास किया जाने लगा कि स्वप्न में दिखलाई देने वाले व्यक्ति देवताओं द्वारा प्रेषित मिथ्या प्रतिबिम्ब हैं। इस प्रकार स्वप्न ने एक मानसिक घटना होने के बजाय दैवी सन्देश का रूप ग्रहण कर लिया। कितने ही लोगों का पेशा स्वप्नों का अर्थ बतलाना ही हो गया और उन्होंने जनता की मूर्खता से ख़ूब लाभ उठाया और आज तक उठाते जा रहे हैं।

जङ्गली मनुष्य ने जिन आध्यात्मिक सिद्धान्तों की सृष्टि की थी, वे सामाजिक और आर्थिक दशा के बदल जाने से अधिकांश में नष्ट हो गए। वास्तव में अब उनकी आवश्यकता भी नहीं रही; क्योंकि अब मनुष्यों ने मृत व्यक्ति से डरना छोड़ दिया था। इस विषय में इतना अधिक परिवर्तन हुआ था कि साधारण लोगों को आत्मा से रहित मानने से पूर्व ही परलोक की धारणा का अन्त होने लग गया था।

पितृ-प्रधान युग के सिद्धान्तों में भी सामाजिक तथा आर्थिक विकास के साथ परिवर्तन होता गया। उनका मुख्य उद्देश्य कुटुम्ब के विभिन्न व्यक्तियों को एक मुखिया अथवा कुलपति की अधीनता में सङ्गठित कर देना था, जिससे वे अन्य कुटुम्बों की प्रतिस्पर्धा में अपने स्वत्वों की रक्षा कर सकें। जब यह उद्देश्य सिद्ध हो गया तो आत्मा का सिद्धान्त फिर जीवित हो उठा।

卐 卐 卐

धोखा !

[श्री० श्रीमद्भागवतप्रसाद वर्मा]

माया की वह छलना थी,
धोके में सब कुछ खोया !
अज्ञात देश से गिर कर—
मैं 'कहाँ-कहाँ' कर रोया !!

समझे था इस दुनिया को—
कोई सुन्दर बुतख़ाना !
उफ़ ! अभिशापित जीवन का—
यह तो है बन्दीख़ाना !!

खोया-सा देख रहा हूँ—
निर्मम विनाश की लीला !
हे विश्वनियन्ता कर दो—
माया का बन्धन ढीला !!

मिट्टी का तुच्छ घरौंदा—
ले लो वापस तुम अपना !
जिसका देखा करता था—
मैं वैसा सुन्दर सपना !!

बस, मुक्त मुझे अब कर दो,
उस पार लौट मैं जाऊँ !
कामना-सिन्धु के तट पर—
फिर बैठ तराना गाऊँ !!

जीने का अधिकार किसको ?

[स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक]

संयुक्त राज्य अमेरिका की साउथ डकोटा रियासत में मैं एक किसान के खेत पर काम करने के लिए गया। मैंने कभी भी पहिले इस प्रकार का कार्य नहीं किया था, इसलिए जब मज़दूरों के कपड़े पहिन कर मैं काम करने के लिए तैयार हुआ, तो खेत के मालिक ने बड़े प्रेम से मुझे समझा कर कहा—इस खेत में, जहाँ आप काम करेंगे, बहुत से निकम्मे पौधे जम गए हैं, वे मकई की खेती को नुक़सान पहुँचावेंगे, अतएव आप कृपा करके सबसे पहिले इन्हें उखाड़ कर फेंक दीजिए, ताकि वे जमने न पावें।

मैं ऐसे पौधों को नहीं पहिचानता था, एतदर्थ बड़ी नम्रता से बोला—महाशय, आप एक बार खेत में चल कर मुझे उन पौधों के दर्शन करा दें और कृपया यह भी समझा दें कि वे मक्का की खेती को नुक़सान कैसे पहुँचाते हैं ?

खेत का मालिक मुझे साथ लेकर खेत की ओर चला और वहाँ पहुँच कर उसने कुदाली से उन पौधों को उखाड़ कर बतलाया और मुझे समझाने लगा—देखो नौजवान, यह पौधे उस खाद को खा जावेंगे, जो मैं मक्का की खेती के लिए इस भूमि में डालूँगा। वे केवल खाद ही नहीं खाएँगे, बल्कि मक्का की बढ़ती को रोक देंगे और उसके भोजन को स्वयं उड़ा जायँगे। ऐसी अवस्था में इनका उखाड़ देना ही कल्याणकारी है, ताकि मेरी खेती खूब फूले और फले।

मैं काम में लग गया। मेरा मस्तिष्क भी गहरे विचार में डूब गया। मैं खेत में काम तो कर रहा था, लेकिन मेरे दिमाग़ में विचारों की बाढ़ आ गई थी। मैं सोचने लगा कि संसार में कितने पुरुष और स्त्री इन निकम्मे पौधों की तरह ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। वे दूसरों का भोजन चट कर जाते और समाज को निर्बल बनाते हैं। लाखों भिखमङ्गे, अन्धे, लङ्गड़े-लूले और अपाहिज हैं, जिनसे रत्ती भर भी समाज का कोई काम नहीं होता। हज़ारों हट्टे-कट्टे मुष्टण्डे, फ़क़ीर, साधू, बैरागी आदि हैं, जो कोई सेवा समाज की नहीं करते और अपने हिस्से का अन्न पैदा नहीं करते। वे धोखा-धड़ी से पेट पालते हैं और इस प्रकार दूसरे ईमानदार और परिश्रमी मज़दूरों का भाग खा जाते हैं। सैकड़ों हज़ारों भङ्गड़, चरसी, गँजेड़ी और शराबी हैं, जिनका चौबीस घण्टे धन्धा यही है कि वे राष्ट्र के धन को नशे द्वारा फूँक दें। इसी प्रकार व्यभिचार के मद में चूर हज़ारों व्यक्ति ऐसे हैं, जो बीमार और निर्बल सन्तान उत्पन्न कर समाज का कचरा बढ़ाते हैं। हज़ारों ऐसे स्त्री-पुरुष भी हैं, जो ऐसी व्याधियों से ग्रस्त हैं, जिनका इलाज कभी नहीं हो सकता और जो उन बीमारियों के कीटाणुओं को पीढ़ी दरपीढ़ी अपनी सन्तान को दे जाते हैं। इस भाँति संसार के इस विशाल क्षेत्र में जो सुन्दर पदार्थ प्रभु ने हमें भोगने के लिए दिए हैं, उनका पचास फ़ी सदी भाग बिल्कुल निकम्मे लोगों के लिए ख़र्च होता है और बाक़ी पचास फ़ी सदी ही उनके हिस्से में आता है, जिनके बूते पर समाज आगे बढ़ता है और वंश की वृद्धि होती है।

क्या हमने कभी गम्भीरता से इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया है ? सैकड़ों प्रकार के आचार्य, सन्त और धर्माचार्य भिन्न-भिन्न देशों में पैदा हुए और उन्होंने थोथे सिद्धान्तों का प्रचार कर समाज के इन निकम्मे पौधों की रक्षा करने का उपदेश जनता को दिया। कभी किसी ने भी उस साधारण किसान से इस विषय में शिक्षा ग्रहण न की। दूसरे जन्मों के सब्ज़ बाग़ दिखला कर और स्वर्ग-नरक का माया-जाल रच कर उन्होंने जनता को ऐसा बना दिया कि आज तक ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर समाज-सुधारकों ने अपनी सारी शक्ति लगा कर कुछ परिणाम निकालने की कोशिश नहीं की। संसार में रोटी के लिए हाहाकार मचा हुआ है और सदा

मचा रहेगा। आबादी की बढ़ती होने से शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे निर्बल देशों पर बलपूर्वक क़ब्ज़ा करने का यत्न करते रहेंगे, ताकि उनकी आबादी को बसने का स्थान मिले। इसी जद्दो-जहद में वे समाज के बलिष्ठ सैनिकों को युद्धों में झुका कर उन्हें तबाह कर देते हैं और उनकी विजय का भोग करने वाले कौन होते हैं? अधिकतर वही निकम्मे पौधे, जिनका धन्धा केवल समाज के परिश्रमी लोगों का भोजन चट करना है। यदि परस्पर युद्ध करने के बजाय, अपने बलिष्ठ सैनिकों की हत्या करने के स्थान पर प्रत्येक वर्ष निकम्मे पौधों का नाश किया जाय, तो संसार में कभी रोटी के लिए हाहाकार न मचे और इस प्रकार आगे बढ़ने वाले शों को उन्नति करने का अवसर मिले। जो काम एक साधारण किसान कर सकता है, उसे बड़े-बड़े धर्माचार्य, विद्वान और राजनीतिज्ञ नहीं कर सकते। इसमें क्या रहस्य है? इसके अन्दर यही बात काम कर रही है कि मनुष्य-समाज के उन निकम्मे पौधों को हम स्त्री-पुरुष समझ कर उनकी रक्षा करते हैं और दया-दान का ढकोसला रच कर हम इनकी संख्या-वृद्धि करते हैं। अन्ध-विश्वास ने हमारी बुद्धि पर इतना परदा डाल दिया है कि हम ऐसी स्पष्ट बातों को भी नहीं देख सकते।

ज़रा सोचिए। अच्छी नसल का घोड़ा पैदा करने के लिए हम कितना प्रयत्न करते हैं? हमें अच्छे गाय-बैल चाहिए, इसके लिए कितनी प्रयोगशालाएँ बनती हैं, लेकिन अफ़सोस, मानव-समाज में अच्छी नसल के स्त्री-पुरुष पैदा करने का कोई यत्न नहीं किया जाता। यहाँ आकर हम मिथ्या-विश्वासों के जङ्गल में भटकने लगते हैं। भला सोचिए तो सही कि निर्बल, व्याधि-ग्रस्त और वीर्यहीन स्त्री-पुरुषों को विवाह कर निकम्मे बच्चे पैदा करने का क्या अधिकार है? हमारे इर्द-गिर्द चारों तरफ़ ऐसे निकम्मे झाड़-झङ्खाड़ खड़े हैं और नए उगते चले जा रहे हैं, जो दूसरों का भोजन हज़म कर समाज को बदले में लाभ देने के बजाय भारी हानि पहुँचाते हैं। क्या इन्हें जीने का अधिकार है? क्यों वे पृथ्वी के भू-भागों को घेर कर मुफ़्त की गन्दगी बढ़ावें? जिस प्रकार किसान अपनी खेती की रक्षा करता है, उसे हानिकारक कीड़ों से बचाता है, उसे निकम्मे पौधों से दूर रखता है और सदा बड़ी सावधानी से अधिक से अधिक पुष्ट अनाज पैदा करने का यत्न करता है, उसी प्रकार हमें भी करना चाहिए, तभी मनुष्य-समाज उन्नति के पथ पर चल सकेगा, अन्यथा नहीं।

आप पूछेंगे कि ऐसे निकम्मे भङ्गड़, चरसी, गँजेड़ी, व्यभिचारी-बदमाश, नपुंसक और व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुषों के साथ क्या करना चाहिए? मेरी सम्मति में हम जो सलूक निकम्मे पौधों के साथ करते हैं, वही हमें ऐसे स्त्री-पुरुषों के साथ भी करना चाहिए, तभी वंश बलवान होगा और सुन्दर मस्तिष्क रखने वाले सदस्यों की वृद्धि होगी, जो प्रभु के अनन्त ज्ञान में से अच्छी-अच्छी बातें निकाल सकेंगे। दया और करुणा बड़े अच्छे गुण हैं; परन्तु तभी तक, जब तक कि उनका उपयोग नीरोग और बलिष्ठ बीजों के साथ किया जाता है। भारतवर्ष में तो क़रीब साठ फ़ी सदी संख्या उन स्त्री-पुरुषों की होगी, जो भारतमाता पर केवल भार-रूप हैं; जिनके अन्दर से केवल बुराई के कीटाणु निकलते रहते हैं; जो विवाह कर भारी पाप करते हैं और रोगी सन्तान की वृद्धि कर भारतीय प्रजा के साथ बड़ा अत्याचार करते हैं। ईश्वर ने जो पदार्थ हमें दिए हैं, वे उन्हीं के भोग करने के वास्ते हैं, जो संसार के ज्ञान की वृद्धि करें और अपनी उपयोगिता से समाज को उन्नत बनावें। ऐसे स्त्री और पुरुष, जिनसे समाज को हानि ही हानि है, जीने का कोई अधिकार नहीं रखते। वीर स्पार्टा लोगों ने अपनी समृद्धि के दिनों में ऐसा ही किया था, तभी वे ऊँचे दर्जे के नीरोग और शक्तिशाली स्त्री-पुरुषों को उत्पन्न कर सके थे। वंश की वृद्धि और उसकी उन्नति का प्रश्न बड़े महत्व का है। जो कपोल-कल्पित धर्मों और झूठे आडम्बरों में फँस कर तीर्थों पर मगर पालते हैं, वृन्दावन में कछुओं को हज़ारों मन आटा खिलाते हैं और हनूमान के नाम पर बन्दरों का सितम सहते हैं, ऐसे अज्ञानी लोग दया और करुणा, इन शब्दों का अर्थ भला क्या समझ सकते हैं। वे धन की ख़ातिर दूसरों के मकान नीलाम करा लेंगे; दुधमुँहे बच्चों को उनकी झोंपड़ियों से निकाल कर उन पर क़ब्ज़ा कर लेंगे; विधवाओं पर भारी ज़ुल्म करेंगे, और नारी-जाति के अधिकारों का कभी भी आदर नहीं करेंगे—ऐसे ही लोग दया-धर्म में फँस कर पशु-पक्षियों के लिए तो बड़े धर्मात्मा बन जाते हैं, परन्तु समाज के

उत्थान के प्रश्न पर कभी विचार नहीं करते। अतएव हम बड़ी नम्रता से 'चाँद' द्वारा अपने पाठकों से पूछते हैं कि क्या आपने कभी इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान दिया है ? यदि नहीं दिया तो कृपा कर अब दीजिए। भारत-वासियों को बहुत शीघ्र इस कूड़े-कचरे को साफ़ करना ही होगा, नहीं तो उनकी आबादी उन्हें इस पर मजबूर करेगी; यहाँ घरेलू युद्ध हो जावेंगे; दिन-दहाड़े डाके पड़ेंगे और व्यधियाँ अपना टैक्स वसूल करेंगी।

संक्षेप में हमारा निवेदन यह है कि आज संसार के चिन्ताशील विद्वानों को इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना ही होगा। वे युद्ध बन्द करना चाहते हैं, यह बहुत ही अच्छी बात है। युद्धों में तो समाज का सर्वश्रेष्ठ तरुण दल ही मारा जाता है, निकम्मे पौधे तो मज़े में चरते रहते हैं। लेकिन यदि संसार में शान्ति लाने की इच्छा है, यदि रोटी के प्रश्न का हल भली प्रकार करना है, यदि अनन्त ज्ञान की खोज करने के लिए योग्य स्त्री-पुरुषों को मैदान में खड़ा करना है और यदि इस संसार को स्वर्ग बनाने की इच्छा है, तो आपको वैज्ञानिक ढङ्ग से संसार के इस विशाल क्षेत्र में उगने वाले पौधों की छाँट करनी ही होगी। जिन भद्दे क़ानूनों पर आज हम चल रहे हैं, उन्हें हटा कर समाज के लिए नए क़ानून बनाने होंगे और जिन बातों को हम आज धर्म समझ रहे हैं, उन्हें मिथ्या-विश्वासों के गढ़े में ढकेल देना होगा। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो फिर प्रकृति तो करेगी ही। परन्तु उससे मानव-समाज की उन्नति शताब्दियों के लिए रुक जायगी, जैसा कि पीछे होता आया है। यदि बौद्धकाल के उत्तम गुणों से विभूषित समाज आगे चल कर झूठी दया और अहिंसा के मोह में न फँस जाता और व्यर्थ के भिक्षुवाद की महत्ता को न बढ़ाता—केवल शक्तिशाली और योग्य स्त्री-पुरुषों को ही समाज में स्थान देता, तो कभी भी उसके लाखों भिक्षु मुसलमानों द्वारा गाजर-मूली की तरह न काट दिए जाते और न बसे हुए नगर उजाड़ दिए जाते। प्रकृति के नियम अटल हैं। वे किसी का लिहाज़ नहीं करते। शताब्दियों का किया हुआ त्यागी बौद्ध भिक्षुओं का काम इसीलिए मिट्टी में मिल गया कि उन्होंने अपने बिहारों में निकम्मे पौधों की अत्यन्त वृद्धि कर ली। यही दशा सदा से होती चली आई है। इस कारण मैं मानव-समाज को चेतावनी देकर यह कहता हूँ कि आपको अभी से अपने खेत में फैले हुए निकम्मे पौधों को ठिकाने लगाने का कुछ प्रबन्ध सोचना चाहिए, ताकि यह रोटी का प्रश्न हल हो जाय और समाज अपने आदर्श की ओर चल सके।

सम्भव है, मेरे बहुत से प्रेमी पाठक इस विषय में मुझसे मतभेद रखते हों; या किसी बात को समझाने में मैं ही असमर्थ रहा हूँ, अथवा मेरे अभिप्राय को अधिक स्पष्ट समझने की इच्छा हो, तो वे कृपा कर १३, बारा खम्बा रोड, नई देहली के पते पर मुझसे पत्र-व्यवहार करें। तब मैं एक दूसरा लेख लिख कर सब शङ्काओं का समाधान करूँगा और इस विषय पर और भी अधिक प्रकाश डालूँगा।

पति—यह कौन सी पुस्तक पढ़ रही हो देवी जी ?

पत्नी—बड़ी अच्छी पुस्तक है प्यारे! अगर स्त्री और पुरुष इस पुस्तक में बतलाए हुए तरीक़ों पर चलें तो उनका दाम्पत्य जीवन बड़ा प्रेमपूर्ण रह सकता है।

पति—स्त्रियों के लिए इस पुस्तक में क्या-क्या नसीहतें दर्ज हैं ?

पत्नी—सो तो मैंने पढ़ी नहीं। मैं पुरुषों को बतलाई हुई नसीहतों को पढ़ रही हूँ।

नवयुवक—मेरी स्त्री वैसे तो बड़ी अच्छी है। उसमें एक ख़राबी न होती तो क्या कहना था!

वृद्ध—वह ख़राबी क्या है ?

नवयुवक—यही कि अक्सर वह अपने पहिले ख़ाविन्द की चर्चा किया करती है।

वृद्ध—बड़े मूर्ख हो, यह भी कोई ख़राबी है? मेरी स्त्री तो हर समय अपने भावी शौहर की चर्चा किया करती है।
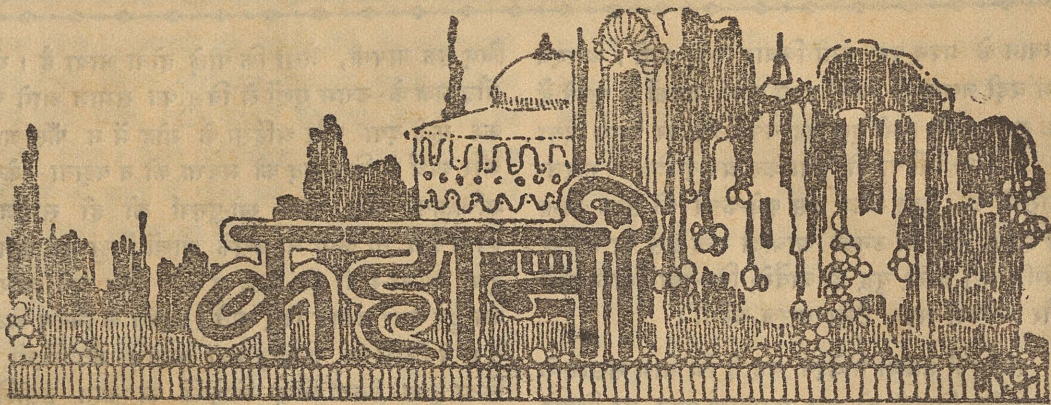
दो आँखें

[श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद]

दो आँखें—भूरी-भूरी, गोल-गोल, छोटी-छोटी सत्येन्द्र ने देखा, वे उसकी ओर निहार रही थीं। वह सड़क के किनारे-किनारे धीरे-धीरे चला जा रहा था। झुटपुटे का समय था, शान्त वायु मन्द गति से अठखेलियाँ कर रही थी। सहसा उसकी दृष्टि दाहिनी ओर वाले बँगले की ओर उठ गई। बँगले में सामने कुञ्जों के निकट एक गौराङ्गी सुन्दर बालिका खड़ी निर्निमेष दृष्टि से उसे निहार रही थी। दोनों की दृष्टि मिली, परन्तु केवल क्षण भर के लिए, दूसरे ही क्षण बालिका का मस्तक नत हो चुका था। वह चार पग आगे बढ़ गया। उसने साहस करके एक बार पुनः बालिका की ओर देखा। बालिका के नेत्र भी उसकी ओर ही लगे हुए थे। उसने जल्दी से अपनी दृष्टि फेर ली और आगे बढ़ गया।

परन्तु वही जानता था कि उसके पैर एक बार पुनः वहीं लौट चलने को कितना अनुरोध कर रहे थे।

२

भयानक रात्रि थी, बरसात का मौसम। आकाश घनघोर मेघ-मालाओं से आच्छादित था। कदाचित कुछ हल्की-हल्की फुहार भी पड़ रही थी। उसके कमरे में पूर्ण अन्धकार था। केवल आकाश में चमकने वाली बिजली का प्रकाश कभी-कभी उसकी बन्द शीशेदार खिड़की पर टकरा कर उसे पल भर के लिए प्रकाशित कर जाता था।

वह दुग्ध-धवल शय्या पर पड़ी थी, समस्त संसार सुख की नींद सो रहा था, परन्तु उसकी आँखों में नींद न थी। उसमें तो चमक रही थी, एक मनोहर गौर आकृति और उस पर जड़ी दो आकर्षक आँखें—काली-काली, बड़ी-बड़ी और चमक वाली। उसके चारों ओर घूम रही थीं, वही मनोहर शान्त सन्ध्या, उसका मधुर दृश्य और उसकी प्रेममयी स्मृति।

कमरे में कहीं पर टँगी हुई टिक-टिक करती क्लॉक जब थोड़ी-थोड़ी देर के उपरान्त टन-टन कर एक, दो, तीन बजाती तो वह चौंक उठती। सिर को एक हल्का सा झटका देकर अथवा ऐंड़ा कर तथा करवट बदल कर वह मस्तिष्क से उन समस्त विचारों को निकाल देना चाहती थी। परन्तु क्या किसी बार वह इसमें सफल हुई थी? उसने एक, दो और तीन, तीनों का घण्टा स्पष्ट सुना था। तीन के उपरान्त के अद्धे की भी भनक उसके कान में आई थी, उसके उपरान्त कुछ बजा भी अथवा नहीं, उसे पता नहीं।

दिन निकला अपनी उसी सदैव की सी मनोहर छटा के साथ और चला भी गया अपने उन्हीं धीरे-धीरे

चलने वाले घण्टों और मिनिटों के पैरों पर। बड़ी देर के उपरान्त फिर वही सन्ध्या आई। परन्तु कल की भाँति आज वह उतनी सुहावनी और शान्त न थी। आकाश अब भी मेघों से आच्छादित था। चारों ओर निस्तब्धता सी फैली हुई थी। पवनदेव स्वच्छन्दता या तनिक तेज़ी से अपना कार्य कर रहे थे। वह उसी प्रकार उसी कुञ्ज के निकट खड़ी उत्सुक सी चारों ओर देख रही थी। उसने देखा, वह चला आ रहा था, आज वह कल से कुछ पहले ही आ गया था। उसके नेत्र पहले ही से उस ओर लगे हुए थे। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, परन्तु किसी की भी पलकें गिरी नहीं। आज दोनों क्षेत्र में डटे रहे। वह बढ़ रहा था, वह भी अपने स्थान से हट रही थी, परन्तु दृष्टि दोनों की अचल थी। सहसा ज़ोर से मोटर के 'हॉर्न' की आवाज़ हुई। सत्येन्द्र चौंक उठा। एक मोटर-साइकिल सर्र से उसके सामने से होकर बँगले में घुस गई। लज्जावश उसने सिर झुका लिया और आगे बढ़ गया। तुरन्त ही उसने सुना कि किसी ने कहा—शशि, यह क्या?

उसका हृदय तड़प उठा। उसने दृष्टि फेरी, देखा उसका समवयस्क एक युवक मोटर-साइकिल पर बैठा उससे बातें कर रहा था। युवती अपराधी की भाँति नतमस्तक साइकिल के हैण्डिल पर हाथ रक्खे खड़ी थी। युवक ने दृष्टि सत्येन्द्र की ओर फेरी। इसने भी जल्दी से आगे पैर बढ़ाए।

३

दूसरे दिन सन्ध्या-समय वह पुनः उधर गया, हृदय में उठती आशाओं, आकांक्षाओं तथा विचारों के समुद्र में डुबकी लगाता हुआ। आज उसकी दृष्टि सशङ्कित सी चारों ओर फिरती चलती थी, जैसे कि वह कोई चोर हो। अन्त में उसके नेत्र शरीर से पहले वहाँ पहुँच गए और लगे उसे खोजने, परन्तु × × × वह न मिली। बढ़ती आशा की डोंगी में एक धक्का सा लगा। वह चकराने लगी।

इसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी × × × न जाने कितनी सन्ध्याएँ आईं अपने चित्र-विचित्र रूपों में, अपने रूप-वैभव पर मुस्कराती, इठलाती और इतराती और चली भी गईं, इस निर्मोही कठोर-हृदय संसार के हाथों उसे लुटा कर पछताती, बिलखती, अन्धकार में मुँह छिपा कर। वह प्रतिदिन अभिलाषाओं के बड़े-बड़े क़िले बनाता हुआ उधर आता और उन्हें धूल में मिला कर लौट जाता। वह उसे न मिलती।

अन्त में उसका हृदय बैठ गया। उसने उस ओर जाना छोड़ दिया। इसके बाद और भी परिवर्तन हुए। उसका मन काम से भागने लगा। दिन-रात सोचना, सोचना और सोचना ही उसका एक कार्य रह गया। अवसर पा वह किसी दूर एकान्त स्थान—पार्क आदि में जा बैठता और घण्टों उसी चिन्ता, उसी दुराशा में बिता देता। आह! कितनी थी उसकी मानसिक व्यथा?

४

समय के साथ-साथ संसार भी साढ़े तीन वर्ष आगे बढ़ गया। परन्तु वह? वह तो कदाचित् साढ़े तीन वर्ष पीछे चला गया। लगातार परीक्षा की असफलता के कारण पढ़ना छूटा, अनेक प्रयत्न करने पर भी कोई नौकरी न मिली, व्यापार चला नहीं और अन्त में रह गई पास में वही, जो भारत के सहस्रों नवयुवकों के दुर्भाग्य में है—बेकारी।

माता-पिता ने विवाह करना चाहा। चाहते भी क्यों नहीं? कन्या वाले आँखें मूँदे द्वार पीट रहे थे। उन्हें इसकी चिन्ता तो थी नहीं कि लड़का क्या खाएगा, क्या खिलाएगा? क्योंकि उनका तो कथन था—'जिसने मुख दिया वही खाने को भी देगा।' उन्हें तो केवल यह चिन्ता थी कि कन्या के हाथ पीले हो जावें। उन्होंने उसके पिता का पीछा करना आरम्भ किया। परन्तु उसने विवाह से साफ़ नाहीं कर दी, न जाने क्या-क्या सोचते हुए, किन-किन कारणों से? इसी, तथा और भी न जाने किस-किस प्रकार यह साढ़े तीन वर्ष का समय समाप्त हो गया।

एक दिन सन्ध्या-समय वह नगर से दूरस्थ एक पार्क में टहल रहा था। एक लॉन के ऊपर बेञ्च पर एक युवती बैठी थी। कुछ ही दूर पर एक दासी एक बच्चे को गाड़ी में घुमा रही थी। उसने पहचाना। वह युवती और कोई नहीं, शशि थी। जैसे ही वह उसके समीप पहुँचा, शशि खड़ी हो गई और कुछ आगे बढ़ते हुए हर्ष-युक्त स्वर में बोली—धन्य भाग्य! आइए!

शशि के इस वाक्य ने उसकी विचित्र दशा कर दी। हृदय में उठते आशा-निराशा के भावों को दबा कर वह बेञ्च पर बैठ गया। शशि एक मिनट तक उसके मुख की ओर देखती रही; कदाचित् उसके भावों को पढ़ रही थी। उसके उपरान्त धीरे से बोली—बहुत दिनों के उपरान्त मिले।

सत्येन्द्र के मन में एक बार तो आया कि हृदय की सारी व्यथा खोल कर उसके सामने रख दे, परन्तु जिह्वा ने साथ न दिया। उसने केवल इतना कहा—आया तो कितनी ही बार, परन्तु आप ही × × ×

वह रुक गया। इस बार शशि पर विशेष प्रभाव पड़ा। उसका हृदय विचलित हो उठा, कदाचित् किसी बीती बात की याद आने के कारण! अपने को बहुत सँभाल कर उसने कहा—जी हाँ; अनेक अनिवार्य कारणों से मुझे उसी दिन यहाँ से जाना पड़ा। उसके उपरान्त ही विवाह हुआ और गृहस्थी में फँसी। अब वहाँ आना मिला है।

गाड़ी में लेटे शिशु की ओर देख उसने वेदना-भरी एक दीर्घ स्वाँस छोड़ी। सत्येन्द्र का हृदय तड़प उठा। वह व्यथित-निराशा के अथाह सागर में ग़ोते खाने लगा। कुछ क्षण पुनः उसकी ओर देखते हुए शशि ने पूछा—इन दिनों आप क्या करते हैं? विवाह आदि तो हो गया होगा?

"नहीं; और न कुछ कर ही रहा हूँ।"—दुःखित स्वर में उसने उत्तर दिया।

"क्यों?"

सत्येन्द्र चुप रहा। बहुत विचारने पर भी उसे यही प्रतीत हुआ कि इसका उत्तर उसके पास न था। दुःखी हृदय पर-पीड़ा का अनुभव शीघ्र कर लेता है। शशि को भी उसकी व्यथा समझते देर न लगी।

वह बोली—भाई, यह संसार है। इसमें एक-दो नहीं, अनेक स्थानों पर हमें अपनी इच्छा, अभिलाषा और हृदय को कुचल कर कार्य करने पड़ते हैं। समाज के सम्मुख सिर झुकाना पड़ता है। इसकी चिन्ता कर अपने को नष्ट करना ठीक नहीं।

वह मुस्कराई, परन्तु इस मुस्कान में वेदना की कितनी कसक थी? आह! सत्येन्द्र ने दृष्टि उठा कर उसकी ओर देखा। एक बार आँखें चार हुईं, परन्तु पलक मारते ही नेत्र झुक गए।

उस समय दोनों की आँखें डबडबा आई थीं।

☾ ☾ ☾

सरस वेदना

[श्री० श्यामसुन्दर श्रीवास्तव]

आशा की मृग-तृष्णा में,
जब स्वयं मिटा लेने को।
उनके चरणों में अपना
सर्वस्व चढ़ा देने को।

आती हूँ लेकर उर में,
जब पागल-सी अभिलाषा।
वे हो जाते हैं ओझल,
हँस देती निठुर निराशा।

जब गुथी हुई आहों में,
मैं अपनी व्यथा सुनाती।
आँखों में पानी भर कर
मैं अपनी आग बुझाती।

घायल से मेरे उर में,
जब है पीड़ा घिर आती।
उनके निर्दय होठों पर
मुस्कान बिखरती जाती।

क्या पूछ रहे हो मुझसे
तुम मेरी करुण कहानी।
रोना निशि-दिन रोना ही
मैं हूँ दुख की दीवानी।

यह प्रेम-पन्थ पागल है,
है यहाँ ज्ञान नादानी।
उनके ही उर में देखो
तुम मेरी करुण कहानी।

❀ ❀ ❀

सम्पादकीय विचार

❀ ❀ ❀

२—पद्य

शशि के इस वाक्य ने उसकी विचित्र दशा कर दी। हृदय में उठते आशा-निराशा के भावों को दबा कर वह बेञ्च पर बैठ गया। शशि एक मिनट तक उसके मुख की ओर देखती रही; कदाचित् उसके भावों को पढ़ रही थी। उसके उपरान्त धीरे से बोली—बहुत दिनों के उपरान्त मिले।

सत्येन्द्र के मन में एक बार तो आया कि हृदय की सारी व्यथा खोल कर उसके सामने रख दे, परन्तु जिह्वा ने साथ न दिया। उसने केवल इतना कहा—आया तो कितनी ही बार, परन्तु आप ही × × ×

वह रुक गया। इस बार शशि पर विशेष प्रभाव पड़ा। उसका हृदय विचलित हो उठा, कदाचित् किसी बीती बात की याद आने के कारण! अपने को बहुत सँभाल कर उसने कहा—जी हाँ; अनेक अनिवार्य कारणों से मुझे उसी दिन यहाँ से जाना पड़ा। उसके उपरान्त ही विवाह हुआ और गृहस्थी में फँसी। अब यहाँ आना मिला है।

गाड़ी में छोटे शिशु को ओर देख उसने वेदना-भरी एक दीर्घ स्वाँस छोड़ी। सत्येन्द्र का हृदय तड़प उठा। वह व्यथित-निराशा के अथाह सागर में ग़ोते खाने लगा। कुछ क्षण पुनः उसकी ओर देखते हुए शशि ने पूछा—इन दिनों आप क्या करते हैं? विवाह आदि तो हो गया होगा?

"नहीं; और न कुछ कर ही रहा हूँ।"—दुःखित स्वर में उसने उत्तर दिया।

"क्यों?"

सत्येन्द्र चुप रहा। बहुत विचारने पर भी उसे यही प्रतीत हुआ कि इसका उत्तर उसके पास न था। दुःखी हृदय पर-पीड़ा का अनुभव शीघ्र कर लेता है। शशि को भी उसकी व्यथा समझते देर न लगी।

वह बोली—भाई, यह संसार है। इसमें एक-दो नहीं, अनेक स्थानों पर हमें अपनी इच्छा, अभिलाषा और हृदय को कुचल कर कार्य करने पड़ते हैं। समाज के सम्मुख सिर झुकाना पड़ता है। इसकी चिन्ता कर अपने को नष्ट करना ठीक नहीं।

वह मुसकराई, परन्तु इस मुस्कान में वेदना की कितनी कसक थी? आह! सत्येन्द्र ने दृष्टि उठा कर उसकी ओर देखा। एक बार आँखें चार हुईं, परन्तु पलक मारते ही नेत्र झुक गए।

उस समय दोनों की आँखें डबडबा आई थीं।

सरस वेदना

[श्री० श्यामसुन्दर श्रीवास्तव]

आशा की मृग-तृष्णा में,
जब स्वयं मिटा लेने को।
उनके चरणों में अपना
सर्वस्व चढ़ा देने को।

आती हूँ लेकर उर में,
जब पागल-सी अभिलाषा।
वे हो जाते हैं ओझल,
हँस देती निठुर निराशा।

जब गुथी हुई आहों में,
मैं अपनी व्यथा सुनाती।
आँखों में पानी भर कर
मैं अपनी आग बुझाती।

घायल से मेरे उर में,
जब है पीड़ा घिर आती।
उनके निर्दय होठों पर
मुस्कान बिखरती जाती।

क्या पूछ रहे हो मुझसे
तुम मेरी करुण कहानी।
रोना निशि-दिन रोना ही
मैं हूँ दुख की दीवानी।

यह प्रेम-पन्थ पागल है,
है यहाँ ज्ञान नादानी।
उनके ही उर में देखो
तुम मेरी करुण कहानी।

संसार

यह भीषण कङ्काल ! इसी में था सौन्दर्य अनूप !
ओ सुकुमार शरीर ! देख ले अपना अन्तिम रूप !!

—कुमार

FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD

नवीन संस्कृति में दाम्पत्य जीवन

[श्री० चन्द्रराज भण्डारी, विशारद]
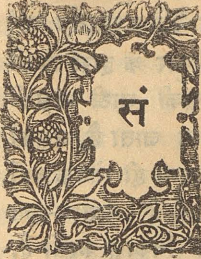
संसार में आजकल एक महान नवीन संस्कृति के उत्पन्न होने की तैयारियाँ हो रही हैं। प्राचीन संस्कृति की सभी संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। क्या समाज, क्या धर्म और क्या राजनीति, सभी प्रकार की संस्थाओं के चोले एक अद्भुत ढङ्ग से बदल रहे हैं। मनुष्य जाति के आदर्श, व्यवहार, सिद्धान्त, उसूल आदि सब में परिवर्तन हो रहे हैं। प्राचीन संस्कृति का क़िला धूल-धूसरित हो रहा है और उसके स्थान पर नवीन संस्कृति के भव्य-भवन का निर्माण हो रहा है।

इस संस्कृति का सङ्गठन किन सिद्धान्तों पर होगा, उसमें इन भिन्न-भिन्न संस्थाओं की क्या स्थिति रहेगी, इस विषय पर हम अपने भिन्न-भिन्न लेखों में यथासाध्य प्रकाश डाल चुके हैं।* इस लेख में हम इस नवीन संस्कृति में दाम्पत्य जीवन का क्या रूप रहेगा, इस विषय पर कुछ विचार करने का प्रयत्न करेंगे। क्योंकि दाम्पत्य जीवन भी समाज-संस्था का एक प्रधान अङ्ग है। जिस संस्कृति के दाम्पत्य जीवन में उच्चता, सरसता और प्रेम की जाह्नवी नहीं बहती और जिसके दाम्पत्य जीवन में रूक्षता, कलह, निरसता, अधिकार और प्रतिस्पर्द्धा के भाव फलते-फूलते रहते हैं, उस संस्कृति का सङ्गठन कभी अभिनन्दनीय नहीं कहा जा सकता। दूसरे, संस्कृति की सफलता और उसके स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि उस संस्कृति की भावी सन्तानें स्वस्थ और मेधावी हों, जोकि बिना सुन्दर दाम्पत्य जीवन के कभी नसीब नहीं हो सकतीं।

अभी तक संसार के अन्तर्गत जितनी भी महान संस्कृतियों का उदय हुआ है, सभी ने अपने दाम्पत्य जीवन को सुखमय और आनन्दपूर्ण बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में संसार की प्रायः सभी संस्कृतियों के आचार्यों ने अपनी-अपनी बुद्धि और अपने अनुभव के अनुसार व्यवस्थाओं और विधानों के बड़े-बड़े पोथे लिखे हैं, और उनके अनुसार व्यवहार भी किया है। परन्तु सत्य की समुचित रक्षा के लिए यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन सब व्यवस्थाओं में आर्य-संस्कृति की खोज सबसे अधिक महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक है। यह दूसरी बात है कि आज के विकासमय युग में मनुष्य के लिए वह अधिक उपयोगी सिद्ध न हो, मगर इससे उसकी मौलिकता या उसके विधायकों की दूरदर्शिता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में आर्य-संस्कृति के आचार्यों ने जिन अनुपम विधानों को तैयार किया, वे उस समय न केवल भारत में, प्रत्युत समस्त संसार के साहित्य में सर्वोत्कृष्ट थे। आर्य-संस्कृति के साथ तथा उसके पीछे संसार में और भी महान संस्कृतियों का उदय हुआ, परन्तु दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में ऐसा मधुर विवेचन अन्यत्र कहीं भी नहीं पाया जाता। आर्य-संस्कृति के दाम्पत्य जीवन में नारी को गृहलक्ष्मी के रूप में चित्रित किया गया है। इसी गृहलक्ष्मी की योग्यता पर हमारे सामाजिक गृहों का सुख, शान्ति, आनन्द, विषाद और सम्पत्ति, विपत्ति आदि निर्भर रहती है। जिस घर की गृहलक्ष्मी जितनी चतुरा, सद्गुण-सम्पन्ना और सुलक्षणा होगी, उस घर में आनन्द, मङ्गल, रस और सम्पत्ति की धाराएँ भी उतने ही अधिक परिमाण में बहेंगी। हमारे यहाँ के पुरुष जिस तरह हमारे वाह्य-सामाजिक जीवन के राजा हैं,

---

* देखिए 'सुधा' में प्रकाशित "नवीन संस्कृति का उदय" और "नवीन संस्कृति का सङ्गठन" (जुलाई और दिसम्बर) 'विशाल-भारत' (अक्टूबर) में प्रकाशित "संस्कृति का पुनर्निर्माण" और 'वीणा' (अक्टूबर) में प्रकाशित "इक्कीसवीं सदी का नारी-समाज" नामक लेख। —लेखक

जिस तरह हमारे वाह्य-सामाजिक जीवन के राजा हैं, उसी प्रकार हमारे यहाँ की स्त्रियाँ हमारे समाज के अन्तर्जीवन की रानियाँ हैं।

मगर इतना सब कुछ होने पर भी हमको यह मानना ही पड़ेगा कि हमारे इस विधान में कुछ ऐसी मौलिक कमज़ोरियाँ हैं, जिनकी वजह से इतने सुन्दर विधान के होने पर भी हमारा दाम्पत्य जीवन यथेष्ट नहीं पनपने पाया। इन कमज़ोरियों में सबसे प्रधान कमज़ोरी यह है कि हमारे देश में इस प्रकार की सब व्यवस्थाओं के विधाता पुरुष ही रहे हैं। दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी विधानों की व्यवस्था भी पुरुषों ही के हाथ में रही है। इसका भयङ्कर परिणाम यह हुआ कि हमारे पुरुष विधाताओं ने, इस प्रकार की व्यवस्थाएँ देते समय नारी-हृदय के स्वाभाविक मनोविकारों को समझने की और उनको मद्देनज़र रखने की कोशिश नहीं की। उन्होंने कुछ तो अधिकार-लिप्सा से और कुछ लापरवाही से नारी के सामाजिक अस्तित्व को एक-मात्र पुरुष की आवश्यकता-पूर्ति का साधन समझा। और पुरुषों की ज़रूरतों के मान से उनके ऊपर कर्त्तव्य-परायणता का एक ऐसा भारी बोझ रख दिया, जिसको किसी प्रकार का नैतिक आधार न था। एक चोर द्वारा—अधिकार और बल के भरोसे—चोरी के विरुद्ध बनाए हुए क़ानून को अथवा एक व्यभिचारी द्वारा दी हुई ब्रह्मचर्य की व्यवस्था को जितना नैतिक समर्थन प्राप्त हो सकता है, उतना ही भारतीय पुरुषों द्वारा यहाँ की नारियों के लिए दी हुई सामाजिक व्यवस्था को भी प्राप्त है। ये विधायक जिन विधानों के द्वारा पुरुषों को बहु-विवाह, बहु-पत्नीत्व और विधुर-विवाह आदि की व्यवस्था देने में आगा-पीछा नहीं सोचते, उन्हीं विधानों के द्वारा ये नारियों के लिए अखण्ड पातिव्रत्य और अनन्त वैधव्य की व्यवस्था देते हैं! इतना ही नहीं, प्रत्युत स्त्री-जाति इस पक्षपात के प्रति कहीं बग़ावत न कर बैठे, इसके लिए उन्होंने उसके लिए पठन-पाठन भी बन्द कर दिया और कहीं-कहीं तो परदे की अमर क़ैद में उसको आजन्म बन्दी की तरह डाल दिया। इस प्रकार की व्यवस्थाओं और विधानों को कितना नैतिक समर्थन प्राप्त हो सकता है, यह प्रत्येक विचारवान सोच सकता है।

इस स्थान पर 'कर्त्तव्यनिष्ठा' और 'कर्त्तव्य की ग़ुलामी' इन दोनों शब्दों के तात्विक अन्तर पर कुछ विवेचन करना असङ्गत न होगा। जिस कर्त्तव्य के पीछे किसी प्रकार का नैतिक समर्थन होता है, उस कर्त्तव्य का पालन कर्त्तव्य-पूजा या कर्त्तव्यनिष्ठा कहलाती है। मगर जिस कर्त्तव्य के पीछे किसी प्रकार का नैतिक समर्थन नहीं होता, जो केवल धन, बल या अधिकार के द्वारा किसी असहाय या दुर्बल के लिए 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्त पर निर्धारित किया जाता है, उसकी उपासना—फिर चाहे उसका रूप कितना ही मोहक क्यों न हो—'कर्त्तव्य की ग़ुलामी' कहलाती है। कर्त्तव्य-पूजा या कर्त्तव्यनिष्ठा पुरुष के पुरुषत्व का विकास करती है, नारी के नारीत्व, माता के मातृत्व और पत्नी के पत्नीत्व को प्रस्फुटित करती है। वह मनुष्य को मनुष्यत्व से उठा कर देवत्व की श्रेणी में ले जाती है। कर्त्तव्य की पूजा करने में उत्साह होता है, आनन्द होता है, उससे मनुष्य का स्वास्थ्य बढ़ता है, मनोबल बढ़ता है। मगर इसके विपरीत कर्त्तव्य की ग़ुलामी इन सब गुणों को नष्ट कर मनुष्य को पशुत्व की ओर खींच ले जाती है। आज हम लोग ब्रिटिश साम्राज्य के क़ानून के विरुद्ध सत्याग्रह और असहयोग क्यों करते हैं? इसलिए कि इस क़ानून के पीछे किसी प्रकार का नैतिक समर्थन नहीं है, अतः इस क़ानून का पालन कर्त्तव्य की पूजा नहीं, प्रत्युत कर्त्तव्य की ग़ुलामी है। अगर हम आर्य-संस्कृति के इस सिद्धान्त पर कि "राजा ईश्वर का अंश है", अन्धे होकर इस क़ानून की उपासना करने लग जायँ, तो ज़रूर धीरे-धीरे हम पशुत्व की श्रेणी में चले जाएँगे।

भारतीय स्त्रियों की भी ठीक यही हालत हुई। उनके लिए निश्चित किए हुए विधानों को नैतिक समर्थन न रहने के कारण वे कर्त्तव्य-पूजा की जगह कर्त्तव्य की ग़ुलामी में पड़ गईं। जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी सारी मनोवृत्तियाँ जड़ हो गईं। वे एक मैशीन की तरह कर्त्तव्य के बोझे को ढोने लगीं। वे अपने अस्तित्व को भूल गईं—अपने स्वास्थ्य को भूल गईं—अपने अधिकारों को भूल गईं। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि ऊपर-ऊपर तो पातिव्रत्य और वैधव्य का यह ढकोसला चलता रहा, मगर नैतिक समर्थन न होने की वजह से भीतर ही भीतर गुप्त व्यभिचार और भ्रूण-हत्या का बाज़ार गर्म हो

उठा और इस देश का नारी-अङ्ग भीतर ही भीतर मसोसा जाकर एकदम जीवनहीन और जड़ हो गया। आज हमारे देश के नारी-जीवन की क्या हालत है? शिक्षा की दृष्टि से वे संसार की सभ्य जातियों में सब से पीछे हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से वे पाल में रक्खे हुए आम की तरह ज़र्द, अकाल-वृद्धा और तेजोहीन हैं। मानसिक दृष्टि से वे अत्यन्त दुर्बल और गिरी हुई मनोवृत्तियों की हैं। शील की दृष्टि से भी उनका उतना ही महत्व है, जितना जेल में बन्द एक क़ैदी के शील का होता है। रसिकता का सोता भी उनके अन्दर से सूख चुका है। हमारे भारतीय पुरुषों को आज सेविकाओं की, दासियों की, परिचारिकाओं की कमी नहीं है। मगर जिनके सहयोग से दाम्पत्य जीवन का पौधा फलता-फूलता है, जिनके सहवास से जीवन में आनन्द की धारा बह जाती है, जिनकी वायु से जीवन में सात्विकता, शान्ति और सुख का सञ्चार होता है तथा जिनकी एक हलकी मुस्कान स्वर्ग को लाकर हमारे सम्मुख उपस्थित कर देती है, उन प्रेममयी पत्नियों का एकदम अभाव है। हमारी नारियों में त्याग है, बलिदान है, सेवा-भाव है, मगर कर्तव्य की ग़ुलामी से वे ऐसी जकड़ी हुई हैं कि जिसकी वजह से उनमें आनन्द-रस की धारा एकदम सूख गई है। इसी आनन्द-रस की कमी से आज हमारा दाम्पत्य जीवन नष्ट हो गया है। हमारा सामाजिक जीवन कमज़ोर हो गया है। हमारा नारी-अङ्ग और उसके साथ ही पुरुष-अङ्ग भी अस्वस्थ हो गया है। और उसमें से अशान्ति, कलह, दुराचार और व्यभिचार की लपटें धू-धू करके निकल रही हैं।

हमारे युवकों को विवाह की वेदी पर से एक दासी अथवा एक सेविका, कामवासना को तृप्त करने की एक सामग्री या सन्तान उत्पन्न करने की एक मैशीन अवश्य मिल जाती है, परन्तु उनका हृदय जिस हृदय से प्रेम का प्रतिदान पाने के लिए तड़पता रहता है, जिनके मधुर सङ्ग से उनके जीवन में आनन्द, प्रेम और कवित्व का झरना बह सकता है, जिनके मधुर हास्य से उनके जीवन में उत्साह का प्रवाह और जिनके आँसू से उनके अन्तस्तल में सहानुभूति की धारा बह निकलती है, ऐसी प्रेममयी पत्नियाँ उनको दुर्लभ रहती हैं। ऐसी योग्य पत्नियों के अभाव से उनका जीवन रूक्ष, निराश और निरर्थक रहता है। कामवासना ही का सम्बन्ध रहने से तथा स्वास्थ्य और दूसरे जीवनी-शक्ति-प्रदायक मधुर सम्बन्धों के न रहने की वजह से उनका स्वास्थ्य भी भरी जवानी में नष्ट हो जाता है और साथ ही समाज में बेहद सन्तान-वृद्धि के कारण जन-संख्या-वृद्धि का कठिन प्रश्न भी उत्पन्न हो जाता है। परदे की प्रथा का अस्तित्व होने की वजह से जीवन के साधारण सरस अवसरों का लाभ उठाने का अवसर भी उन्हें प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार कर्त्तव्य की ग़ुलामी, विवाह-नीति की कमज़ोरी, परदा-प्रथा तथा अन्य दूसरे कारणों से हमारे यहाँ योग्य पत्नियों का प्रायः अभाव हो गया है और इस अभाव से हमारे देश का जीवन-स्रोत सूखता चला जा रहा है।

इस सारे कथन का सारभूत तत्व यह है कि अगर हमारे व्यवस्थापक, दाम्पत्य जीवन की व्यवस्था देते समय पुरुष और स्त्री की समानता का ध्यान रखते और पातिव्रत्य के साथ पत्नीव्रत की तथा वैधव्य के साथ विधुरत्व के समान कठोर और निष्पक्ष व्यवस्था देते, विवाह-नीति के समान सामाजिक नीति को पारलौकिक धर्म-नीति के बन्धन में न कसते और परदा-प्रथा के समान नारकीय प्रथा में उनके सारे जीवन को बुरी तरह से न जकड़ देते, तो उनकी व्यवस्था को बहुत कुछ नैतिक समर्थन भी प्राप्त होता और उस हालत में पुरुष तथा स्त्री-समाज को अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन में उत्साह और दिलचस्पी भी रहती, दोनों को एक-दूसरे की कठिनाइयों का ध्यान भी रहता तथा दोनों के सहयोग से ऐसी भूमि तैयार हो जाती, जिसमें दाम्पत्य जीवन का ख़ुशनुमा पौधा स्वाधीनता के साथ फलता-फूलता।

पाश्चात्य दाम्पत्य जीवन

पाश्चात्य देशों की हालत इसके बिलकुल विपरीत है। एक समय ऐसा था, जबकि वहाँ भी स्त्रियाँ बहुत हीन दृष्टि से देखी जाती थीं, मगर फ़्रान्स की राज्यक्रान्ति के पश्चात् वहाँ की स्त्रियों में भी जागृति की एक प्रबल लहर फैली। उन्होंने अपनी स्वाधीनता के लिए पूरे नैतिक साहस के साथ आन्दोलन उठाया तथा कुछ ही समय में उन्होंने अपने बहुत से अधिकारों को प्राप्त कर लिया। अब वहाँ की स्त्रियाँ भारतीय स्त्रियों की

तरह आजीवन कारागार में बन्द नहीं हैं। वे स्वाधीन हैं, स्वच्छन्द हैं और स्वस्थ हैं। वे मुक्त तितलियों की तरह नाच-कूद और आनन्द-विलास से वहाँ के सामाजिक जीवन को आनन्दमय बनाए हुए हैं। वे वहाँ के नाचघरों में, वहाँ के समुद्र-तटों पर तथा वहाँ के क्लबों और खेल-घरों में नाना प्रकार की मनोरञ्जनार्थ सामग्रियों से अपने तथा अपने प्रेमियों के जीवन में स्वास्थ्य और आनन्द की धारा बहाती रहती हैं। वहाँ के नारी-जीवन में स्वास्थ्य है, उत्साह है, जीवनी शक्ति है, मनोरञ्जन है, प्रेम का आदान-प्रदान करने की ताक़त है। मतलब यह कि दाम्पत्य जीवन को सरस और हरा-भरा बनाए रखने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें से बहुत से वहाँ की स्त्रियों ने प्राप्त कर लिए हैं।

मगर इतना सब कुछ होने पर भी, नारी-स्वाधीनता के इस आन्दोलन से वहाँ के नारी-जीवन में कुछ ऐसी मौलिक कमज़ोरियाँ उत्पन्न हो गई हैं, जो बहुत ही भयङ्कर हैं। हम स्वाधीनता सम्बन्धी किसी भी आन्दोलन के विरोधी नहीं। हमारा ख़याल है कि स्वाधीनता की भावनाएँ या स्वाधीनता का आन्दोलन मनुष्य की सत्प्रवृत्तियों का विकास करता है—उसकी इन्सानियत को जागृत करता है—उसको सारी मनुष्य-जाति से प्रेम करने को उत्साहित करता है। मगर इस आन्दोलन का रूप तभी तक अभिनन्दनीय रहता है, जब तक कि इसका ध्येय शुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति रहता है। इसके विपरीत ज्योंही यह अभिनन्दनीय आन्दोलन मनुष्य के अज्ञान से अधिकारों के आन्दोलन में बदल जाता है, त्योंही इसका रूप विकृत हो जाता है। क्योंकि स्वाधीनता के आन्दोलन में जहाँ मनुष्य की कर्तव्य-निष्ठा आन्दोलन के साथ रहती है, वहाँ अधिकारों के आन्दोलन में कर्तव्य और अधिकारों का कई स्थानों पर विरोध हो जाता है। स्वाधीनता के आन्दोलन से मनुष्य में प्रेम की शुद्ध भावनाओं का विकास होता है—वह अपने साथ सारी मनुष्य जाति को स्वाधीन देख कर प्रसन्न होता है, परन्तु अधिकारों के आन्दोलन से मनुष्य में प्रतिस्पर्धा की घृणामूलक भावनाओं का विकास होता है और वह दूसरे के अधिकारों की क़ब्र पर अपने अधिकारों की इमारत खड़ी करना चाहता है।

हाँ, तो हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि पश्चिम के नारी-जीवन में—अन्य कई गुणों के रहने पर भी—यह बहुत बड़ा दोष उत्पन्न हो गया है कि वहाँ की स्त्रियों में पुरुष-जाति के साथ, प्रेम की जगह प्रतिस्पर्धा की घृणामूलक भावनाएँ बहुत ज़ोर पकड़ रही हैं। वे क्या औद्योगिक अञ्चल में, क्या सामाजिक अञ्चल में और क्या राजकीय अञ्चल में—सभी स्थानों पर पुरुषों के साथ होड़ लगाने का प्रयत्न कर रही हैं। न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो यह कुछ अनुचित भी नहीं है। इतिहास के प्रारम्भ से लेकर अब तक पुरुष-जाति ने स्त्री-जाति पर जो भयङ्कर अत्याचार किए हैं, उनको देखते हुए स्त्री-जाति अगर इससे भी भयङ्कर प्रतिहिंसा की भावनाओं से काम ले, तो भी बुरा नहीं कहा जा सकता। मगर खेद तो इस बात का है कि इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा-मूलक भावनाओं से समाज के अन्तर्गत कोमल भावनाओं का संरचण होना कठिन हो रहा है। जिसकी वजह से वहाँ के समाज का दाम्पत्य जीवन ख़तरे में पड़ गया है। वहाँ का मातृत्व नष्ट हो रहा है—पत्नीत्व नष्ट हो रहा है, वहाँ का कौटुम्बिक जीवन (Family life) प्रायः समाप्त हो गया है। "गृह" नाम की आकर्षक वस्तु वहाँ से नेस्तनाबूद हुई जा रही है। इस प्रकार वहाँ का समाज "गृह" और "गृह-लक्ष्मी" नामक दोनों जीवन-प्रदायिनी वस्तुओं से वञ्चित हो चुका है।

दूसरी महत्वपूर्ण त्रुटि इससे यह उत्पन्न हुई है कि स्त्री के मुख-मण्डल पर तथा उसकी आँखों पर प्रकृति-प्रदत्त शील और लज्जा का जो एक मधुर और आकर्षक भाव झलकता रहता है और जो नारी-जीवन तथा नारी-सौन्दर्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए एक बहुमूल्य वस्तु है, वहाँ की स्त्रियाँ उसे खो चुकी हैं। नारी-स्वाधीनता के पूर्ण पक्षपाती होते हुए भी हम नारी को प्रकृति-प्रदत्त इस बहुमूल्य आभूषण से वञ्चित नहीं देखना चाहते। यह वस्तु नारी का गौरव है—नारी का सौन्दर्य है। इसको खोकर नारी-संसार अपने नारीत्व की रक्षा नहीं कर सकता—अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं कर सकता—अपनी स्वाभाविक मधुरिमा की रक्षा नहीं कर सकता। दाम्पत्य जीवन की रक्षा के लिए यह एक आवश्यक वस्तु है।

मतलब यह कि पश्चिम की स्त्रियाँ यद्यपि भारतीय स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वाधीन, अधिक स्वस्थ, अधिक आकर्षक और अधिक आनन्दमयी हैं, फिर भी वहाँ के दाम्पत्य जीवन में कई ऐसी मौलिक कमज़ोरियाँ हैं, जिनकी वजह से वह पूर्णतया अभिनन्दनीय नहीं कहा जा सकता।

ऊपर हम भारतीय तथा यूरोपीय दाम्पत्य जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाल चुके हैं। इतने विवेचन से हम सहज ही इस महत्वपूर्ण तथ्य पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार कर्त्तव्य की ग़ुलामी के वायु-मण्डल में दाम्पत्य जीवन का पौधा जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार कर्त्तव्य की उपेक्षा तथा प्रतिस्पर्धा की मरुभूमि में भी वह हरा-भरा नहीं रह सकता। जिस प्रकार पूर्व का दाम्पत्य जीवन मनुष्य-जाति के लिए अभीष्ट नहीं हो सकता, उसी प्रकार पश्चिम का दाम्पत्य जीवन भी उसके लिए शान्ति का कारण नहीं हो सकता। जब ये दोनों ही पद्धतियाँ अपूर्ण हैं, तो यह निश्चित है कि मनुष्य-समाज की भावी-संस्कृति के लिए इन दोनों पद्धतियों के बीच की, या इन दोनों पद्धतियों से बिलकुल स्वतन्त्र एक ऐसी पद्धति का आविष्कार होगा, जिसका स्वरूप इन दोनों से अधिक वैज्ञानिक, अधिक आनन्दपूर्ण और अधिक आकर्षक होगा। इसी पर हमको थोड़ा सा विचार करना है।

क़ुदरत ने पुरुष और स्त्री, समाज के इन दोनों अङ्गों की रचना इस ख़ूबी के साथ की है कि यदि विचार, दूरदर्शिता और न्याय के साथ काम लिया जाय तो इन दोनों के बीच न तो कभी प्रतिस्पर्धा की भावनाओं ही का अस्तित्व रह सकता है और न कभी मालिक और ग़ुलाम की निकृष्ट भावनाएँ ही इनके पवित्र और मधुर सम्बन्ध में पनप सकती हैं। प्रतिस्पर्धा की भावनाएँ समाज के अन्तर्गत उन लोगों में पैदा होती हैं, जो समान व्यवसायी हों, और मालिक और ग़ुलाम की भावनाएँ वहाँ उत्पन्न होती हैं, जहाँ एक अङ्ग कर्मशील और दूसरा अङ्ग अकर्मण्य हो। मगर विचारपूर्ण दृष्टि से—प्रकृति की बनावट को मद्देनज़र रख कर—यदि विचार किया जाय तो समाज के ये दोनों अङ्ग न तो समान व्यवसायी हैं और न इनमें कोई अङ्ग ऐसा अकर्मण्य ही है कि जिसकी वजह से मालिक और ग़ुलाम की दूषित मनोभावनाएँ उत्पन्न होना अनिवार्य हो।

प्रकृति ने इन दोनों अङ्गों की रचना में पूर्ण मौलिकता से काम लिया है और इसके साथ ही दोनों में ऐसी अपूर्णताएँ भी रख दी हैं कि जो एक दूसरे के सहयोग के बिना पूर्ण नहीं हो सकतीं। समाज में शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि उसमें विराट और कोमल मनोभावनाओं का समान रूप से योगक्षेम हो। अध्ययनपूर्ण निगाह से अवलोकन करने पर इस बात का पता लगता है कि पुरुष के अन्तर्गत विराट भावनाओं का योगक्षेम करने की और स्त्री के अन्तर्गत कोमल भावनाओं का योगक्षेम करने की विशेष शक्ति प्रकृति ने स्थापित की है। यह सच है कि कई विशेष-विशेष अवसरों पर स्त्रियों ने वीरत्व और विराट भावनाओं के योगक्षेम करने में तथा पुरुषों ने कोमल भावनाओं का प्रचार करने में इतिहास को भी चकित कर देने वाले कार्य किए हैं। मगर फिर भी यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि इस प्रकार के ये सब उदाहरण इस नियम के अपवाद-रूप हैं, और इस प्रकार के अपवादों से नियम की मौलिकता में कोई अन्तर नहीं आ सकता।

ऐसी स्थिति में अगर समाज के अन्तर्गत कोमल भावनाओं के रक्षण का उत्तरदायित्व स्त्री-जाति पर और विराट भावनाओं के रक्षण का उत्तरदायित्व पुरुष जाति पर रहे, तो न तो इनमें प्रतिस्पर्धा की भावनाओं का ही उदय हो सकता है और न मालिक और ग़ुलाम की भावनाएँ ही ऐसे वायु-मण्डल में पनप सकती हैं। जिस प्रकार राज्य के दो डिपार्टमेण्टों के अधिकारी भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व को वहन करते हुए भी प्रेम, समानता और मैत्री से रह सकते हैं, उनमें कभी ग़ुलामी और प्रतिस्पर्धा की भावनाओं का उदय नहीं हो सकता, उसी प्रकार समाज में स्त्री और पुरुष की स्थिति रह सकती है।

इस स्थान पर आकर एक बड़ा ही महत्व का प्रश्न उपस्थित होता है। वह यह कि कोमल भावना की भावमूलक कल्पना के फेर में पड़ कर अगर स्त्रियाँ औद्योगिक जगत् तथा फ़ैक्टरियों और कारख़ानों में जाना छोड़ दें, तो वे आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं हो सकतीं

और जब तक वे आर्थिक दृष्टि से पुरुषों के अधीन रहेंगी, तब तक स्वार्थी पुरुष उन्हें कभी सिर उठाने का मौक़ा न देंगे। ऐसी स्थिति में वे क्या करें ? कल-कारख़ानों में जाकर अपने स्वाधीन अस्तित्व की रक्षा करें अथवा कोमल भावनाओं की वेदी पर अपने अस्तित्व का बलिदान कर फिर उसी गुलामी की हालत में पड़ी रहें ?

इसमें कोई सन्देह नहीं और यह बात सोलहो आने सत्य है कि जब तक नारी जाति आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र न हो जायगी, तब तक अधिकार-प्रिय पुरुष जाति उनके साथ पूर्णतया न्याय नहीं कर सकती। अपनी स्वाधीनता और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, इस अर्थ-युग में प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य हो गया है कि वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों का मोहताज न रहे। और मौजूदा समाज का स्टैण्डर्ड ऐसा हो गया है कि बिना कल-कारख़ानों या फ़ैक्टरियों में प्रवेश किए आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने का दूसरा साधन ही नहीं है। मगर यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि समाज के वर्तमान स्टैण्डर्ड से मनुष्य बहुत तङ्ग आ गया है। इस स्टैण्डर्ड की वजह से समाज के अन्तर्गत जीवन-रस और मधुरता का सोता सूखता हुआ चला जा रहा है। प्रसिद्ध तत्ववेत्ता लेकी ने एक स्थान पर कहा है कि "यूरोप की स्त्रियों ने अपनी सभ्यता में चाहे जितनी उन्नति की हो, पर उनकी वह उन्नति हमेशा पुरुषोचित रही है। स्त्रियोचित गुणों का—जैसे प्रेम, विश्वास, लज्जा, दया, सहानुभूति आदि—पूर्ण विकास यहाँ की किसी सभ्यता के अन्तर्गत नहीं हुआ। अतः हमारे लिए वही समय सबसे ज़्यादा अभिनन्दनीय होगा, जब यहाँ की स्त्रियाँ स्त्रियोचित गुणों में पूर्ण विकास कर स्वाधीनता लाभ करेंगी। यूरोप को अब पौरुषीय सभ्यता की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। वह युद्ध, राजनैतिक घात-प्रतिघात और सङ्कीर्ण जातीयता से बहुत घबरा गया है। अब वह पूर्ण शान्ति प्राप्त करना चाहता है। वह शान्ति केवल स्त्रियोचित गुणों के विकास से ही प्राप्त हो सकती है।

आर्यमित्र

आगरा, १५ दिसम्बर, सन् १९३२

'चाँद'

हिन्दी का यह सुप्रसिद्ध मासिक पत्र गत १० वर्षों से बड़ी सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रहा है। यह लोक-प्रिय बन कर ख्याति भी अच्छी प्राप्त कर चुका है। पिछले नवम्बर मास से इसका ११वाँ वर्ष प्रारम्भ होता है। अब इसके सम्पादक हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री० मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव हैं। मुन्शी जी की सम्पादकता में दो अङ्क निकले हैं, दोनों ही प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय और आदरणीय हैं। नवम्बर और दिसम्बर के अङ्कों में कितने ही लेख बड़े महत्वपूर्ण और गम्भीर हैं। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ पढ़ कर हृदय हर्षित हो जाता है। 'चाँद' ने सम्भवतः अपने जीवन-काल से ही सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों पर कुठाराघात करने में कभी सङ्कोच नहीं किया। हिन्दू-हित-रक्षा के लिए भी वह सदैव सन्नद्ध रहा है। हिन्दू-समाज के सुन्दर शरीर को अनुदारता, कट्टरता और स्वार्थान्धता की ज़बरदस्त ज़ञ्जीरों के जकड़बन्दों से मुक्ति दिलाना 'चाँद' का मुख्य उद्देश्य है और होना चाहिए। वह अपने इस लक्ष्य पर अटल रह कर देश की बड़ी सेवा कर सकता है। मासिक, साप्ताहिक या दैनिक कैसा भी पत्र क्यों न हो, उसमें ऐसी कोई बात न आने देनी चाहिए, जिसके पढ़ने में पाठक-पाठिकाओं को किसी प्रकार का सङ्कोच हो। मासिक पत्रों को तो अपने इस कठिन कर्त्तव्य-पालन में विशेष रूप से सतर्क रहने की आवश्यकता है। हम समझते हैं, 'चाँद' इस दूषण से सदैव मुक्त रह कर अपने उद्देश्यानुसार निरन्तर समाज-सेवा करता रहेगा। हम 'चाँद'-सञ्चालक श्री० सहगल जी के प्रचुर प्रयत्न और अद्भुत अध्यवसाय की प्रशंसा करते हुए उन्हें उनकी सफलता पर बधाई देते हैं।

भविष्य में मानव-समाज का विकास पौरुषीय सभ्यता से नहीं, किन्तु स्त्रियोचित सभ्यता की उन्नति से होगा।" मतलब यह कि इन सब लक्षणों को देखने से पता चलता है कि समाज का मौजूदा स्टैण्डर्ड, जोकि प्रायः विराट भावनाओं का सञ्चालक है, बहुत शीघ्र बदलेगा। और नवीन स्टैण्डर्ड में कोमल भावनाओं के प्रचार को भी उतना ही महत्त्व दिया जावेगा, जितना इस समय विराट भावनाओं के परिचय को दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में विराट भावना के सञ्चालक पुरुष-समाज को आर्थिक दृष्टि से जितनी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, उतनी ही समाज में कोमल भावना की प्रचारक स्त्री-जाति को भी रहेंगी। दोनों की समान आवश्यकता मानी जावेगी। कोमल भावनाओं के प्रचार के लिए कौन-कौन से विभाग स्वतन्त्र रूप से रहेंगे तथा विराट भावनाओं के लिए कौन विभाग काम करेंगे, इसका विवेचन एक स्वतन्त्र लेख में किया जावेगा।

इस प्रकार जब दोनों के डिपार्टमेण्ट अलग-अलग स्थापित हो जाएँगे और दोनों अङ्ग आर्थिक दृष्टि से एक-दूसरे पर अवलम्बित न रहेंगे, तब उनमें न तो किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा ही रहेगी और न मालिक और गुलाम की भावनाओं का ही अस्तित्व रहेगा। उस हालत में न तो नारी को ही अपनी कोमल मनोभावनाओं को नष्ट कर कल-कारख़ानों में जाकर अपने जीवन को मरुभूमि की तरह रूक्ष बनाने का अवसर आवेगा, और न पुरुष ही उसके साथ किसी प्रकार की असमानता का व्यवहार करने को उत्साहित होगा। समाज के इस नवीन स्टैण्डर्ड में विवाह-नीति, आचार-नीति तथा दाम्पत्य नीति के धोरण ही बदल जावेंगे।

इसी अनुकूल परिस्थिति में पड़ कर दाम्पत्य जीवन का पौधा भी अपनी पूर्ण कलाओं के साथ हरा-भरा होकर फलने-फूलने लगेगा। उस स्थिति के अन्तर्गत स्त्रियाँ गृह में गृहलक्ष्मी की तरह, कर्मक्षेत्र में कर्मलक्ष्मी की तरह, रमणीक उद्यान और बन में बनलक्ष्मी की तरह, समुद्र-तट पर राजलक्ष्मी की तरह, नृत्य और विलास-भवन में विलासलक्ष्मी की तरह और रोग-शय्या के समीप आरोग्यलक्ष्मी की तरह, जीवन के प्रत्येक क्षण में आनन्द और उत्साह की धारा बहाती हुई दृष्टिगोचर होंगी। वे आदर्श माताएँ होंगी और उनके पुत्र लव, कुश और अभिमन्यु की तरह वीर, देशभक्त और आत्माभिमानी होंगे, वे आदर्श पत्नियाँ होंगी और उनके पति कृष्ण की तरह आनन्दमय, रसिक-शिरोमणि और गीता के समान दिव्य सन्देश-वाहक महापुरुष होंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि विषमतापूर्ण अनैसर्गिक सामाजिक वातावरण में दाम्पत्य जीवन का पौधा विकसित नहीं हो सकता। फिर वह विषमता चाहे ग़ुलामी की भावनाओं से उत्पन्न हुई हो, चाहे प्रतिस्पर्धा की भावनाओं से। अगर विषमता ग़ुलामीपूर्ण होगी तो वैधव्य, परदा, अनमेल विवाह और गुप्त व्यभिचार के भयङ्कर आघात इस पौधे की जड़ों को नष्ट करते रहेंगे। और अगर यह विषमता प्रतिस्पर्धापूर्ण होगी तो अनैसर्गिक तलाक़ तथा नीति-विरुद्ध वासना, विलास और उच्छृङ्खलता की ठोकरें इसको चूर्ण-विचूर्ण करती रहेंगी। इसलिए समाज के दाम्पत्य जीवन की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि समाज का वातावरण पूर्णतया समता की भावना से पूर्ण हो। उसमें स्त्री और पुरुष दोनों विभाग पूर्ण स्वतन्त्र रहते हुए भी सहयोग और प्रेम के साथ अपने वैवाहिक जीवन को सम्पन्न करें। दोनों अपने-अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में दक्ष रहें, तभी समाज में शान्ति और प्रेम का सोता बह सकता है।

देवी जी—तुम्हारा दावा है कि तुम स्त्रियों का पहनावा देख कर उनकी चाल-चलन के बारे में सारी बातें बतला सकते हो?

पति देवता—जी हाँ।

देवी जी—अच्छा तो मेरी सहेली कृष्णा का पहनावा तो तुम देख चुके हो, उसके बारे में तुम्हें क्या कहना है?

पति देवता—मुझे खेद है, उसके 'अर्द्ध-नग्न' रहने के कारण सबूत की इतनी कमी है कि उसके सम्बन्ध में मैं निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता।

[लन्दन-स्थित 'चाँद' के विशेष प्रतिनिधि द्वारा]

वर्तमान रूस की असली हालत का जानकार ही वहाँ की मज़ेदार स्थिति का अनुभव कर सकता है। वहाँ जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें देख कर आपको ऐसा प्रतीत होगा, मानों आप किसी बाढ़ में बहे जा रहे हों। आपकी अनेक असम्भव कल्पनाएँ यहाँ सत्य में परिणत होती दिखाई देंगी। करोड़ों नर-नारियों का उत्साह और उनकी श्रद्धा आपको विस्मय एवं प्रशंसा के सागर में बहा देगी। इस गण-तन्त्र में स्त्रियों की संख्या प्रायः आधी है। ये सब बुद्धि-मत्ता के साथ सोची हुई सभ्यता एवं नई मानव-संस्कृति का निर्माण करने के लिए कठिन परिश्रम कर रही हैं। मैंने तेज़ चक्र की रफ़्तार से घूमती इस ज़िन्दगी में सोवियट स्त्री को एक अद्भुत कार्य करते देखा है। वह अपने आपको एकदम परिवर्तित आर्थिक प्रणाली के अनुसार बना रही है और अपने विचारों को भी नवीन रूप में ढाल रही है। वह व्यक्तिगत मिलकियत या जायदाद पर स्थित बाप-दादों से पाई हुई सांसारिक संस्कृति एवं उससे संयुक्त अपने पुराने भावों से भया-नक युद्ध कर रही है। मैंने देखा कि क्रान्ति ने पुरुषों की बनिस्बत स्त्रियों पर अधिक प्रभाव डाला है। वहाँ केवल सरकार एवं गुणों तथा विचारों के क्रम, क़दर, परिमाण और तौल में ही परिवर्तन नहीं हुआ है; बल्कि इस मान-सिक उत्थान ने संसार को हिला दिया है।

नवीन रूस की औरतों से मिलते ही मुझे उनके जीवन पर क्रान्ति का बड़ा भारी प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। जहाज़ से उतरते ही पहले-पहल मेरे एक अमेरिकन साथी की परिचिता रमणी नींवा के किनारे खड़ी मिली। सिवा टूरिस्ट गाइडों के हम और किसी से परिचित न थे। इसलिए हमारी इस नई बान्धवी ने सुशीलता एवं शिष्टाचार के साथ हमें शहर दिखलाने का भार अपने ऊपर लिया। नगर की प्रधान सड़कों से गुज़रते हुए उसने मधुर किन्तु मर्म-भरे स्वर से कहा—"गृहयुद्ध, अकाल एवं तबाही के चिन्ह अभी तक हमारे इस शहर में मौजूद हैं। उस समय इन सब मकानों से आहें गूँजती थीं। सन्ध्या की निस्तब्धता में चीख़-पुकार सुनाई पड़ती थी।" उस लड़की की सुन्दर मधु के रङ्ग की भूरी आँखों में गृहयुद्ध एवं क्रान्ति के समय की पीड़ा चमक रही थी।

उसने उसी ढङ्ग से बिना स्वर को बदले ही कहा—"मैंने एक दफ़े एक औरत को दोनों हाथ फैलाए ज़मीन पर बैठे देखा। वह चुपचाप भीख माँग रही थी। मेरे पास उस वक़्त पैसे न थे। कुछ देर बाद मैं पैसे लेकर वापस लौटी। देखती क्या हूँ कि उसके हाथ उसी तरह उसी जगह फैले हुए हैं। मैं ज़रा और पास आई। वह सहायता से परे चली गई थी, शरीर शान्त एवं शीतल था। प्राण छूट गए थे!"

मैंने पूछा—"बहिन! क्या तुम इस शहर में सदा से रहती आई हो?" "नहीं, मैं उकरेन से यहाँ कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने आई थी। इतने ही में ग़दर के बादल टूट पड़े। तब मैंने भी सैनिक की वर्दी धारण की और दो वर्ष तक क्रान्ति के पक्ष में लड़ाई के मैदान में मैं डटी रही।" हम दोनों चुप थे। मैंने ज़रा ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा। उसका अण्डाकार चेहरा शान्त, आँखें सलज्ज एवं वस्त्र स्त्रियों के से साधारण थे। मानों मेरे विचारों को भाँप कर वह कुछ कह रही हो। "मैं दो बच्चों की माता हूँ—दो लड़कियों की। उन दिनों भी मेरे एक लड़की थी—तीन वर्ष तक मैं उसे देख भी न पाई। ऐसे वे दिन थे।" मानों वह मुझे उन दिनों की स्थिति को समझाने की कोशिश कर रही हो।

केवल स्त्रियाँ ही अपनी इस नवीन स्थिति से परि-चित नहीं। सोवियट रूस में पुरुषों ने भी इस सत्य

को हृदयङ्गम कर लिया है। एक छोटे शहर में हमने एक घोड़ागाड़ी भाड़े की। कोचवान ने एक रुपया माँगा। मैंने ज़रा उम्मीद के साथ कहा—"दोस्त! इतना टाटफोड़ करारा किराया क्यों वसूल करते हो?" उसने कहा—"घोड़े को भूख लगती है और घास के दाम देने होते हैं, करारे और टाटफोड़ की भली कही। मेरे पॉकेट में पैसों की खान नहीं, जो इसको पूरा करे।" रास्ते में हमारी ज़बान से रुबल का शब्द सुन कर उसने सोचा, शायद हम अब भी किराए की मँहगी के सवाल में ही मशगूल हैं। गुस्सा होते उसे देर न लगी और इस गुस्से में उसने घोड़े, घास और अपनी फटी-पुरानी पोशाक को गालियाँ देनी शुरू कीं। मैंने कहा—"भई, तुम अपना कोट अपनी बीबी से मरम्मत क्यों नहीं करवाते।" ज़रा आश्चर्य और क्रोध की तीखी नज़र से उसने मुझे देखा, घोड़े को दो चाबुक लगाए और कहा—"भगवान की दया बनी रहे। बीबी की बला से तो अभी बचा हूँ। यह रही-सही ख़ुशी भी न चली जाय।" बेचारे घोड़े की शामत आई थी, फिर कोड़े ने पीठ नापी—"कौन बेहूदा आजकल विवाह का उत्सुक है? औरत को सिखाना, समझाना तो अलग रहा, ज़रा भी तुमने इधर-उधर नज़र फिराई और तमाचा कान के नीचे। मैं इन परियों के फन्दे में फँसने वाला मूर्ख नहीं हूँ।"

आधुनिक स्त्रियों को भी इस फन्दे के ख़िलाफ़ अनेक शिकायतें हैं और हैं भी सचमुच मर्दों से ज़्यादा। हम रेलगाड़ी में 'कीअफ़' जा रहे थे। ट्रेन तेज़ रफ़्तार से जा रही थी। कमरे में धूप और गरमी थी। फ़र्श पर एक टोकरी पड़ी थी। मेरे डब्बे में दो औरतें थीं, जो जब-तब इस टोकरी का ढक्कन उतार एक टोमाटो निकाल एक दूसरी के ऊपर फेंक रही थीं, और खाती भी जा रही थीं। टोमाटो के इस तमाशे के साथ-साथ संसार की दशा, तालीम, बच्चों की पैदायश और शादी के प्रश्न भी हल हो रहे थे। एक लड़की क्रान्ति से पहिले दासी और अब कीअफ़ के एक इन्जीनियरिङ्ग कॉलेज की छात्रा थी। छात्रालय पुराने माईकेलोवस्की मठ में है। उसने मुझे वहाँ आने का और उनकी ज़िन्दगी देखने का निमन्त्रण दिया और कहा—"सच पूछो तो हर चीज़ अभी आदर्श नहीं है। क्रान्ति एक तरह की तरङ्ग या लहर थी। प्रारम्भ में हमने सोचा था कि निरक्षरता के भूमितल से एक छलाँग में हम ज्ञान के आसमान पर पहुँच जावेंगे। हम शिक्षा भी प्राप्त करेंगी, साथ-साथ बच्चे भी पैदा करेंगी और एक नई सभ्यता का निर्माण भी। दुनिया के सब दरवाज़े हम लोगों के लिए खुल गए थे। हर एक वस्तु सम्भव प्रतीत होती थी। परिणाम क्या निकला? प्रत्येक छात्री ने विवाह कर लिया और माता बनी। अब छात्रालय में इतना शोर-गुल मचा रहता है कि अध्ययन असम्भव है।" टोकरी फिर खुली और फिर टोमाटो उछलने लगे—"हाँ, निश्चय ही हमें अनुभव से वास्तविक उपदेश प्राप्त होते हैं। ओहो, कल्पना करो, बूढ़ी मौसियों के अगर ऐसे विचार होते। सरकार का कहना वाजिब है कि इच्छा है तो शादी करो, हमें कुछ एतराज़ नहीं; लेकिन शादी से पहिले अपने लिए एक कमरे का इन्तज़ाम कर लो। अगर तीन लड़कियाँ एक कमरे में रहती हों और उनमें से एक विवाह का नाता जोड़ बैठे, तो दम्पति के लिए कमरा ख़ाली कर बेचारी बाक़ी दोनों को किसी दूसरे के कमरे में शरण लेकर भीड़ बढ़ानी पड़े। कितनी कष्टदायक बात है। इन सब बच्चों के वास्ते बड़े हॉल के एक कोने में हम एक धात्रीशाला स्थापित कर रही हैं। रात को बारी-बारी से बच्चों की देख-भाल किया करेंगी, ताकि दूसरी लड़कियाँ उस समय पढ़ सकें।"

दुबली-पतली दूसरी नवयौवना ने स्वीकार किया—"यथार्थ में तज़वीज़ बड़ी अच्छी और अक़्लमन्दी की है। वक़्त आने पर सब काम ठीक ढङ्ग से किए जावेंगे। नवीन सरकार को नए अन्धविश्वास-रहित नागरिकों की आवश्यकता है। अतएव विवाह के लिए सभी को उत्साहित करना चाहिए।" क्राईमियावासिनी, यह बालिका एक तारतार स्कूल में रूसी भाषा की शिक्षिका थी। उसकी राय में अधिकतर बुरे विश्वास धर्मगत या जातिगत हैं। उनका इलाज, उसकी समझ में अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन है, क्योंकि इसके होने से नई सन्तान ज़्यादा स्वस्थ एवं अक़्लमन्द होगी और राष्ट्रों का सच्चा भ्रातृमण्डल तभी स्थापित हो सकेगा। इन अन्तर्जातीय एवं दूर-दूर के लोगों के परस्पर विवाह से जाति में मस्तिष्क एवं कल्पना-शक्ति का अद्भुत विकाश होता है, एवं संस्कृति की सतह बहुत ऊँची उठ जाती है।

लेनिनग्राड में मुझे ग्राम और नगर में एकता स्थापन करने के काम में बड़ी दिलचस्पी हुई। इस ध्येय के लिए

काम करने वाले एक कार्यालय में बुद्धिमती, सावधान एवं सुन्दरी मारुसिया के मुझे दर्शन हुए। अपने कार्य में दक्ष एवं निपुण, वह मनमोहक बाला मेरी समझ में यूरोप और अमेरिका की महिला कार्यकर्त्रियों को भी मात करती थी। वह बड़े एकाग्रचित्त से अपने सहयोगियों को टेलीफ़ोन द्वारा उपदेश दे रही थी कि शोक-ब्रिगेडर कौन से औज़ार गाँवों में ले जावें और कौन से नहीं, कौन सा साहित्य किसानों एवं उनके मज़दूरों में वितरित करें। वह मूर्खता और आलस्य से संग्राम करने वाले कार्यकर्ताओं को उत्साहित करती थी, सहायता एवं सलाह देती थी और उन शोकब्रिगेडरों का बड़ा हार्दिक स्वागत करती थी, जो विभिन्न देहाती ज़िलों से अपनी विजय बखानते वापस लौटते थे। अपनी ओर उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिए मुझे कुछ देर इन्तज़ार करनी पड़ी। मैंने एकाएक देखा, कितनी दुबली वह है। उसका सहयोगी उसके डेस्क पर आया, और सभा में जाने से पूर्व उससे कुछ खा लेने की प्रार्थना की। जवाब मिला—"देखो, एक कॉमरेड बाट जोह रहा है, मैं अब तक उससे एक शब्द भी न बोल पाई हूँ।" मुझे उसने अपने काम के बारे में कुछ बातें बतलाईं और कहा कि अगर ज़्यादा जानने की इच्छा हो तो मैं भी उस मीटिङ्ग में चलूँ। साथी के प्रस्ताव पर उसने मुझे अपनी भोजन-शाला दिखलानी स्वीकार की। कुछ देर वह कहीं ग़ायब हो गई। उसके दोनों सहयोगी, उसके स्वास्थ्य के विषय में आशङ्काएँ प्रकट करने लगे। इन सब कामगरों में परिवार का सा प्रेम-बन्धन प्रतीत होता था! मारुसिया लौट आई और अपना कोट पहिनते-पहिनते भारतीय मज़दूरों के बारे में वह मुझसे पूछने लगी। सीढ़ी उतरते-उतरते वह ज़रा मुस्कराई और बोली—"जवानी में मेरे स्वास्थ्य का यह बुरा हाल है। बुढ़ापे के तो विचार ही छोड़ दो।" मैंने कहा—"परन्तु बहिन, इधर भी ज़रा ध्यान दिया करो।" "लेकिन इसके लिए समय कहाँ है! अभी फ़सल के बोने का काम है। जब यह काम समाप्त हो जावेगा, तो मैं काकेशश के पहाड़ों पर स्वास्थ्यकर जल के सोतों में अपनी सेहत सुधारने जाऊँगी। लेकिन इस वक्त नहीं। फ़सल का बोना पहिले समाप्त हो।"

खाते-खाते क्रान्ति के प्रथम वर्ष में अपने पहिले प्रेम का उसने क़िस्सा शुरू किया। क्रान्ति की तरङ्गें उसे टिफलिसको बहा ले गईं। एक वर्ष तक उससे दूर वियोग की आग में वह जलती रही। रात-दिन उसी की धुन थी, नींद में उसी के सपने देखती थी। आख़िर एक दिन वह आया। एक वर्ष के बाद यह मिलन मुझे मृगभ्रम सा प्रतीत हुआ। हमारे जीवन की धाराएँ दूर, एक दूसरे से अलग नहीं जा रही थीं। और इतनी दूर यह प्रेम कैसे चले? प्रेम के विलीन हो जाने की कल्पना ने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे मैं जीवन भर उससे सम्बन्ध बनाए रक्खूँ और अपने हृदय को उजाड़ और सूना न होने दूँ?

"लेकिन मारुसिया, इन बातों में तो पुरानी गन्ध आती है, नवीन क्रान्तिकारी विचारों का तुममें तो लवलेश भी नहीं है।"

वह बहुत उत्तेजित हो गई। बोली—"नहीं, यहाँ मेरा मत विभिन्न है। मैं विश्वास करती हूँ कि क्रान्तिकारी साम्यवादी सोवियट नागरिक जीवन के हर पहलू को एक ही दृष्टि से देखता है। हम उसके ढाँचे को देखते हैं। लेनिन के विचारों को देखो।" कञ्चन की छड़ी सी वह बालिका एकाएक गम्भीर हो गई—"और हमारे वे ही नेता बड़े साबित हुए हैं, जिन्होंने अपने आपको विलासिता एवं मोह में बरबाद न होने दिया। मनुष्य-समाज को कुछ देने की योग्यता न रखने वाले नर-नारियों में ही काम-पिपासा सारे जीवन को व्याप्त किए रहती है। ओह! क्या मेरा यह प्रेम सुन्दर नहीं, बड़ी एवं साथ-साथ ही छोटी यह दुनिया कितनी आश्चर्यजनक है। दुनिया के दो कोनों को छोटा कर हम सम्मिलित होते हैं और मित्रता प्राप्त कर हम फिर जुदा हो जाते हैं। लेकिन दुनिया के ये अन्तर फिर निकम्मे हो जाते हैं। बन्धु, आज तुम मेरे मित्र हो। भारत में उन सबको मेरे हृदय का वह अनन्त प्रेम देना, जिन्हें सोवियट यूनियन से प्रेम है।"

सोवियट यूनियन के कुछ कभी न भूले जाने लायक़ अनुभव मुझे मशहूर एवं दुनिया भर में सबसे लम्बे-चौड़े इस "जायण्ट" फ़ार्म में हुए। मैं वहाँ, अब तक न जोती हुई बेजड़ भूमि को देखने गया, जहाँ घास और झाड़ियों के सिवाय कुछ न उगता था। मैशीनों द्वारा सञ्चालित इस नवीन सोवियट कृषि की पराकाष्ठा-रूप फ़ार्म को देखने की मुझे बड़ी इच्छा थी। भविष्य में संसार की

कृषि का द्योतक उन्नतिशील यह फ़ार्म हज़ारों स्त्री-पुरुषों से आबाद है। हर जगह औरतें। नए तरीक़ों का उपदेश देने वाली औरतें, ऑफ़िस में काम करने वाली औरतें, ट्रैक्टर चलाने वाली औरतें। एक दिन सन्ध्या समय सोवियट फ़िल्म कम्पनी के फ़ॉर्म-स्थित भवन के पास कुछ लड़कियों का दल बैठा था। सरसरी बातचीत में किसी मर्द के मुँह से निकल गया—"ट्रैक्टर चलाना औरतों की सेहत के लिए हितकर नहीं।" यह कहना था कि एक लम्बे-चौड़े सीने वाली साँवली औरत उछल पड़ी—"क्या? क्या कहा, ज़रा फिर तो सुनूँ? किस लिए हमने ये लड़ाइयाँ और युद्ध किए और आज आप ये फ़तवे निकालने चले हैं। ज़रा मेहरबानी करके मुझे कोई काम ऐसा बताइए तो सही जिसे स्त्री, पुरुष से अच्छा नहीं तो कम से कम उसी जैसा न कर सकती हो।" "शान्त, नताशा, शान्त।" "चुप रहो तुम, ज़रा इस मर्दुए से पूछो तो सही, हमने ख़ून आज इसी के लिए बहाया था क्या?"

नताशा ट्रैक्टर-चालिका थी। अपनी मैशीन को सब से दुरुस्त रखने के लिए उसे इनाम भी मिल चुका था। नताशा को विश्वास था कि मैशीनों की मदद से वह अकेली उन हज़ारों एकड़ों को जोत सकती है। उसके लिए क्रान्ति की विजय इसी में थी। इसी के लिए उसने लड़ाई की थी और रक्त बहाया था।

"जायन्ट" फ़ार्म में अनेक ऐसी ग्रामीण किशोरियाँ थीं, जिनको वापस जाने को कोई घर या परिवार न था। इनके न परम्परागत रीति-रस्म रहे ही थे और न उन्हें उनकी ज़रूरत ही महसूस होती थी। वहाँ थे बहुत से नौजवान और खुला मैदान। कुछ मज़दूर लड़कियों के साथ एक दिन मैं एक गोदाम के पास विश्राम लेने को बैठ गया। उन्होंने मुझसे कहा—"हम सब यहाँ साथ-साथ फ़ार्म में आई हैं।" और जब मैंने पूछा कि उनके माँ-बाप, भाई-बहिन आदि साथ हैं, तो उन्होंने अचरज-भरी निगाह मुझ पर डाली और गम्भीरता से कहा—"नहीं, हम यहाँ अकेली आई हैं और सब एकत्रित रहती हैं।"

"और"—मैंने मज़ाक़ के तौर पर कहा—"ज्योंही गरमी ख़तम हुई, तुम सब वधू बनीं।" "नहीं, धन्यवाद।"

"क्या इसके मानी यह हैं कि सोवियट स्त्रियाँ कुमारी साध्वियों की तरह से फिर मठों में रहें?"

"नहीं, मनुष्य दल बना कर चलते फिरते हैं। यही करना औरतों को उचित है। अपने दल बनावें और एक-दूसरे के सुख-दुःख की साथिनी होकर रहें।" उनमें से एक मेरी ओर मुड़ी और अपने भूरे रेशमी बालों में रूमाल बाँधती हुई बोली—"औरत को विवाह से क्या लाभ? पता नहीं कहाँ का पुरुष, और ज्योंही काम ख़तम हुआ, वह दुनिया के चारों कोनों को रवाना हुआ।" कन्धों को फटकारते हुए वह बोली—"और उस समय तक शायद तुम गर्भवती हो जाओ और पुरुष शायद शैतान की घुड़शाल में जोत दिया जावे। तब बताओ, तुम क्या करोगी?"

तब एक दूसरी ज़रा विचारपूर्वक बोली—"तब तुम्हारे ऊपर एक और नया काम आ पड़े। दुनिया भर में इस मर्द के पीछे-पीछे ख़ाक छानती फिरो, ताकि बच्चे के पालन-पोषण का ठीक-ठीक प्रबन्ध हो।" इस पर सब ठहाका मार कर हँस पड़ीं। मैं फ़ार्म में औरतों से वार्तालाप कर बड़ा ख़ुश होता था। कुछ बड़ी पक्की और कार्य-निपुण मज़दूरिनें थीं। कइयों में पुराने ग्रामीण विश्वास और रिवाज अभी तक वर्तमान थे। एक लड़की फ़ार्म के जीवन को इसलिए पसन्द करती थी कि घर पर उसे भूतों का डर था। दूसरी लड़की उसे समझाती कि क्रान्ति के ज़माने से भूतों का अन्त हो गया है। झूठी दन्तकथाओं में विश्वास न करो।

सोवियट रूस की अनेक अज्ञात वीराङ्गनाओं में से एकाध के चेहरे को ज़रा मैंने पेन्सिल की लकीरों से सुस्पष्ट करने की चेष्टा की है। रूसी औरतें, मध्य युग की ग़ुलामी से, बीच के सब नदी, पहाड़ों और जङ्गलों को एक छलाँग में लाँघ कर बिना क्रमशः विकास के एकदम साम्यवाद और उद्योगवाद में कूद पड़ी हैं। पन्द्रह वर्ष के इस छोटे से अर्से में, उन्हें ठहरने, अध्ययन करने, वस्तुओं की परख करने को बहुत कम वक़्त मिला है। उन्हें अपने विभिन्न एवं विस्तृत अनुभव से सब सबक़ सीखने पड़े हैं। वे एक ऐसी दुनिया में हैं, जो उनके माता-पिता को बिलकुल अज्ञात थी।

आजकल मनुष्यों के समान हैसियत रखते हुए रूसी औरतें हरएक काम में भाग लेती हैं। गत पाँच

वर्षों में कोई तीस लाख औरतें सरकारी औद्योगिक धन्धों में दाख़िल हुई हैं। वर्तमान साल में ३,२३,००० औरतें साम्यवादी पार्टी की मेम्बर, पन्द्रह लाख नवयुवतियाँ नवजवान साम्यवादी दल की सदस्य, तीन लाख औरतें सोवियटों (ग्राम या नगर-समितियों) या कार्यकारिणियों या नियन्त्रणकारिणी समितियों की सदस्य, पाँच लाख नई औरतें सरकारी विभागों में और चालीस लाख व्यापार-समितियों में प्रविष्ट होंगी। हज़ारों की तादाद में महिलाएँ डॉक्टर, इञ्जीनियर, कृषि-विशेषज्ञ होकर कॉलेजों और यूनीवर्सिटियों से निकलेंगी।

स्त्रियों की सांस्कृतिक एवं शारीरिक उन्नति के लिए सोविषट सरकार बड़ा ख़र्च कर रही है। केवल शिशु एवं माता की रक्षा के लिए गत तीन वर्षों में ५० करोड़ रूबल ख़र्च किए गए हैं। १९३१ में बच्चों के लिए, खेल-कूद के सामान तथा सुविधा में और किण्डर-गार्टनों में २० करोड़ रूबल ख़र्च किए गए हैं। बच्चों के लिए १४ लाख बिस्तरे और पलङ्ग एकीभूत फ़ार्मों की धात्रीशालाओं में रक्खे गए हैं। ५० लाख किसानों के शिशु धात्रीशालाओं, व्यायामशालाओं और खेल-कूद या आमोद-प्रमोद के क्लबों में भरती किए गए हैं।

इन सब उपायों ने सदियों की पुरानी जड़ता की पीठ तोड़ डाली है। पुराने धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक विचारों का विरोध बड़ा कष्टदायक एवं गड़बड़ पैदा करने वाला साबित हुआ है। सोवियट स्त्रियों की चिन्तनाशक्ति को बड़ा काम करना पड़ा है। इस अन्धकार में एकाएक उन्हें सोचने-समझने की शक्तियाँ प्राप्त करनी पड़ी हैं। अपने आपको नई, दिन-रात बदलती परिस्थिति के अनुसार बनाना पड़ा है। इस भयानक गति ने, जिससे उनकी दुनिया बदल रही है, उनकी विचार-धारा को तेज कर दिया है। वह पुरातन रीति-रिवाजों एवं बन्धनों के मोटे छिलके को फाड़ कर बाहर निकलने की सतत एवं सख़्त कोशिश कर रही हैं। और जीवन में कर्ता के महत्व को प्राप्त करना चाहती हैं, जो उन्हें इतिहास में पहले-पहल मिला है।

* * *

उद्गार

[श्री० रमाशङ्कर जैतली 'विश्व', बी० एस्-सी०]

भीगी पलकों के छोरों से,
किसी गूढ़ लिपि में अनजान।
अनिल-गर्भ में लिख न चुकी क्या,
निर्दय विधि की कथा महान ?

❀

जीवन की कोमल कोंपल पर,
निर्दयता-नख से सन्ताप।
विकट वेदना की प्रहेलिका,
खींच रहा बैठा चुपचाप॥

प्यासे किन्तु तरल नयनों की,
बुझ न सकेगी आकुल प्यास।
कब तक टूटी आशाओं का,
भाग्य उड़ाएगा उपहास ?

❀

लम्बे मटियाले केशों को,
उन्मादिन निशि फहराती।
पीड़ा की उस अठखेली में,
याद तुम्हारी आ जाती !

चलती बार भरे नयनों से,
हृदय-वेग को सहसा रोक—
प्रश्न किए जो कुछ थे तुमने,
तड़पा रहे हृदय में शोक॥

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

अमेरिकन कमीशन

अरबी देशों में सबसे भारी झगड़ा सीरिया में हुआ। इस देश में ईसाई और अरब दोनों बसे हुए हैं। ईसाइयों की रक्षा की दुहाई दिला कर और कई और राजनैतिक बहाने खड़े करके फ़्रान्स इस देश पर अपनी संरक्षकता स्थापित करना चाहता था। सीरिया की राष्ट्र-सभा इसका विरोध करती थी और पूर्ण स्वतन्त्रता माँगती थी। वहाँ के ईसाई निवासी फ़्रान्स का पक्ष लेते थे। बादशाद हुसैन का पुत्र फ़ैसल, जो इस शान्ति के समय में मौक़ा पाकर सारिया का स्वामी बन बैठा था, वह भी फ़्रान्स का विरोध तो करता था, लेकिन ठीक उसी प्रकार जैसे नरम दल के नेता किया करते हैं। इसलिए वास्तविक स्थिति की जाँच करने के लिए सन्धि-परिषद ने एक कमीशन बैठाया। लेकिन अङ्गरेज़ और फ़्रान्सीसियों ने इसमें अपने प्रतिनिधि नियत नहीं किए। केवल अमेरिका के दो प्रतिनिधियों का कमीशन सीरिया में जाँच करने के लिए पहुँचा।

सीरिया कॉङ्ग्रेस की माँगें

इस समय लेबनान और पलस्तीन फ़्रान्स तथा इङ्गलैण्ड के अधीन थे और शेष भाग पर फ़ैसल का आधिपत्य था। यहाँ उसने तुर्की निर्वाचन के नियम के अनुकूल एक राष्ट्रीय महासभा बनाई, जिसका अधिवेशन दमिस्क में हुआ। यह अधिवेशन पाँच मास तक होता रहा और जाँच-कमीशन को इसने जो बयान लिख कर दिया, उसमें लिखा था कि—"सीरिया के मुसलमान, यहूदी और ईसाई सब पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। हमारी सरकार का स्वरूप नियन्त्रित एक राज-शासन होगा और अमीर फ़ैसल हमारे बादशाह बनेंगे। हम लोग बलगेरियन, सर्बियन, यूनानी या रोमानियन लोगों से कम सभ्य नहीं हैं, इसलिए हम अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के उस निश्चय का विरोध करते हैं, जिसके अनुसार हमको अर्द्धोन्नत जाति ठहरा कर किसी उन्नत राष्ट्र की संरक्षकता के योग्य बतलाया गया है। यदि सन्धि-परिषद हमारी इस बात को मानने में आपत्ति करे, तो हम अमेरिका की संरक्षकता स्वीकार कर लेंगे, परन्तु शर्त यह है कि यह संरक्षकता नाम-मात्र की होनी चाहिए, हमको कुचलने का बहाना न होना चाहिए और बीस वर्ष बाद इसका अन्त हो जाना चाहिए। यदि अमेरिका इसको स्वीकार न कर सके तो इसी शर्त पर हम ग्रेट-ब्रिटेन की संरक्षकता को स्वीकार कर सकते हैं। हम इस बात को नहीं मानते कि फ़्रान्स का हमारे देश पर या इसके किसी भाग पर भी कोई अधिकार है। सीरिया के दक्षिण में पलस्तीन को यहूदियों का घर बनाने की जो योजना है, उसका हम घोर विरोध करते हैं। जो यहूदी हमारे देश में पहिले से बसे हुए हैं, उनके अधिकार वही हैं जो हमारे; परन्तु नई यहूदी बस्तियों को लाकर यहाँ बसाना, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। हम नहीं चाहते कि सीरिया को पलस्तीन, लेबनान आदि भागों में विभक्त कर दिया जावे। हम ईराक़ के लिए भी पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं।"

प्रजातन्त्र और उसका अन्त

१५ सितम्बर, सन् १९१९ को फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड में सन्धि हो गई, जिसके अनुसार सीरिया से अङ्गरेज़ी सेना हटा ली गई और सीरिया का समुद्र-तट फ़्रान्स के अधीन कर दिया गया। पलस्तीन भी सीरिया से अलग मान लिया गया। इस समय फ़ैसल यूरोप में भ्रमण कर रहा था। वापस आकर उसने यह मत प्रकट किया कि फ़्रान्स से कुछ समझौता कर लेना चाहिए और

पूर्ण स्वतन्त्रता का हठ न करना चाहिए। उसके इस दब्बूपन को देख कर सीरियावासी बहुत बिगड़े और राष्ट्रीय सभा ने उसको स्वतन्त्रता की घोषणा कर देने के लिए उकसाया। मार्च सन् १९२० में फ़ैसल ने बादशाह की उपाधि धारण कर ली। कॉङ्ग्रेस ने नया शासन-विधान तैयार किया, जिसके अनुसार इङ्गलैण्ड की सी सरकार स्थापित की गई। दमिश्क राजधानी बनाई गई। परन्तु इस नवीन प्रजातन्त्र की घोषणा ही होने पाई थी कि इसका अन्त हो गया। अप्रैल १९२० में सेनरेजो की सन्धि हुई, जिसमें विजयी मित्रों ने फ़्रान्स को सम्पूर्ण सीरिया की संरक्षकता दे दी। फ़ैसल इस संरक्षकता को स्वीकार करने के लिए तैयार था, परन्तु कॉङ्ग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। जब फ़्रान्स की सेना आगे बढ़ी और उसने दमिश्क पर क़ब्ज़ा कर लिया तो फ़ैसल भाग गया।

लेबनान के कुछ ईसाइयों के सिवाय फ़्रान्स की संरक्षकता सीरिया में कोई नहीं चाहता था। वहाँ स्वातन्त्र्य-प्राप्ति की अभिलाषा उमड़ रही थी। फिर भी अमेरिका या इङ्गलैण्ड की संरक्षकता स्थापित की जाती तो वहाँ असन्तोष नहीं फैलता।

महासमर के समय सीरिया फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड के आधिपत्य में था, पर फ़्रान्स की सभ्यता और संस्कृति का वहाँ अधिक प्रचार होता जाता था। यही कारण था कि फ़्रान्स उस पर दाँत लगाए हुआ था। ज्योंही महासमर बन्द हुआ, लोगों में स्वाधीनता की अभिलाषा उमड़ उठी। इस समय फ़्रान्स के बड़े-बड़े राजनैतिक महारथी सन्धि की गुत्थियों को सुलझाने में लगे हुए थे। सीरिया में जो स्वातन्त्र्यान्दोलन बढ़ता जाता था और नवीन अभिलाषाएँ तथा उमङ्गें पैदा होती जा रही थीं, इसका उनको कुछ भी ज्ञान नहीं था। सन् १९२० में भी वे समझते थे कि सीरिया की जनता वही है, जो १९१५ में थी। इसलिए स्वतन्त्रता के आन्दोलन को इने-गिने शिक्षित और महत्वाकांक्षी लोगों का कार्य समझ कर फ़्रान्स ने उनकी घोर उपेक्षा की और सीरिया में अनियन्त्रित शासन का दौरदौरा हो गया।

फ़्रान्स की नीति और अत्याचार

हम पहले ही बतला चुके हैं कि सीरिया में मुसलमान, ईसाई और यहूदी तीनों रहते हैं। ईसाई लोग स्वभावतः फ़्रान्स की ओर पहिले से ही झुकते थे और मुसलमान और यहूदियों में भी प्रायः धार्मिक झगड़े हो जाया करते थे। लेकिन राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ ये मतभेद शिथिल होते जाते थे और सीरिया के निवासी राष्ट्रीय उन्नति के लिए पारस्परिक एकता का महत्व समझने लगे थे। फ़्रान्स को इस स्थिति का न पता था और न इसको वह पसन्द करता। वास्तव में फ़्रान्स संरक्षकता के कर्तव्य को नहीं समझता था। वह संरक्षकता के बहाने अपने व्यापार की वृद्धि और अपने आर्थिक सङ्कट का निवारण करना चाहता था। इसलिए जहाँ तक हो सके वह सीरिया का रक्त शोषण करना चाहता था। संरक्षता प्राप्त होते ही फ़्रान्स ने अपने प्रभुत्व को चिरस्थायी करने के लिए सीरिया-निवासियों के धार्मिक झगड़ों को बढ़ाना आरम्भ किया। उनके झगड़ों को वह अपना बल समझता था। इसलिए कभी ईसाइयों का पक्ष लेता था और कभी यहूदियों का। कभी एक जाति को अपनी ओर फोड़ने का प्रयत्न करता था और कभी दूसरी को। देश भर की प्रधान भाषा अरबी थी। ईसाई और यहूदियों में फ़्रेञ्च का प्रचार था, परन्तु इन लोगों की संख्या अधिक नहीं थी। इस बात की चिन्ता न करके फ़्रान्स ने फ़्रेञ्च को सीरिया की सरकारी भाषा बनाई। फ़्रान्स के वे काग़ज़ी नोट, जिनका मूल्य घटता जाता था, सीरिया में पूरी क़ीमत पर तलवार के ज़ोर से चलाए गए। अपने देश के व्यवसाय और वाणिज्य को सहायता देने के लिए सीरिया के व्यवसाय और वाणिज्य का ख़ून किया गया। उच्च पदों पर फ़्रान्सीसियों को भर दिया और योग्य सीरिया-निवासियों के अधिकारों पर कोई ध्यान नहीं दिया। शासन-सुधार की तो फिर चर्चा ही क्या थी। इसको फ़्रान्स संरक्षकता के नाम से पुकारता था।

जाग्रत सीरिया-निवासी इन अत्याचारों को कहाँ तक चुपचाप सहते। इस प्रकार के शासन के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ। इसमें मुसलमान तो थे ही, परन्तु वे ईसाई, जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही फ़्रान्स की संरक्षकता का स्वागत किया था, वे भी सम्मिलित थे। लेबनान के ईसाइयों ने एक सभा करके यह प्रस्ताव पास किया कि फ़्रान्स के क्रूरतापूर्वक सैनिक शासन से तुर्की का शासन अच्छा था। इस समय राष्ट्रीय जीवन को छिन्न-भिन्न

करने के लिए फ़्रान्स ने सीरिया को कई भागों में विभक्त कर दिया था और प्रत्येक भाग का शासन जुदे-जुदे ढङ्ग से किया जाता था। लेबनान के ईसाइयों ने इसका विरोध किया और कम से कम लेबनान के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की भारी आवश्यकता बतलाई।

इन सब कारणों से सीरिया में सन् १९२५ में भारी राष्ट्रीय बलवा हुआ। लेकिन इसका तात्कालिक कारण और ही था। सन् १९२१ में यह तय पा चुका था कि जबल ऊदद्रूज (एक नगर) का शासक हमेशा द्रूज ही हुआ करेगा और हर चौथे वर्ष उसका चुनाव होगा। प्रथम शासक इस निश्चय के अनुकूल सीरियन ही निर्वाचित हुआ था। लेकिन सन् १९२५ में जब उसका देहावसान हो गया, तो उसके स्थान पर एक फ़्रान्सीसी नियत कर दिया गया। लोगों ने इसका विरोध किया और हाई-कमिश्नर के पास एक डेपूटेशन भेजना निश्चित किया। पर हाई-कमिश्नर ने एक न मानी और डेपूटेशन के सदस्यों को गिरफ़्तारी की धमकी दी गई। बस फिर क्या था, असन्तोष की आग भड़क उठी। होरान में द्रूज लोगों ने बलवा कर दिया और सुलतानपाशा अल-अत्राशी ने उनका नेतृत्व ग्रहण किया।

द्रूज-युद्ध और उसका राष्ट्रीय स्वरूप

द्रूज लोग सीरिया में एक विचित्र जाति हैं। इनके रीति-रिवाज अन्य मुसलमानों से मिलते-जुलते नहीं हैं। ये बड़े स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। तुर्की के शासन-काल में भी ये लोग स्थानीय-स्थानीय स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। उस समय ये लोग ईसाई और मुसलमान दोनों से पृथक् रहते थे। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से ये लोग राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझने लगे थे। इसलिए इस समय इनके बलवे ने राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया। सुलतानपाशा और उसके भाई के नेतृत्व में जिधर द्रूज लोग जाते थे, उधर ही जनता उनका स्वागत करती थी और प्रत्येक प्रकार की सहायता देती थी। इनकी संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी और अन्य लोग भी इनमें सम्मिलित होने लगे। फ़्रान्स वालों ने इसको पहिले तो साधारण स्थानीय उत्पात समझा, परन्तु दो-तीन मास में ही उनको अनुभव हो गया कि यह देशव्यापी है। फ़्रेञ्च-सरकार दुनिया को तो यह बतलाती रही कि यह राष्ट्रीय बलवा नहीं है, बल्कि कुछ लुटेरों का उत्पात मात्र है। परन्तु यह कहाँ तक छिपा रहता। फ़्रान्स को भी शीघ्र ही विदित हो गया कि जनता के क्रोध का भूकम्प फट पड़ा है और संसार भी समझ गया कि वास्तव में क्या मामला है।

द्रूज-विजय

द्रूज-सेना ने लेबनान पर चढ़ाई कर दी। यहाँ फ़्रान्सीसियों का बड़ा ज़ोर था और ईसाई प्रजा उनका साथ देती थी। उत्पातियों का सामना करने के लिए फ़्रेञ्च-सरकार ने लेबनान के ईसाइयों को सशस्त्र कर दिया। दोनों तरफ़ से ख़ूब युद्ध ठन गया। लगभग ६ मास के अन्दर ही लेबनान के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण सीरिया पर राष्ट्रीय दल का आधिपत्य हो गया। बड़े-बड़े नगरों में भी फ़्रेञ्च शक्ति डाँवाडोल होने लगी। नवम्बर १९२५ में दमिश्क पर भी राष्ट्रीय दल ने क़ब्ज़ा कर लिया और तीन दिन तक उनके हाथ में रहा। फ़्रेञ्च-सरकार ने नगर पर गोलों की घोर वर्षा की। सैकड़ों स्त्री-पुरुष और बच्चे साम्राज्यवादी स्वार्थ की भेंट हो गए। कितने ही मकान धराशायी हो गए। लाखों की क्षति हुई। फ़्रेञ्च-सरकार ने इस समय ईसाई जनता पर भी कोई विशेष दया नहीं दिखाई। अनेक ईसाई परिवारों को इस सैनिक प्रलय के समय मुसलमानों ने शरण दी। दमिश्क फ़्रान्स के हाथ में आ गया, परन्तु राष्ट्रीय युद्ध समाप्त नहीं हुआ। पहिले केवल द्रूज लोगों की लड़ाई थी, अब सम्पूर्ण सीरिया इसमें सम्मिलित हो गया। सैनिकों की संख्या बढ़ने लगी और राष्ट्रीय सेना की सहायता करने के लिए एक कोष की स्थापना की गई, जिसमें देशवासियों ने विपुल धन दिया।

पराजय

फ़्रेञ्च-सरकार अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए सीरिया की स्वतन्त्रता का दमन करने पर तुली हुई थी। संरक्षकता का अभिप्राय यही था कि यथाशक्य अधिक से अधिक लाभ उठाया जावे। इसलिए फ़्रान्स ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति सीरिया का दमन करने में लगा दी। कहाँ फ़्रान्स जैसे समृद्ध राज्य की सैनिक शक्ति और कहाँ सीरिया का परिमित बल। फिर भी दो साल से अधिक यह स्वातन्त्र्य-संग्राम जारी रहा। आख़िर सीरिया का परिमित धन, जन, बल और फ़्रेञ्च-सरकार की विशाल

सैनिक शक्ति तथा कूटनीति और अङ्गरेज़-सरकार के सहयोग के कारण राष्ट्रीय संग्राम शिथिल पड़ने लगा और .फ्रान्स की विजय होने लगी। राष्ट्रीय कोष क्षीण हो गया। सैनिक नेता सुलतानपाशा अलअत्राशी का मार्च सन् १९२७ में देहान्त हो गया। और स्वातन्त्र्य-प्रेमी सीरिया वाले अपने प्यारे देश को छोड़ कर अरबिस्तान, पलस्तीन और मिश्र आदि देशों में जाकर बसने लगे।

प्रथम सुधार-योजना और उसकी विफलता

सीरिया में शान्ति स्थापित करने के लिए .फ्रेञ्च-सरकार ने यह सुधार-योजना की कि उसके सब प्रदेशों को एक में मिला दिया जावे और सारे देश पर एक बादशाह नियत किया जावे। .फ्रेञ्च-सरकार चाहती थी कि यह पद मिश्र के शाही-परिवार के किसी पुरुष को दिया जावे। साथ ही यह भी प्रस्ताव था कि शनैः-शनैः .फ्रेञ्च-सेना सीरिया से हटा ली जावेगी। वास्तव में यह योजना .फ्रेञ्च-शक्ति को और भी प्रबल और चिर-स्थायिनी बनाने की युक्ति थी। जनता को कोई अधिकार थे नहीं। बादशाह अनियन्त्रित शासक होता और वह .फ्रेञ्च-सरकार की कृपा के कारण ही राज्यसिंहासन पर बैठता। इसलिए सदा उसकी अँगुलियों पर नाचता। इसलिए सीरिया के लोगों ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया। सैनिक बलवा तो प्रायः शान्त हो गया था, लेकिन फिर भी देश में शान्ति की स्थापना नहीं हुई। सीरिया के राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी विपद्-कथा राष्ट्र-सङ्घ के सामने रक्खी, परन्तु .फ्रेञ्च-सरकार के आक्षेप करने पर उसकी कुछ सुनवाई नहीं हुई। राष्ट्र-सङ्घ के संरक्षक कमीशन ने .फ्रेञ्च-सरकार के पास सीरिया के सम्बन्ध में एक प्रश्नावली भेजी, पर उसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया गया।

प्रतिनिधि-सभा की स्थापना

जब देखा कि आन्दोलन दबता नहीं है, तो .फ्रेञ्च सरकार ने सैनिक बल के अतिरिक्त अन्य साधनों का उपयोग करना भी आरम्भ किया। ट्रान्स जोर्डन और पलस्तीन की सरकारों से निवेदन किया गया कि जो लोग सीरिया से भाग कर उनके यहाँ जा बसे हैं, उनको वापस किया जावे। इन स्थलों पर अङ्गरेज़ों की संरक्षकता है। उन्होंने सहर्ष सहयोग किया और सीरिया-निवासियों के विरोध या अन्य आन्दोलन को दबाने के लिए .फ्रौजी क़ानून जारी कर दिया। देश-देशान्तरों में यह ख़बर फैलाने में भी बड़ा यत्न किया गया कि सीरिया में बलवा करने वाले लोगों का उत्पात दब गया है और शान्ति स्थापित हो गई है। यह सब कुछ करने के बाद, जुलाई सन् १९२८ में नवीन शासन-व्यवस्था की घोषणा की गई। इसके अनुकूल जनता द्वारा निर्वाचित एक प्रतिनिधि-सभा की स्थापना हुई और उसका प्रधान भी एक सीरियन ही बनाया गया। यह सब व्यवस्था अस्थायी थी। .फ्रेञ्च-सरकार इस प्रतिनिधि-सभा से भविष्य के लिए सन्धि करना चाहती थी। उसका ख़याल था कि दमिस्क की गोलेबारी के दिनों की स्मृतियाँ अब भी लोगों को त्रस्त करती होंगी और .फ्रेञ्च सेना की करतूतों से लोग भयभीत होंगे। इसलिए यह प्रतिनिधि-सभा जैसे हाई-कमिश्नर सिखाएगा वैसे कार्य करेगी और साधारण शासन-सुधारों से सन्तुष्ट हो जायगी। जनता को अपनी ओर खींचने के लिए राजनीतिक .कैदी भी सब छोड़ दिए गए और जो लोग दूसरे देशों में जा बसे थे, उनको वापस आने के लिए और अपने देश में बसने के लिए आर्थिक सहायता भी दी गई।

इस सभा में ६९ निर्वाचित प्रतिनिधि थे और इसका प्रधान हशीमबे अताशी था। यह तुर्की राज्य में उच्चाधिकारी रह चुका था और उसके राष्ट्रीय कार्यों के कारण .फ्रेञ्च-सरकार ने उसको एक बार देश से निर्वासित कर दिया था। इस अस्थायी और नामधारी सरकार का मुखिया शेख़ ताजुद्दीन था, जो .फ्रेञ्च-सरकार का बड़ा कृतज्ञ था। प्रतिनिधि-सभा के सब सदस्य राष्ट्रीय विचार वाले थे, परन्तु .फ्रेञ्च-सरकार को ताजुद्दीन की सहायता का पूरा विश्वास था और उसका अनुमान था कि सैनिक पराजय के बाद सीरिया को स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने का साहस न हो सकेगा। प्रतिनिधि-सभा की माँगें बिलकुल हलकी होंगी। जैसे भारतीय व्यवस्थापिका सभा में वॉयसराय भाषण दिया करता है, उसी प्रकार .फ्रेञ्च हाई-कमिश्नर ने इस सभा के प्रथम अधिवेशन में भाषण दिया और ताजुद्दीन ने जनता की ओर से धन्यवाद दिया। हाई-कमिश्नर ने समझा होगा कि बलवाई सीरिया के होश ठिकाने आ गए।

(क्रमशः)

कुमारी हेलेन आलवरेस—आप एक सिंहली महिला हैं जिन्होंने सर्व-प्रथम सिंहल के मन्दिर-सत्याग्रह में प्रमुख भाग लिया था।
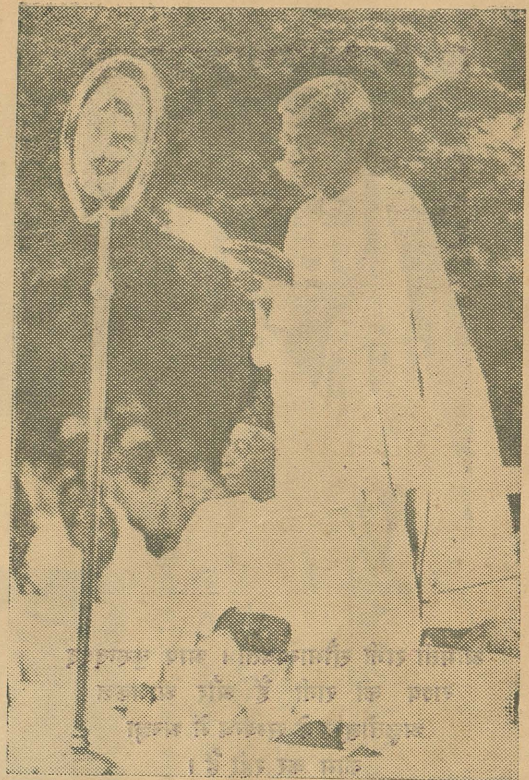
त्यागमूर्ति श्री० केलप्पन का बम्बई के अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में एक सभा में व्याख्यान देने का एक दृश्य।
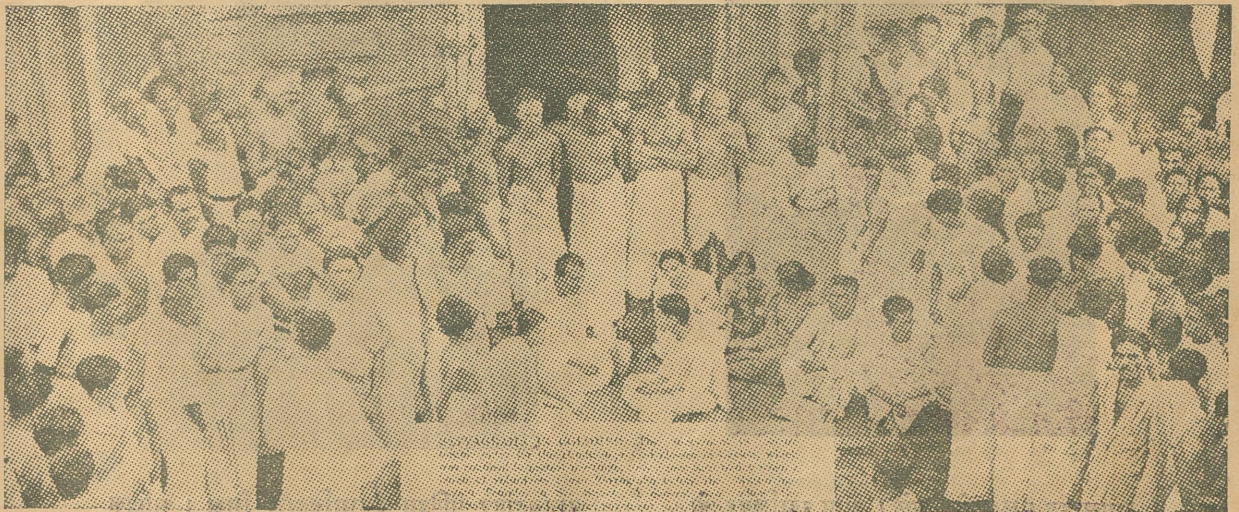
भारतवर्ष की भाँति सिंहलद्वीप (सिलोन) में भी अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन जारी है। इस चित्र में वहाँ के एक विख्यात मन्दिर-सत्याग्रह का एक दृश्य दिखाया गया है, जिसमें सत्याग्रही स्त्री-पुरुष मन्दिर में प्रवेश करना चाहते हैं और पुजारी लोग उन्हें रोक रहे हैं।
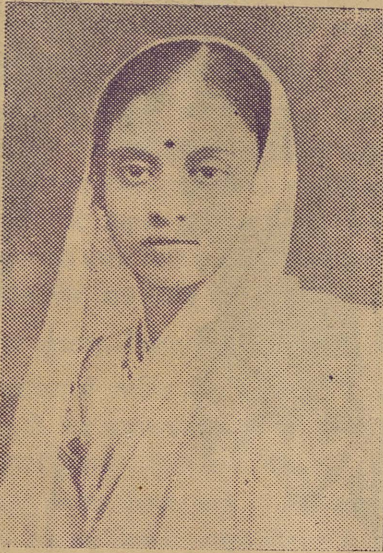
श्रीमती रानी सौभाग्यवती। आप कुरुन्दवद राज्य की रानी हैं और आजकल अछूतोद्धार के सम्बन्ध में अच्छा काम कर रही हैं।

श्रीमती नीला नागिनी देवी। आप एक अमेरिकन महिला हैं, परन्तु कुछ दिनों से हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया है और अछूतोद्धार के सम्बन्ध में अच्छा कार्य कर रही हैं।
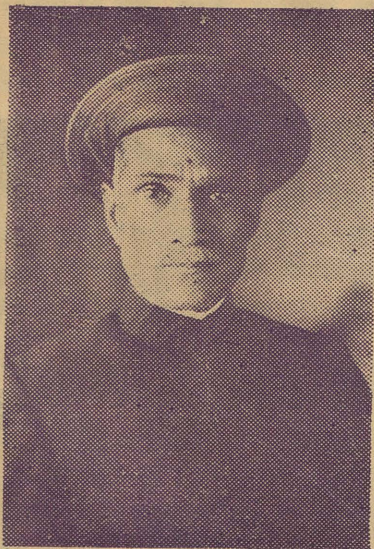
रायसाहब एल० बी० मुले। आप ग्वालियर के गत हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे।

रायबहादुर पण्डित श्यामबिहारी मिश्र। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वर्तमान वर्ष के सभापति।

इन्हें सुयोग प्राप्त हो तो ये क्या नहीं कर सकतीं ?
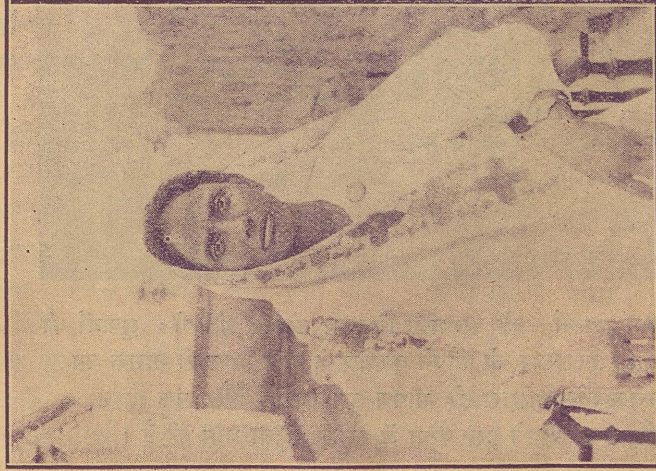
श्रीमती रामतनुक देवी

आप कृष्णपुर (मुज़फ़्फ़रपुर) के एक उच्च-कुल की महिला हैं। कई लोकोपकारिणी संस्थाओं के सम्पर्क के साथ ही आप सीतामढ़ी-म्युनिसिपैलिटी की शिक्षा-समिति की सभानेत्री भी रह चुकी हैं।

कुमारी शिरीन दलाल, जो कि बम्बई नगर के म्युनिसिपल गुजराती स्कूलों की सुपरिण्टेण्डेण्ट नियुक्त हुई हैं।

कुमारी भीखेजी पालमकोट—आप पहली भारतीय महिला हैं, जो कि लण्डन के ट्रीनिटी सङ्गीत महाविद्यालय की आजन्म सदस्या हैं। पचास अङ्गरेज़ महिलाओं में आप अकेली भारतीय सङ्गीत-कला-विदुषी हैं।

वीरबाला श्रीमती विभा मुकर्जी—जो अम्बाला-निवासी डॉक्टर बी० के० मुकर्जी की धर्मपत्नी हैं। गत १२ दिसम्बर को आपने कुरुक्षेत्र के पास पिण्ढारी नामक वन में बन्दूक के अचूक निशाने द्वारा दो भीषण वन-वाराहों और एक हिरन का शिकार किया। आपने इस कला में अच्छी पटुता प्राप्त की है।
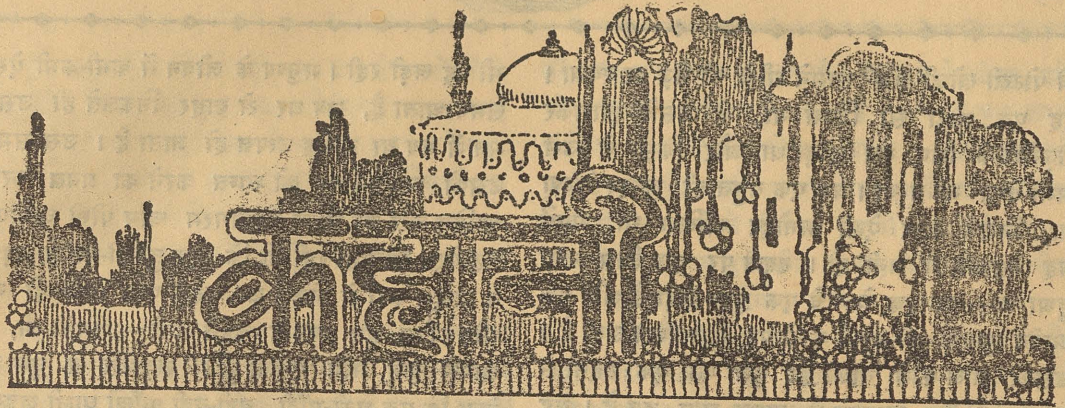
चाय का एक प्याला

[श्री० जीवानन्द वात्सायन]

रोज़मेरी फ़ेल कोई सुन्दरी न थी और न उसे कोई सुन्दरी कह सकता था। परन्तु यदि उसके शरीर की गठन देखी जाय तो—पर ऐसा करने की आवश्यकता ही क्या है? वह युवती थी, अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित और नवीन साहित्य आदि से पूर्ण रूप से परिचित थी। उसकी बुद्धि तीव्र थी। उसकी दी हुई पार्टियों में प्रभावशाली पुरुषों और ललित कलाविदों का एक अद्भुत समावेश रहता था। ये कलाविद् उसी के चुने हुए विचित्र प्राणी होते थे, जिनमें कुछ तो सचमुच ही भयानक, परन्तु कुछ भले और मनोरञ्जक भी थे।

रोज़मेरी का विवाह हुए दो वर्ष हो चुके थे। उसके एक अति सुन्दर बालक था, जिसका नाम, पीटर नहीं, माइकेल था। उसका पति तो मानों उसकी पूजा करता था। वह धनी था। केवल सामान्य रीति से ही नहीं, किन्तु यथार्थ में धनी था। यदि रोज़मेरी की इच्छा कुछ चीज़ें मोल लेने की होती, तो जैसे हम लोग अनारकली जाते हैं, वैसे वह पेरिस चली जाती। उसे यदि फूल लेने होते तो उसकी कार रीजेण्ट स्ट्रीट की उस बड़ी दुकान के आगे खड़ी हो जाती और वह चकित नेत्रों से चारों ओर देखती हुई कहती—"मुझे वह चाहिए, और वह, और वह। उन फूलों के चार गुच्छे और गुलाबों का वह फूलदान। हाँ, जितने गुलाब हैं, सब। नहीं, मुझे 'लिलाक' नहीं चाहिए, मुझे उससे घृणा है। उनकी शक्ल ही भद्दी है।" दुकानदार लिलाक को उठा कर परे रख देता, मानों यह बिलकुल ठीक ही हो। "मुझे वे छोटे-छोटे ट्यूलिप दो, वह लाल और सफ़ेद।" और इसके बाद उसकी कार तक एक लड़की सफ़ेद काग़ज़ में लिपटा हुआ एक बड़ा बण्डल लिए जाती, जो कपड़ों में लिपटा हुआ एक बच्चा सा मालूम होता था।

जाड़े की ऋतु में एक दिन वह कर्ज़न स्ट्रीट में एक कबाड़िए की दुकान से कुछ मोल ले रही थी। यह दुकान उसको बहुत पसन्द थी। इसका एक कारण यह था कि अक्सर इस दुकान में और कोई न होता था और दुकानदार भी बड़े प्रेम-भाव से उसकी आज्ञा का पालन करता था। जब कभी वह उसकी दुकान पर जाती तो उस दुकानदार का चेहरा खिल उठता। वह हाथ बाँध कर खड़ा हो जाता। कृतज्ञता के कारण उससे ठीक बोला भी न जाता। यह सब ख़ुशामद ही तो थी, परन्तु फिर भी—

वह कहता—"आप जानती हैं, मुझे अपनी चीज़ों से प्रेम है। वे भले ही न बिकें, किन्तु मैं उन्हें ऐसे मनुष्य को कभी न दूँ, जो उनकी क़द्र नहीं जानता, जिसमें वह दुर्लभ विवेचन-शक्ति नहीं है और × × ×" दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए उसने एक छोटी सी नीली मख़मल

की पोटली खोली और सामने शीशे की मेज़ पर रक्खा। यह एक छोटा सा डिब्बा था, जो उसने ख़ासकर रोज़मेरी के लिए रख छोड़ा था और किसी ने उसे अभी देखा भी न था। यह एक बहुत ही सुन्दर डिब्बा था, जिसके ऊपर ऐसी मनोहर पॉलिश थी, मानों वह मक्खन की बनी हो। ढक्कन पर एक चित्र बना हुआ था—एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष खड़ा है और एक अतीव सुन्दरी स्त्री उसके कन्धे पर सिर रक्खे खड़ी है। उसकी लाल फीते वाली हैट वृक्ष की एक टहनी से लटक रही है। आकाश में बादल छाए हुए हैं। यह सब मनोहर रङ्गों में चित्रित था। रोज़मेरी ने दास्ताना उतारा और डिब्बे को हाथ में लेकर देखने लगी। उसे वह बहुत पसन्द आया। वास्तव में वह एक सुन्दर वस्तु थी और वह उसे अवश्य लेगी। डिब्बे को इधर-उधर घुमाते-फिराते समय उससे यह देखते ही बना कि उस मख़मल से उसके हाथों की शोभा कितनी बढ़ गई है। सम्भवतः दुकानदार ने भी ऐसा ही सोचा हो। अपनी रक्तहीन अँगुलियों से एक पेन्सिल उठा कर उसने कहा—"ज़रा आप क़लम की बारीकी तो देखिए, क्या सुन्दर कपड़े बनाए हैं।" रोज़मेरी भी मन में उसी को सराह रही थी। परन्तु इसका मूल्य क्या है? दुकानदार ने क्षण भर ठहर कर कहा—"तीस पौण्ड।"

"तीस पौण्ड?" परन्तु रोज़मेरी ने अपने आन्तरिक भाव प्रकट नहीं होने दिए। उसने डिब्बा मेज़ पर रख दिया और दस्ताना पहन लिया। उसने फिर कहा—"अच्छा, इसको मेरे लिए रख छोड़ो। मैं × × ×" परन्तु दुकानदार ने पहिले ही झुक कर अभिवादन कर दिया। मानों वह इससे अधिक कुछ नहीं चाहता हो। हाँ, वह उसे निस्सन्देह रोज़मेरी के लिए रख छोड़ेगा।

वह बाहर निकल आई। दुकान का किवाड़ बन्द हो गया। बाहर वर्षा हो रही थी। घोर अन्धकार छाया हुआ था। बड़ी ठण्ढ पड़ रही थी। सड़क की लैम्पों की ज्योति मलिन हो गई थी, मानों उन्हें किसी बात पर पश्चाताप हो रहा हो। लोग छाता ताने जल्दी-जल्दी चले जा रहे थे। रोज़मेरी ने अपनी शाल को अच्छी तरह लपेट लिया और सोचा कि उसे वह डिब्बा ले आना चाहिए था। उसकी मोटर सामने खड़ी थी। उसे केवल सड़क पार करके उसमें बैठना था, परन्तु फिर भी वह खड़ी रही। मनुष्य के जीवन में कभी-कभी ऐसा समय आता है, जब घर से बाहर निकलते ही उसके मन में भय या सन्देह उत्पन्न हो जाता है। उस समय उसको अपने चित्त को शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए और घर जाकर गरमागरम चाय पीनी चाहिए। वह ऐसा सोच ही रही थी कि एक दुबली-पतली लड़की न मालूम कहाँ से निकल कर उसके पास खड़ी हो गई और काँपते हुए स्वर में कहने लगी—श्रीमती जी, मैं आपसे कुछ माँग सकती हूँ?" रोज़मेरी ने घूम कर देखा कि एक थकी-माँदी, बड़ी-बड़ी आँखों वाली लड़की, जो उसकी समवयस्का प्रतीत होती थी, अपने कपड़े समेटे हुए काँप रही है।

"श्रीमती जी, क्या मुझे एक प्याला चाय के लिए पैसे मिल सकेंगे?"—उसने फिर कहा। उसके स्वर में सचाई थी, किसी भिखमङ्गे की आवाज़ न थी।

"एक प्याला चाय के लिए? तो क्या तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है?"

"कुछ भी नहीं, श्रीमती जी।"

"आश्चर्य की बात है!" उस लड़की से मिलना रोज़मेरी को एक आश्चर्यजनक घटना जान पड़ी। यदि वह उसको घर ले जाय? जैसा अधिकतर उपन्यासों या नाटकों में होता है। और अपने मन में उसने अपने आपको मित्रों से यह कहते हुए सुना—"मैं केवल उसको अपने साथ घर ले आई थी।" उसने लड़की से कहा—"चलो, मेरे साथ घर चल कर चाय पी लेना।"

लड़की विस्मित हो कुछ पीछे हट गई। उसका काँपना भी कुछ देर के लिए बन्द हो गया। रोज़मेरी ने मुस्करा कर फिर कहा—"हाँ, चलो, मेरी कार में बैठो।"

"आप—क्या आप यह सच कह रही हैं?"—उस लड़की ने वेदनापूर्ण स्वर में पूछा।

"हाँ, मैं चाहती हूँ कि तुम मेरे साथ चलो।"

लड़की की आँखें उसकी ओर टकटकी बाँधे हुए देख रही थीं—"आप मुझे थाने पर तो न ले जाएँगी?"

"थाने पर!"—रोज़मेरी ने हँस कर कहा—"मुझे ऐसी निष्ठुर बनने की क्या आवश्यकता है? नहीं, मैं केवल तुम्हें सर्दी से बचाना चाहती हूँ।"

भूखे मनुष्य को जल्दी ही विश्वास आ जाता है। नौकर कार का दरवाज़ा खोले खड़ा था। दोनों अन्दर

बैठ गईं। कार चल पड़ी। "हाँ, अब ठीक है"—रोज़मेरी ने उसकी तरफ़ देखते हुए कहा, जिसे वह पकड़ लाई थी। परन्तु उसका हृदय दया से पूर्ण था। वह उसे बता देगी कि अमीरों के भी हृदय होता है और स्त्रियाँ एक दूसरे की बहिनें होती हैं। "डरो नहीं" उसने कहा—"हम दोनों स्त्रियाँ ही तो हैं। यदि मैं अधिक भाग्यवान हूँ तो क्या?"

कार घर के सामने खड़ी हो गई। नौकर ने किवाड़ खोला। रोज़मेरी लड़की को हाथ पकड़ कर अन्दर ले गई और कहा—" पर चलो, मेरे अपने कमरे में।" वह उसको नौकरों की द्वेषपूर्ण दृष्टि से बचाना चाहती थी। इसलिए उसने अपनी नौकरानी को भी न बुलाया और अपने कपड़े आदि भी स्वयं ही उतारे। उसके लिए सबसे बड़ी बात अपने व्यवहार को स्वाभाविक रखना था। अपने सजे हुए कमरे में पहुँचते ही उसने कहा—"यहाँ बैठो।" अँगीठी में आग जल रही थी, जो कमरे में रक्खी हुई वस्तुओं पर अद्भुत प्रकार का प्रकाश डाल रही थी।

लड़की कमरे में आते ही रुक गई, मानों चौंधिया गई हो। रोज़मेरी ने कुर्सी अँगीठी के पास खींचते हुए कहा—इधर आओ, इस कुर्सी पर बैठो और अपने को गरम करो। तुम तो मारे सर्दी के ठिठुरी जा रही हो।

"मेरा साहस नहीं पड़ता"—कहती हुई वह लड़की कुछ पीछे हट गई।

"अरे, तुम्हें डरना नहीं चाहिए। आओ, यहाँ बैठो। कपड़े उतार कर हम दूसरे कमरे में चलेंगी और चाय पी के आराम करेंगी। तुम डर क्यों रही हो?" लड़की को उसने धीरे से कुर्सी में ढकेल दिया।

लड़की को कोई उत्तर नहीं आया। उसे जैसे बैठा दिया गया था, वैसे ही बैठी रही। मुँह खोले हुए वह कुछ गँवार सी मालूम होती थी। रोज़मेरी ने उसकी ओर झुक कर कहा—अपना हैट तो उतारो। तुम्हारे सब बाल भींगे हुए हैं।

एक बहुत ही धीमे स्वर में उत्तर मिला—"बहुत अच्छा श्रीमती जी!" और वह पुरानी हैट उतार दी गई।

"और मैं तुम्हारा कोट भी उतार दूँ?"

लड़की उठ खड़ी हुई, परन्तु उसने एक हाथ से कुर्सी को पकड़ रक्खा। रोज़मेरी ने कुछ कठिनाई से उसका कोट उतारा। लड़की ने उसकी कुछ भी सहायता न की। वह कुछ लड़खड़ा रही थी। रोज़मेरी ने सोचा, यदि लोग सहायता चाहते हैं, तो उन्हें स्वयं भी कुछ करना चाहिए। अब वह कोट को क्या करती? उसने उसे वहीं फ़र्श पर रख दिया और अपने लिए एक सिगरेट लेने जा रही थी कि लड़की ने विचित्र स्वर में जल्दी से कहा—श्रीमती जी, अगर मुझे शीघ्र ही कुछ खाने को न मिलेगा तो मैं बेहोश हो जाऊँगी।

"अरे, मैं भी कैसी बेपरवाह हूँ!"—रोज़मेरी ने दौड़ कर घण्टी बजाई और चिल्ला कर कहा—"चाय लाओ फ़ौरन और थोड़ी सी ब्राण्डी भी।" परन्तु लड़की ने उसी समय ज़ोर से कहा—"नहीं, मुझे ब्राण्डी नहीं चाहिए। मैं शराब नहीं पीती। मुझे केवल एक प्याला चाय ही चाहिए।" और रो पड़ी।

बहुत ही करुणाजनक दृश्य था। रोज़मेरी उसकी कुर्सी के पास बैठ गई और पुचकार कर कहा—"रोओ मत।" उसने अपने रेशमी रूमाल से उसके आँसू पोंछे और कई प्रकार से उसे चुप कराने का प्रयत्न किया। उसका हृदय सचमुच पिघल गया था।

वह लड़की अब अपना सङ्कोच, ग़रीबी आदि सब भूल गई—उसे केवल इतना ही ज्ञात था कि वे दोनों स्त्रियाँ हैं। वह चिल्ला उठी—मैं इस तरह नहीं रह सकती। मैं आत्म-हत्या कर लूँगी। मुझसे और नहीं सहा जाता।

"तुम्हें ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। बस, अब रोओ नहीं। क्या ही अच्छी बात हुई कि मैं तुम्हें मिल गई! चाय पी के मुझे अपना हाल बताना। मैं वचन देती हूँ कि मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। रोना बन्द भी तो करो।"

चाय आई। रोज़मेरी ने मेज़ अपने पास ही रखवा ली और उस लड़की को अच्छी तरह खिलाना शुरू कर दिया। मिठाई, रोटी, मक्खन सब कुछ उसे खिलाया। उसका प्याला ख़ाली होते ही उसे चाय, मलाई और मीठे से भर देती। कहा जाता है कि मीठा बलकारक होता है। उसने स्वयं कुछ न खाया, केवल दूसरी ओर देखती हुई सिगरेट पीती रही, ताकि उसे कोई सङ्कोच न हो।

इस ज़रा से आहार का फल सचमुच आश्चर्यजनक हुआ। उस लड़की की आँखों में नई ज्योति आ गई और उसका चेहरा खिल उठा। कुर्सी में बैठी हुई वह एक

और ही प्राणी मालूम होती थी। रोज़मेरी ने एक और सिगरेट सुलगाई और पूछा—इससे पूर्व तुमने कब भोजन किया था ?

इसी समय दरवाज़ा खुला और फ़िलिप ने पूछा—मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

"हाँ, ज़रूर।"

फ़िलिप अन्दर आते ही एकाएक रुक गया और टकटकी बाँध कर लड़की की ओर देखने लगा—ओह मुझे नहीं मालूम था।

रोज़मेरी ने मुस्करा कर कहा—कोई बात नहीं। ये हैं मेरी मित्र मिस × × ×

"स्मिथ, श्रीमती जी !"—कुर्सी में बैठी हुई अचल मूर्त्ति ने कहा।

"और हम दोनों को आपस में बातें करनी हैं।"

"बहुत ठीक।" फ़िलिप ने कहा और अँगीठी के पास आकर उसकी ओर पीठ करके खड़ा हो गया। "कैसा बुरा मौसिम है।" उसने कुर्सी पर बैठी हुई निस्तब्ध मूर्त्ति की ओर देखा और फिर रोज़मेरी की ओर।

"हाँ, बहुत ही बुरा।"—रोज़मेरी ने कहा।

फ़िलिप मुस्कराया—"असल में मुझे तुमसे एक बात कहनी थी। कुछ देर के लिए लाइब्रेरी में चलो। मिस स्मिथ इसका कुछ ख़याल तो न करेंगी ?"

उन बड़ी-बड़ी आँखों ने उसकी ओर देखा। परन्तु रोज़मेरी ने शीघ्र ही कहा—"चलो।" और दोनों इकट्ठे कमरे से बाहर चले गए। लाइब्रेरी में आते ही फ़िलिप ने पूछा—"यह कौन है ? इस सबका क्या मतलब है ?"

रोज़मेरी ने दीवार के सहारे खड़े होकर हँसते हुए कहा—यह मुझे कर्ज़न स्ट्रीट में मिली थी। मुझसे उसने एक प्याला चाय के लिए पैसे माँगे थे और मैं उसे अपने साथ ले आई हूँ।

"परन्तु तुम उसके साथ करोगी क्या ?"

"उसके साथ दया का बर्ताव करूँगी। उसे अच्छी तरह रखूँगी। हमने अभी आपस में बातें नहीं की हैं, पर मैं उसे दिखाऊँगी, उसे बता × × ×"

"परन्तु प्रिये, तुम सचमुच पागल तो नहीं हो गई ? ऐसा हो नहीं सकता।"

"मैं जानती थी, तुम यही कहोगे। क्यों नहीं हो सकता ? मैं उसे रखना चाहती हूँ। क्या यही काफ़ी नहीं है ? और मैंने निश्चय कर लिया है × × ×"

"परन्तु"—फ़िलिप ने सिगार का सिरा काटते हुए कहा—"वह तो अत्यन्त ही सुन्दर है।"

"सुन्दर ?"—आश्चर्य से रोज़मेरी के मुँह पर सुर्ख़ी दौड़ गई—"क्या सचमुच ही ? मैंने इसका ख़याल नहीं किया था।"

"अरे सुन्दर क्या बिलकुल लावण्य की पुतली है। मैं तो देख कर दङ्ग रह गया था। फिर भी × × × मैं समझता हूँ कि तुम भूल कर रही हो। × × × क्या मिस स्मिथ आज हमारे साथ ही भोजन करेंगी ?"

रोज़मेरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह लाइब्रेरी से बाहर चली गई। परन्तु अपने कमरे में नहीं, बैठक में गई। मेज़ के पास जाकर कुर्सी पर बैठ गई। "सुन्दर !" "लावण्य की पुतली !" "दङ्ग रह गया था !" उसका हृदय धक-धक कर रहा था। "सुन्दर !" "लावण्य की पुतली !!" उसने अपनी चेकबुक उठाई—परन्तु नहीं, चेक देने से कुछ न होगा। मेज़ का एक दराज़ खोल कर उसने दो एक-एक पाउण्ड के नोट निकाले और अपने कमरे में चली गई।

आध घण्टे बाद रोज़मेरी फिर लाइब्रेरी में गई। फ़िलिप अभी बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। रोज़मेरी ने कहा—मैं तुमसे यही कहना चाहती थी कि मिस स्मिथ आज यहाँ भोजन नहीं करेंगी।

फ़िलिप ने पत्र रख दिया और पूछा—क्यों ? क्या हुआ ? क्या उन्हें कोई और कहीं काम था ?

रोज़मेरी पास आकर उसकी कुर्सी पर बैठ गई। "वह यहाँ ठहरती ही नहीं थी। इसलिए मैंने उस बेचारी को कुछ पैसे भेंट-स्वरूप दे दिए। मैं उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध थोड़े ही रख सकती थी ?"

रोज़मेरी ने अपने बाल अभी सँवारे थे। मोतियों की माला पहन ली थी। अँगुली से फ़िलिप की ठोड़ी ऊपर उठाते हुए पूछा—"क्या तुम मुझसे प्रेम करते हो ?" उसके स्वर में न जाने क्या था, जिसने फ़िलिप को उद्विग्न कर दिया। उसने रोज़मेरी को अपने बाहुपाश

(शेष मैटर ४५८ पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)
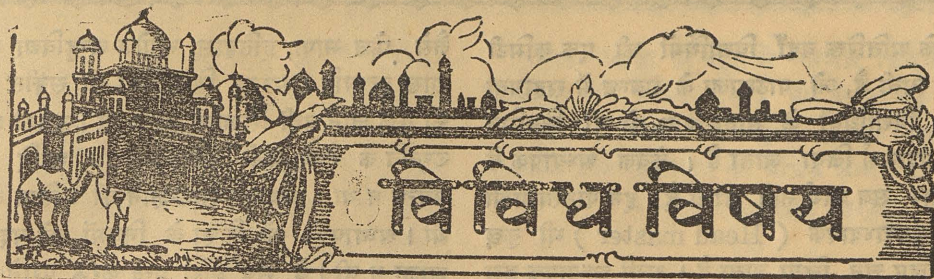
यूरोप में शिक्षा के नए आदर्श

युद्ध के पहिले जर्मनी के शिक्षालयों में एक दोष था—बल्कि तमाम जर्मन-समाज में यह बड़ा ऐब था कि हर तरफ़ फ़ौजी तरीक़ों का व्यवहार किया जाता था। जर्मन जाति की उन्नति और एकता के लिए सैन्य-बल ही एक उपयोगी उपाय था। सन् १८७० ई० में जर्मनी ने अपनी उत्साही फ़ौज के द्वारा फ़्रान्स को परास्त किया था, इसलिए जर्मनों को सेना और सैनिक शासन पर दृढ़ विश्वास था। फ़ौजी अफ़सरों की वहाँ बड़ी इज़्ज़त होती थी और वे वर्दी पहिने हुए ही सब जगह जाते थे। फ़ौजी प्रबन्ध में नियमपालन, आज्ञाकारिता और सेवा के गुण सिखाए जाते थे, जिन पर जातोन्नति की नींव अवलम्बित है। परन्तु जर्मनी में इस फ़ौजी प्रकृति को सीमा से अधिक महत्व दे दिया गया था। अस्तु, यह गुण वास्तव में दोष में परिवर्तित हो गया था। नियमों की अत्यधिक पाबन्दी और आज्ञाकारिता से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ज़ोर कम हो जाता है और लोगों में आज्ञा के बिना काम करने की शक्ति ही नहीं रह जाती है। अगर अफ़सर ग़ैरहाज़िर हो या कुछ ग़लती कर दे तो सारा काम बिगड़ जाता है। सब लोग एक मैशीन के पुर्ज़ों की तरह हो जाते हैं। कोई अपनी बुद्धि और हिम्मत पर भरोसा नहीं रखता। नियमों की भरमार हो जाती है।

जर्मनी के शिक्षालयों में भी यही दोष पाया जाता था। शिक्षकों को ज़रा भी आज़ादी न थी कि वे अपनी ओर से कुछ पढ़ा सकें, या किसी नई प्रणाली का प्रयोग कर सकें। लकीर के फ़क़ीर बन कर ज़ाब्ते के अनुसार कार्य करना ही उनका कर्तव्य था। सारे देश के सब मदरसे इसी प्रकार से चलाए जाते थे और सारी शिक्षा निकम्मी और नीरस बन गई थी। नियमों की रस्सी ने अध्यापकों का गला ही घोंट दिया था। इसके अतिरिक्त शिक्षालयों के अन्दर भी अध्यापकों और विद्यार्थियों का सम्बन्ध फ़ौजी आदर्श के अनुसार ही रक्खा जाता था। अध्यापक लोग विद्यार्थियों से अलग रह कर उन पर अपना रोब जमाते थे। उनके साथ मिल-जुल कर खेलना या मनोरञ्जन करना अनुचित समझा जाता था। बच्चों में डर का भाव भरा जाता था। प्रेम का कहीं नामो-निशान भी न था। अध्यापक समझते थे कि वे स्वयं तो फ़ौजी अफ़सरों के दर्जे के हैं और बच्चे सिपाही हैं। अस्तु, इसी भूल से वे शिक्षालयों में फ़ौजी प्रबन्ध की नक़ल करते थे। परन्तु थोड़े से विचारशील सुधारकों ने इन दोषों के दूर करने की चेष्टा युद्ध के पहिले ही आरम्भ कर दी थी। उनका आन्दोलन एक छोटे रूप में था। परन्तु सन् १९१८ ई० में हैम्बर्ग नगर के अध्यापकों ने अपनी ज़िम्मेदारी का सुधार शुरू कर दिया। क्योंकि वह क्रान्ति का युग था और हर तरफ़ गड़बड़ मची हुई थी। इन अध्यापकों ने कुछ पाठशालाओं में बच्चों की स्वतन्त्रता और प्रेम के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करना आरम्भ किया। क्रमशः दूसरी पाठशालाओं में भी उनका अनुकरण किया गया। बच्चों को अपनी शक्तियाँ धीरे-धीरे बढ़ाने और उनका विकाश करने का अवसर देकर स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर इन नए शिक्षालयों की नींव रक्खी गई। उनका नाम भी 'स्वतन्त्र शिक्षालय' (Free Schools) रक्खा गया। वहाँ परीक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि परीक्षाओं की ओर अधिक ध्यान रहने से उसी पुरानी प्रणाली पर चलना पड़ेगा और सिर्फ़ थोड़े से मुख्य विषयों को रोटी-पानी की तरह बच्चों के अन्दर भर देना होगा। शिक्षा का उद्देश्य केवल यही नहीं है कि बच्चे सिर्फ़ परीक्षा पास कर लें।

इसके अतिरिक्त वहाँ विद्यार्थियों की एक कमिटी भी चुनी जाती है, जो पाठशाला के प्रबन्ध में सहायता देती है। विद्यार्थियों के माता-पिता से भी नियमित रूप से परामर्श लिया जाता है। केवल अध्यापक के इच्छानुसार सब कार्य नहीं होता है। इन पाठशालाओं में एक मुख्याध्यापक (Head master) भी कुछ काल के लिए चुन लिया जाता है। सभी अध्यापक इस चुनाव में भाग लेते हैं। इसी प्रकार हेडमास्टर की पदवी भी किसी एक व्यक्ति के लिए सुरक्षित नहीं है, बल्कि उसका निर्वाचन एक प्रजातन्त्र राज्य के प्रधान के अनुसार होता है और सिर्फ़ कुछ वर्षों के लिए वह प्रधान अध्यापक चुना जाता है। अध्यापकों में इस तरीक़े से भ्रातृ-भाव बढ़ता है और प्रबन्ध में भी सरलता होती है। इन स्वतन्त्र पाठशालाओं की उन्नति से जर्मन जाति की काया-पलट हो जायगी।

इटली में भी शिक्षा-मन्त्री प्रोफ़ेसर "जिववानी जिण्टले" ने शिक्षा के सम्बन्ध में कई आवश्यक सुधार किए हैं। यहाँ की पाठशालाओं में फ़ीस बहुत कम ली जाती थी और शिक्षा थी साधारण। बहुत सी पाठशालाओं में लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ते थे। शिक्षा का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था। परन्तु अधिकतर मानसिक शिक्षा पर ज़ोर दिया जाता था, जैसे, फ्रेञ्च भाषा, इतिहास, भूगोल जन्तुविद्या रसायन-शास्त्र इत्यादि। परन्तु विद्यार्थियों को सङ्गीत या कला का कुछ ज्ञान नहीं सिखाया जाता था। उनकी शारीरिक उन्नति के लिए खेलों और व्यायाम आदि का कोई प्रबन्ध न था। केवल पुस्तक-ज्ञान की प्रतिष्ठा की जाती थी। अध्यापकों को शिक्षा के नियमों को बदलने की आज्ञा न थी। वे सब आँखें बन्द करके पुराने मार्ग पर चले जाते थे।

इटली में दो बड़े दल हैं, एक कैथोलिक धर्म का अनुयायी और दूसरा प्रकृतिवादी नास्तिक सम्प्रदाय, इन दोनों में सदैव लाग-डाँट बनी रहती है। प्रकृतिवादी नास्तिक को "फ्रीथिङ्कर" या "लीपरपान्सर" भी कहते हैं। प्रायः शिक्षित लोग और कारख़ानों के मज़दूर प्रकृतिवादी दल में शामिल हैं। परन्तु किसान पुराने ईसाई धर्म के भक्त हैं। इन ईसाई पुजारियों का बड़ा प्रभाव है, क्योंकि वे ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं और बहुत त्याग करते हैं। परन्तु ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को अब शिक्षित लोग और मज़दूर नहीं मानते। उन्होंने अपना अलग नास्तिक सम्प्रदाय बना लिया है। सन् १९०६ ई० में इटली के सब स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा बन्द कर दी गई थी और विश्वविद्यालयों का धार्मिक विभाग भी बन्द कर दिया गया था; क्योंकि उस समय नास्तिकों का ज़ोर था। इटली में एक बड़ी बुराई यह थी कि वहाँ वकील बहुत अधिक संख्या में थे। वकालत की परीक्षा पास करके हज़ारों नवयुवक जूतियाँ चटख़ाते फिरते थे। सरकारी नौकरियों के लिए सबकी राल टपकी पड़ती थी। परन्तु इतनी नौकरियाँ हर साल ख़ाली नहीं हो सकती थीं।

प्रोफ़ेसर "जिण्टले" ने बहैसियत शिक्षा-मन्त्री के बहुत सी सुविधाएँ जारी की हैं। उन्होंने अध्यापकों के सुधार की कोशिश की है। उनकी राय है कि नियम और सिद्धान्त बनाने से कोई लाभ न होगा, यदि अध्यापक योग्य न हों। अध्यापकों के दिलों में नैतिक बल भरना चाहिए, जिससे वे अपने पवित्र कर्तव्य से परिचित होकर अपना जीवन उसके लिए अर्पण कर दें। फिर वे स्वयं उचित उपाय निकाल सकेंगे। सरकार की ओर से बहुत से नियम-उपनियम जारी करने की आवश्यकता नहीं है। बच्चों को शिक्षा देने से अध्यापक के दिल और

(४५६वें पृष्ठ का शेषांश)

में बाँध लिया और एक चुम्बन लेते हुए कहा—"बहुत।"

कुछ क्षण तक निस्तब्धता रही। फिर रोज़मेरी ने स्वप्निल स्वर में कहा—आज मैंने एक छोटा सा अत्यन्त मनमोहक डिब्बा देखा है। उसका दाम है तीस पौण्ड। मैं उसे मोल ले लूँ?

"हाँ"—फ़िलिप ने उसके गाल पर अँगुली से हलका सा आघात करते हुए कहा—"ले लेना, श्रीमती फ़िज़ूल-ख़र्च।"

परन्तु यथार्थ में रोज़मेरी कुछ और ही चाहती थी। फ़िलिप के वक्षस्थल पर अपना सिर रखते हुए उसने पूछा—क्या मैं सुन्दर हूँ?*

❀ ❀ ❀

*कैथराइन मैन्सफ़ील्ड की एक कहानी का अनुवाद।

दिमाग़ की भी उन्नति होगी, क्योंकि वह इस काम में पूरी दिलचस्पी लेकर अपनी शक्तियों का विकास कर सकेगा। शिक्षा एक जीवित फलदायक कार्यक्रम है। केवल मुर्दा नियमों की पाबन्दी कोई अर्थ नहीं रखती। अस्तु, सीखना और सिखाना साथ होगा। सन् १९२३ ई० में जो सुधार किए गए हैं, उनके द्वारा पुराने नियमों को रद्द कर दिया गया है और यह प्रबन्ध किया गया है कि सब लोग अपने बच्चों को अवश्य पाठशालाओं में भेजें।

इटली में अनिवार्य शिक्षा का क़ानून तो पहले भी प्रचलित था, लेकिन उस पर अमल नहीं किया जाता था। बहुत से किसान और मज़दूर अपने बच्चों को स्कूल में नहीं भेजते थे, परन्तु सरकारी नौकर उनके विरुद्ध कुछ काररवाई नहीं करते थे। अब इस बुराई का परित्याग किया गया है, ताकि अपढ़ लोगों की संख्या कम होती जाय। उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों का चुनाव किया जायगा, और आवश्यकता से अधिक विद्यार्थी नहीं लिए जाएँगे। शारीरिक व्यायाम और नैतिक शिक्षा पर अत्यधिक ज़ोर दिया जायगा। प्रारम्भिक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा फिर प्रचलित की जायगी। यदि कोई मनुष्य ग़ैर-सरकारी स्कूल खोलना चाहे, तो उसको आज्ञा दी जायगी कि वह नया अनुभव प्राप्त कर सके। अभी तक ग़ैर-सरकारी स्कूलों की रोक थी। मुल्क के भिन्न-भिन्न हिस्सों के लिए उचित परिवर्तन किए जा सकेंगे। जिससे प्रजा को स्कूलों के काम में सहानुभूति हो। सर्व-साधारण के लिए मनोरञ्जक साहित्य तैयार किया जायगा, जिससे मदर्सों में प्रजा का भाव बढ़े। मदर्सों को जनता के दैनिक जीवन से गहरा सम्बन्ध रखना चाहिए। खेल, बाग़वानी, हाथ से काम करना, सङ्गीत इत्यादि ऐसे विषयों के लिए समय दिया जायगा।

प्रत्येक सप्ताह ३५ घण्टों में से २४ घण्टे ऐसे उपयोगी और नैतिक लाभदायक विषयों के लिए ख़र्च किए जाएँगे, विशेषतः सङ्गीत, चित्रकारी तथा अन्य कलाओं के द्वारा पवित्र भावनाओं की उन्नति की जायगी। प्राचीन जातीय गीत संग्रह करके उनका उपयोग पाठशालाओं में किया जायगा। एक सभा भी स्थापित की गई है, जिसका उद्देश्य नौकरों का सुधार करना है।

धार्मिक शिक्षा में बहुत से गम्भीर सिद्धान्त नहीं सिखाए जाएँगे, बल्कि ईसाई धर्म के बड़े-बड़े सिद्धान्त बताए जाएँगे, जिनसे नैतिक सुधार हो सके। युद्ध से पूर्व प्रजातन्त्र और प्रकृतिवाद का अधिक प्रभाव था।*

—नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०

❋ ❋ ❋

भयावह अभ्युदय

हमारी ऐश्वर्यशाली हवेलियों में रङ्ग-बिरङ्गे सङ्गमर्मर सुशोभित हैं। मोतियों की झिलमिलाहट हमें चकित कर रही है। स्वर्गीय सौन्दर्य-छटा पृथ्वी पर बहती फिर रही है। अब सहसा दीपक जल उठने के लिए दीपक-राग गवाए जाने की आवश्यकता नहीं। सेवक-सेविकाओं से परिवेष्ठित निशानाथ ऐसा सुन्दर नहीं मालूम होता, जैसा कि समृद्धिशाली विभूति-मण्डित प्रतापी अकबर या विश्व-ऐश्वर्य से सजे ज़नानख़ाने में आरामतलब सम्राट जहाँगीर। भोजन की प्रत्येक वस्तु में कैसा स्वाद पैदा किया गया है। कृत्रिम पहाड़ों में नैसर्गिक पर्वत-मालाओं के सौन्दर्य से कहीं अधिक सौन्दर्य दीख रहा है। फ़्रान्स का वीर-केसरी नेपोलियन, अमेरिका का स्वातन्त्र्य-विधायक वाशिङ्गटन, बोधिवृक्ष के नीचे सिद्धासन लगा कर तपस्या करने वाले दया के अवतार भगवान शाक्य मुनि, अहिंसा और शान्ति का क्रियात्मक ज्ञानी सत्याग्रही मोहन, ग़रीबों के वृक्ष के नीचे बैठने वाला स्पष्टवक्ता और दीनों का हृदय रूसी संन्यासी टॉलसटॉय, साहित्य-सम्राट शेक्सपियर और होमर आज सारे सभ्य संसार के हाथों में हैं। वे केवल फ़्रान्स, अमेरिका, भारतवर्ष, रूस, इङ्गलैण्ड और ग्रीस की ही सम्पत्ति नहीं। आमोद-प्रमोद की सामग्री का तो पार नहीं। यह युग ही आमोद-प्रमोद का युग है। इस युग ने प्रकृति पर भी एक बड़ी विजय प्राप्त की है। आकाश में अब कवि ही नहीं उड़ते, उनके पात्र भी उड़ने लगे हैं। हम सबके लिए आकाश-यात्रा बिल्कुल सरल है। चाहे कालिदास ने शाकुन्तल में

---

* लाला हरदयाल जी, एम० ए० के एक लेख के आधार पर।

या वेदव्यास ने महाभारत में या आदि-कवि बाल्मीकि ने रामायण में आकाश-यात्रा अपने मन से ही बना कर मानव-मनोवृत्ति की कल्पनाकारिणी लिप्सा का ही परिचय दिया हो। घर बैठे दूर की बात जान लेना अब योगियों की ही सम्पत्ति नहीं। विज्ञानाचार्य बोस और मारकोनी ने भी विज्ञान-बल से योगियों के क्षेत्र में बड़ी उथल-पुथल मचा दी है। सिंह की भयङ्करता अब केवल गर्जन में ही रह गई है। दुनालियों ने उसके मस्तिष्क को भी मार्ग पर ला दिया है। ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार कल्पनातीत हो गया। बाल की खाल ही नहीं, उसका अस्थि-पञ्जर भी आपके सामने आ सकता है। वृक्ष रो-रोकर और हँस-हँस कर अपनी रामकहानी हमें सुनाने लगे। निरक्षर गूँगे वृक्ष लिखने लगे। ज्ञान का क्षेत्र गम्भीर भी है, पर विस्तृत अधिक है। केवल ज्ञान-वारि के लिए मनुष्य कोई भी त्याग करने को तैयार है। ज्ञान चाहे उथला मिले गहन नहीं, पर दाँत किटाकिट अवश्य होना चाहिए। मनुष्य एक श्रेष्ठ जीव है। उसकी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने के लिए और उसकी रक्षा के लिए २-४ हरिण तथा १०-२५ सर्प इत्यादि जैसे हिंसक जन्तुओं की बलि कोई पातक नहीं। विश्वसंहार के लिए कपिल ऋषि के योग तथा तपस्या-प्रसूत प्रखर तेज की आवश्यकता नहीं, जादू सीखने की आवश्यकता नहीं, चतुरङ्गिणी सेना-सञ्चालन की भी आवश्यकता नहीं; कतिपय हाविडज़र तोपें और थोड़ा सा गैस ही पर्याप्त है। मज़दूरों का मूल्य बहुत बढ़ चला है; पर उनकी भी अब आवश्यकता नहीं। यन्त्र बर्तन मलने लगे, यन्त्र पॉलिस करने लगे, यन्त्र टिकिट बेचने लगे, यन्त्र व्याख्यान भी सुनाने लगे। सिनेमा की चलने-फिरने वाली मूर्तियों की मूक चेष्टा भी अब सुनने में आने लगी। यन्त्रों को बढ़ाइए, माल्थस का सिद्धान्त आप ही कार्य करने लगेगा और संसार भली प्रकार समझ लेगा कि अब बालकों को जन्म देना पातक है। औषधि-प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। कामुक वृत्तियों को विवश हो नियन्त्रित करने की आवश्यकता ही न होगी। भूख से कृष ग़रीबों में तपश्चर्या-प्राप्त इन्द्रिय-निग्रह स्वतः आ जावेगा।

अस्त्र-शस्त्रों ने लुटेरों और हिंसक जीवों से हमारी रक्षा की, किन्तु पक्षीगण हमारे पास तक नहीं फटकते। हमारे घर की पूज्य गौ भी हमसे भय खाती है। मनुष्य क्या इतना भयङ्कर जीव हो गया है? क्या हमारा जीवन इतना कुत्सित है? यदि यह सत्य है, तो हमारी इस उत्क्रान्ति का अर्थ क्या है? बन्दरत्व से मनुष्यता प्राप्त होने की क्या विशेषता? पूँछ तथा रूप के बदले हमने क्या कमाया?

हम थोड़ा सा धान्य हाथ में लेकर पक्षियों को चुगाने के हेतु बाहर जाते हैं, किन्तु हमारी बहेलिया-वृत्ति उन्हें अनाज चुगने नहीं देती। हमारे दानवी हाथों में उन्हें रक्त की बास आती है। हमारे दान में उन्हें सात्विकता दृष्टिगोचर नहीं होती। वे दूर से देखते हैं, सशङ्कित हो पास से आकर भी देखते हैं, उन्हें उस सात्विकता का लेश-मात्र भी चिन्ह नहीं दिखता और भक्ति तथा प्रेम से फैलाए हुए हाथों में वे धान्य को देख फ़ुर्र हो जाते हैं। पैर की आहट से वे प्राण लेकर भागते हैं। वह समय कहाँ गया, जब ऋषियों के आश्रमों में खग-मृग आनन्दपूर्वक विचरण करते थे। निर्भयता से खेलते थे और ऋषिगण उनकी सेवा कर अपने को धन्य मानते थे। वे आश्रम कहाँ गए, जिनकी सीमा के भीतर आते ही हिंसक जीवों की दुर्वृत्तियाँ स्वतः नष्ट हो जाती थीं। क्या यह सब कवि का काव्य ही था? जीव फिर हिंसक हो गए। मनुष्य की हिंसक वृत्ति ने पशु-साम्राज्य में भी हिंसा-धर्म का प्रचार कर दिया। इस युग का विश्व अशान्ति, अविश्वास और आतङ्क में शासित है।

बन्दूक़ और तलवार पास है। इससे न सिंह आदि हिंसक जीव और न आततायी ही पास तक फटकते हैं। उसकी निर्भयता तलवार में है, आदमी के अन्तस्तल में निर्भयता नहीं है। परन्तु हिंसक से भी प्रेम करने में, उसके साथ-साथ विचरण करने में और उसके स्वभाव में सात्विकता उत्पन्न कर देने में जो शान्ति और निर्भयता है, वह शक्ति की प्रतिनिधि तलवार में नहीं हो सकती। हथियारबन्द हृदय निर्भय नहीं हो सकता। किन्तु एक अरण्यवासी मनुष्य निहत्था पशुओं में रहता है; घूमता रहता है। वहाँ उसे न कोई भय है और न अविश्वास है। ऋषियों के आश्रम भी तो जनशून्य, हिंसक जीवों से घिरे हुए, सुदूरवर्ती बनस्थलियों में थे। पर वहाँ प्रेम के साम्राज्य में भय को स्थान कहाँ?

ज्ञान बढ़ता जाता है। विश्व-बन्धुत्व और समानता का पाठ पढ़ाया जाता है। किन्तु मृग का शिकार अवश्य होना चाहिए! क्या इस युग का विश्व-भ्रातृत्व इतना घातक है? क्या हम इस उत्क्रान्ति को दानवी उत्क्रान्ति कह सकते हैं? इस सभ्यता-परिप्लावित परिष्कृत युग के ज्ञानी ही क्या घातक हैं? इस समृद्धिशाली युग के सभ्यों का मान्य सिद्धान्त यही प्रतीत होता है कि दुर्बल, सीधा और छोटा होना पाप है। इसलिए हे विश्व के सीधे-सादे, छोटे और दुर्बल जीवो, उस पाप के प्रायश्चित्त में अपने प्राणों से हाथ धो डालो! डार्विन का विकासवाद इसका साक्षी है। सभ्यता के विकाश से मनुष्य अधिक स्वार्थलिप्त, अधिक निर्दयी, अधिक अविश्वासी और अधिक भयङ्कर हो गया है। वञ्चक संसार ने घृणास्पद कुटिल चालों के द्वारा स्वार्थ-साधन का नाम पवित्र राजनीति दिया है।

हमारे सीधे-सादे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वाले पूर्वज अर्द्ध-सभ्य और असभ्य जङ्गली थे, यद्यपि उनकी अस्थियों के ऊपर ही यह सभ्यता की रम्य इमारत खड़ी की गई है। डार्विन के बानरों में और उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं था। सारे संसार को क्षण-स्थायी समझ कर वस्तुओं का परिग्रह करने वाले वास्तव में अपराधी थे। वृक्ष, पत्थर, मेघ और ऊषा इत्यादि का पूजन करने वाले सचमुच असभ्य थे। यदि पहिले के आदमी बहुत प्रबुद्ध और ज्ञानी थे, तो इस संसार ने और मनुष्य जाति ने इतने वर्षों के यत्न में क्या कुछ भी संग्रह नहीं किया?

हिंसक-वृत्ति वाली वासना को प्राणि-प्रेम और दया मत कहो। अविश्वासपूर्ण, घातक और आतङ्कपूर्ण परिस्थिति को सभ्य और निर्भय स्थिति मत कहो। निर्भय होने को हथियारबन्द हृदय की आवश्यकता नहीं। हथियारबन्द हृदय प्रेम और दया का सच्चा सौन्दर्य नहीं देख सकता।

योगी के शान्त योग की जड़ में भी एक अशान्त लिप्सा की भावना है। फिर हमें शान्ति की आवश्यकता नहीं, अशान्ति ही जीवन है। इच्छाशक्ति की वृद्धि होने दो, पर सात्विक तथा फल-वाञ्छा-रहित योगेश्वर-संस्थापित अशान्ति होने दो, जिस अशान्ति की तह में वास्तविक वैराग्य छुपा हुआ है। यदि सारा विश्व इस चिरन्तन तथ्य को क्रियात्मक रूप में हृदयङ्गम कर ले, तो घृणित युद्ध की कहाँ आवश्यकता है? यदि इच्छा-प्राप्ति के उपाय में युद्ध है और कपटपूर्ण भीतरी और बाहरी हिंसा है, तो भ्रातृत्व और दया की भेरी मत बजाओ। विश्व से यह मत छिपाओ कि तुम्हारी वासनाओं में भयङ्करता है और सभ्यता का अर्थ है स्वार्थ-वासना की वेदी पर चाहे जिसका बलिदान कर सकना और तब भी यही कहना कि हम स्वातन्त्र्य, समता और भ्रातृत्व के पक्षपाती हैं। तुम्हारी अभिलाषाओं में सचमुच भयङ्करता है। हृदय-हीन खोखला विश्व-प्रेम इस युग की परिचायक भूमिका है। वहाँ उस सात्विक एकतानतामय स्पन्दन का अनुभव नहीं होता।

—वी० एल० सराफ़, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एम० आर० ए० एस०

❀ ❀ ❀

परदा

मनुष्य चाहे कितना ही शक्तिशाली, साहसी या आत्माभिमानी क्यों न हो, समय का आक्रमण होने पर उसे सर झुकाना पड़ता है। समय के परिवर्तन से वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन होता है और परिस्थिति में परिवर्तन होने से लोगों के विचारों में परिवर्तन होता है; पुराने विचारों की जगह नवीन विचार पैदा होते हैं। एक समय था, जबकि भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म का डङ्का बज रहा था और जैन-धर्म की ध्वजा फहरा रही थी। उस समय सनातन-धर्म अवनति पर था। पर थोड़े वर्षों बाद फिर समय ने पलटा खाया और परिणाम-स्वरूप सनातन-धर्म फिर हरा-भरा होकर लहलहाने लगा।

किसी दिन स्त्रियों का अपने पति की चिता पर जल कर भस्म हो जाना एक गौरव की वस्तु समझी जाती थी, परन्तु आज उसका नमूना भी देखने को नहीं मिलता। मतलब यह कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ सब चीज़ों का स्वरूप भी बदल जाता है और अनावश्यक चीज़ों का अस्तित्व मिट जाता है।

शायद कोई समय ऐसा आया होगा, जब समाज को परदे की आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा।

यह प्रथा कब से प्रचलित हुई, इस बात का निर्णय करना इस लेख का उद्देश्य नहीं। यदि यह मान भी लिया जाय कि यह प्रथा बहुत पुराने ज़माने से चालू है, तो भी यह मानना पड़ेगा कि उस समय इसका यह रूप न होगा, जो आज हमें दीखता है। क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में हमें कहीं भी घूँघट का उल्लेख नहीं मिलता। इस पक्ष के लोगों को भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि परदे का वर्तमान रूप मुसलमानी ज़माने से ही प्रचलित हुआ। मुसलमानों का शासन अत्याचारों से भरा हुआ था। हिन्दू-ललनाओं का सतीत्व आपत्ति में था। उनके लिए अकेली-दुकेली बाहर निकलना ख़तरनाक था। ऐसी हालत में उनकी धर्म-रक्षा का केवल यही उपाय हो सकता था कि वे घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहें। बड़े घरों की स्त्रियों का तो घर में रहना भी निभ सकता था, पर छोटे लोगों के लिए यह बात कठिन थी। शायद इसी कारण उनके लिए यह रास्ता निकाला गया कि वे दो-चार इकट्ठी होकर और मुँह ढक कर निकला जाया करें।

मुसलमानी शासन की कुछ ही शताब्दियों में इस प्रथा की जड़ इतनी जम गई कि इसका उखड़ना कठिन हो गया। परन्तु अब युग बदल गया है। अब परदे में रहने की आवश्यकता नहीं। अब तो स्त्रियाँ शुद्ध वायु में निर्भीकतापूर्वक घूम सकती हैं। पर इस प्रथा ने इतना भयङ्कर रूप धारण कर लिया है कि एकाएक नहीं हट सकती। लोगों के विचारों में तो ज़ोरों के साथ परिवर्तन हो रहा है, पर अभी विचारों को व्यवहार-रूप लाना शुरू नहीं हुआ है। हमारे पुरुषों की मनोवृत्ति भी इतनी ख़राब हो गई है कि वे भी हमें परदे की चहारदिवारी के बाहर नहीं निकलने देना चाहते। परदे की ओट में घर के अन्दर भला-बुरा चाहे जो होता रहे, इससे उनकी इज़्ज़त में अन्तर नहीं पड़ता, पर हमारा प्राकृतिक ढङ्ग से बाहर निकलना उनकी इज़्ज़त को धूल में मिलाना है। शायद उन्हें इस बात का ख़याल नहीं है कि यह स्वतन्त्रता का युग है, ग़ुलामी का नहीं। वह ज़माना जा चुका, जब स्त्रियाँ पुरुषों के इशारों पर नाचना ही अपना कर्त्तव्य समझती थीं।

परदे में रहने से हमारा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकाश बिलकुल ही नहीं हो पाता। शारीरिक विकाश के लिए शुद्ध आबहवा तथा परिश्रम की आवश्यकता है। परदे में रहने से शुद्ध आबहवा तो नसीब ही नहीं होती। बड़े लोगों के यहाँ तो फिर भी बड़े घर वग़ैरह होने से तथा उन पर खुली छतें होने से कभी-कभी घूमने को मिल जाता है, पर छोटे घर वालों के लिए क्या साधन है? उनके लिए तो दस फ़ीट लम्बे और आठ फ़ीट चौड़े एक-दो कमरों में ही सारी दुनिया समा जाती है। कहीं-कहीं तो कुछ दिवस तक सूर्य भगवान के दर्शनों का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हो पाता। हमारी बहिनें ज़रा विचार करें कि ऐसी स्थिति में बीमारी को उनसे अच्छा शिकार और क्या मिल सकता है?

घूँघट की प्रथा तो और भी ज़्यादा ख़राब है। इस कारण से श्वास का आना-जाना भी आसानी से नहीं होता। मुँह की अशुद्ध हवा बाहर आती है, पर उसे निकलने की जगह न मिलने से फिर अन्दर चली जाती है। यह तन्दुरुस्ती के नियमों के अनुसार कहाँ तक ठीक है? यही कारण है कि हमारा चेहरा सुस्त और कान्तिहीन रहता है। चेहरों पर का प्राकृतिक तेज धीरे-धीरे निकल जाता है। शादी होते ही एकदम मुँह को ढकना शुरू कर देना कितना अस्वाभाविक है? यदि हम घूँघट के बन्धन से अलग रहें और सबेरे-शाम बिना किसी रोक-टोक के शुद्ध वायु में हमें घूमने को मिला करे, तो हमारा चेहरा प्राकृतिक तेज से पूर्ण रहे। चलने-फिरने का अभ्यास भी रहे, जिससे मौक़ा आने पर ४-५ मील चलने पर भी थकावट मालूम न हो। पर अभी तो हमें इतना भी अभ्यास नहीं कि ४-५ फ़र्लाङ्ग भी आसानी से चल सकें।

आत्मिक तथा मानसिक उन्नति के लिए शिक्षा की तथा विचारों की बदला-बदली की विशेष आवश्यकता है। पर परदे का रिवाज होने से १०-१२ वर्ष की अवस्था से ही घर में बन्द रहना पड़ता है। अतएव न तो अच्छी शिक्षा ही मिल सकती है और न विचारों की बदला-बदली ही हो सकती है। परदे का बन्धन इतना ज़बरदस्त है कि पुरुषों से मिल कर बातचीत करना तो दूर रहा, स्त्रियों से भी आवश्यकता पड़ने पर नहीं मिला जा सकता।

मनुष्य-समाज के दो अङ्ग हैं—एक पुरुष और दूसरा स्त्री। दोनों अङ्गों का विकाश समान होना चाहिए। पुरुष-अङ्ग अपनी उन्नति में ही सारे मनुष्य-समाज की

उन्नति भले ही मानता रहे, पर समाज की वास्तविक उन्नति दोनों अङ्गों की उन्नति पर ही निर्भर है। दोनों अङ्गों का महत्व समान है। एक अङ्ग के बिना दूसरा अङ्ग निर्जीव है। दोनों अङ्गों के समान सहयोग पर समाज की शान्ति निर्भर है। स्त्रियों के सहयोग से किसी कार्य में कितनी सफलता हो सकती है, इसका अन्दाज़ा हाल ही के देश की आज़ादी के आन्दोलन से लगाया जा सकता है।

परदे की चहारदीवारी के अन्दर रहने से और समाजों का तो हमें अनुभव नहीं, पर मारवाड़ी-समाज के विषय में हम कह सकती हैं कि इस समाज में परदे का ढङ्ग बड़ा अनोखा है। जिन लोगों से परदा करने की आवश्यकता है, उनसे तो व्यवहार करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं, पर अपने घर के लोगों से कड़ा परदा किया जाता है। गोटा, कपड़ा, चूड़ी आदि सामान बेचने वाले अनजान राहगीर निस्सङ्कोच घर में प्रवेश कर सकते हैं। उनके लिए किसी तरह की बाधा नहीं, पर बाधा है अपने ससुर, जेठ आदि लोगों के लिए, जो पिता और भाई के बराबर हैं। बड़ी-बड़ी उम्र के नौकर घर में रक्खे जाते हैं, उनसे बोलने तथा हँसी-मज़ाक़ करने में लज्जा नहीं जाती, पर यदि छोटे देवर से बोला जाय तो बेशर्मी होती है। वैसे बातें करते हुए देवर, जेठ या ससुर बोली सुन लें, एक बच्चे को बीच में बैठा कर सब बातें सुनाती रहे, तो हानि नहीं; पर उनसे ख़ुद भी बोलने में शर्म का ख़ज़ाना ख़ाली हो जाता है। हमारे यहाँ एक विचित्र बात और भी है। स्त्रियों-स्त्रियों में भी घूँघट नहीं हटाया जाता और बहू अपनी सास, जेठानी या बाहर की बड़ी स्त्रियों से बोल भी नहीं सकती। कहीं-कहीं तो सारी उम्र भी पूरी हो जाती है। वास्तव में पूछा जाय तो हमारे मारवाड़ी-समाज ने 'लज्जा' शब्द की बड़ी ही मट्टी पलीद की है। लज्जा किसे कहते हैं, यह समझे बिना ही इसके नाम पर व्यर्थ का ढोंग रचा जाता है। ब्याह-शादियों या अन्य मौक़ों पर अपने सम्बन्धियों को भद्दी-भद्दी गालियाँ गाने में शर्म नहीं आती, पर लज्जा आती है, अपने सास, ससुर, जेठ, देवर या सम्बन्धियों से आदर का व्यवहार करने में। इस रिवाज के परिणाम-स्वरूप कभी-कभी पुरुषों को भी बड़ी भारी असुविधा होती है। उनकी समुचित सेवा नहीं हो सकती, अतिथियों का योग्य आदर नहीं हो सकता और यहाँ तक कि कभी-कभी तो उन्हें भूखे-प्यासे भी रह जाना पड़ता है। पर अफ़सोस है कि इतना कष्ट होते हुए भी हमारे वृद्ध पुरुषों के कानों पर इस बुराई को दूर करने के लिए जूँ तक नहीं रेंगती।

परदे के पक्षपाती अक्सर कहा करते हैं कि परदे में रहने से आचरण शुद्ध रहता है। पर जहाँ तक हमारा अपना ख़याल है, परदे की ओट में अधिक दुराचार होता है। परदे का और आचरण का कोई सम्बन्ध नहीं। आचरण का सम्बन्ध हृदय की पवित्रता से तथा शुद्ध और सात्विक भावनाओं से है। यदि हमारा मन निर्मल है, हमारी भावना सात्विक और पवित्र है, तो परदा न होने पर भी हम सदैव पवित्र ही रहेंगी। इसके विरुद्ध यदि भावना ही कलुषित है, तो लाख पर्दे में रहने पर भी आचरण शुद्ध नहीं रह सकता।

हम विश्वास के साथ कह सकती हैं कि परदा छोड़ने से लज्जा तथा शील की मात्रा में रत्ती भर भी अन्तर नहीं हो सकता। लज्जा और शील भारतीय ललना का स्वाभाविक आभूषण है। परदा तोड़ देने से यह आभूषण नहीं छीना जा सकता। घूँघट तो केवल ढोंग मात्र है, लज्जा तो आँखों में निवास करती है। स्त्री के शील का स्वाभाविक तेज उसके चेहरे पर चमकता रहता है, जिसके सामने दुष्ट लोगों को आँख उठाने की भी हिम्मत नहीं हो सकती।

परदे को छोड़े बिना हमारी वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। क्योंकि हमारी उन्नति के मार्ग में यह सबसे बड़ी बाधा है। यदि हमें आदर्श भारतीय महिलाएँ बनना है, तो सबसे पहले हमें परदे को छोड़ देना चाहिए। परदे में रह कर न तो हम संसार की गति को जान सकती हैं, न हम सच्ची और पूर्ण शिक्षा पा सकती हैं, न स्वास्थ्य की रक्षा कर सकती हैं, न कुटुम्बियों का आदर तथा अतिथियों का सत्कार कर सकती हैं और न अपनी सन्तानों को सुसङ्गठित बना कर अच्छे मार्ग पर लगा सकती हैं। बहिनो! यदि हमें अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति करना है, यदि हमें अपनी खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त करना है, यदि हमें संसार का सच्चा अनुभव लेना है, तो सबसे पहले हमें परदे की नाशकारी प्रथा को छोड़ देना चाहिए। इसे छोड़े बिना हमारा विकाश होना असम्भव है।

—नजरकला भण्डारी

❀ ❀ ❀

स्त्री-शिक्षा में सुधार की आवश्यकता

पुरुषों की देखादेखी स्त्रियों में भी आधुनिक शिक्षा का ऐसा तूफ़ान उठा है कि जिस यूनिवर्सिटी के परीक्षा-परिणाम पर हम दृष्टि डालें, हमें बीसों एम० ए०, पचासों बी० ए० और सैकड़ों एफ़० ए० तथा मैट्रिक छात्राओं का नाम सफल छात्रों की सूची में मिलेगा। यह हवा जिस रफ़्तार से चल रही है, उसे देखते हुए यह तो मानना पड़ेगा कि कुछ ही दिनों में पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी ऐसी मिल सकेंगी, जो शिक्षिता और वाह्य संसार-क्षेत्र में पुरुष-समाज के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर चलने वाली होंगी। मैं ज्योतिषी नहीं, परन्तु मुझे विश्वास है कि मेरा अनुमान सोलहो आना सच निकलेगा कि स्त्रियों की आगामी सन्तति हिन्दू-ललनाओं के दोषों (?) से सर्वथा रहित होंगी और उनकी कुरीतियों को दफ़नाने का कष्ट हमें नहीं करना पड़ेगा। यह सन्तति उन बालिकाओं की होगी, जो बीसवीं सदी में आधुनिक विदेशी शिक्षा-पद्धति के अनुसार अप-टु-डेट शिक्षिकाओं द्वारा शिक्षित हो रही हैं। फिर उनकी सन्तानों में दोष कैसे हो सकता है? अब तो समानता का युग है। स्त्री और पुरुष के अधिकार भी समान हैं? अब आप क्लबों में स्त्रियों के बिना न जा सकेंगे, फ़िल्मों का आनन्द स्त्री को घर में छोड़ कर नहीं उठा सकेंगे। यही नहीं, संसार के सब प्रकार के सुखों में स्त्रियों को सहयोगी बनाना पड़ेगा! अन्यथा इस मोटर के युग में यह छकड़ा नहीं चल सकेगा।

सच पूछो तो स्त्रियों की आश्चर्यजनक उन्नति ने पुरुष-समाज के हृदय में एक प्रकार के भय का सञ्चार कर दिया है। उनका सहस्रों वर्षों का गर्व स्त्री ने खेल में ही मिट्टी में मिला दिया है। उसे रोटी का टुकड़ा छिनने का भय है। यह सब कुछ है, पर मुझे उनसे कोई भय नहीं। मैं तो सिद्धान्त की दृष्टि से स्त्री-शिक्षा की विवेचना कर रहा हूँ। पाठिकाएँ बुरा न मानें, धैर्य से इन पंक्तियों को पढ़ें!

भारतवर्ष में जो यूनिवर्सिटी शिक्षा-पद्धति चल रही है, वह लॉर्ड मैकॉले के मस्तिष्क की उपज है। उसका उद्देश्य है ऐसे भारतीय पैदा करना, जो बाहर से भारतीय होते हुए भी भीतर से पूरे अङ्गरेज़ हों, उसके रक्त में अङ्गरेज़ी ग़ुलामी भरी हुई हो। अब तक बालकों की शिक्षा उस प्रणाली से होती थी। उन्हीं पर इसके गुण-दोष का प्रभाव पड़ता था। उसका फल हमें दिखाई पड़ रहा है। हज़ारों नवयुवक बी० ए०, एम० ए० की उपाधि प्राप्त करके भी नौकरियों के लिए दर-दर टक्कर मारते फिरते हैं। रोटी के सवाल ने उनकी सारी शिक्षा को बेकाम कर दिया है। चारों तरफ़ त्राहि-त्राहि मच रही है। प्रतिदिन भूख से क्षुब्ध युवकों के आत्म-हत्या के वृत्तान्तों से समाचार-पत्रों के कॉलम रँगे मिलते हैं? यह सब क्यों है? यह लम्बा प्रकरण है। हाँ, इसका सबसे मुख्य कारण यह है कि उनके उच्च शिक्षा प्राप्त करने का ध्येय केवल रोटी था। रोटी से मेरा अभिप्राय जीविका या नौकरी से है। जब यही उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, तब निराशा के सिवा हो ही क्या सकता है। इस दृष्टि से नवयुवक किङ्कर्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं। यौवन के पहले तूफ़ान के बाद उनकी आँख खुलती है और वह सोचते हैं कि हम कितने पानी में हैं? भारतीय युवकों के सामने एक बड़ा प्रश्न है—हम क्या करें? कोई उसका हल बताने वाला नहीं।

यह तो हुई युवकों की बात। मैं यही प्रश्न उन युवतियों से करना चाहता हूँ, जिनमें अपने भविष्य पर विचार करने की सामर्थ्य है—"उनके जीवन का लक्ष्य क्या है?" अङ्गरेज़ी शिक्षा उन्हें फ़ैशन की कला का पण्डित चाहे बना दे, परन्तु उन्हें आदर्श गृहिणी नहीं बना सकती। उनमें सुरुचि और शालीनता चाहे पैदा कर दे, पर चौके और चूल्हे का प्रेम नहीं पैदा कर सकती। साहित्य और विज्ञानवेत्री चाहे बना दे, पर गृह-विज्ञान की शिक्षा नहीं दे सकती। यह क्यों? यह पूछने की आवश्यकता नहीं। कारण स्पष्ट है, स्त्रियों के जीवन का क्षेत्र है गृह; पर शिक्षा मिलती है विश्व-विद्यालय की। यही कारण है कि मुझे आजकल की उन नवयुवतियों से, जो स्कूल या कॉलेज में अपने जीवन के बहुमूल्य समय को व्यतीत कर रही हैं, पूछना है—"तुम किधर जा रही हो? तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है?"

इस विषय पर विशद विवेचन करने से पहले मैं अपनी स्थिति ज़रा स्पष्ट कर दूँ। मैं स्त्री-शिक्षा का

विरोधी नहीं, उसका घोर समर्थक हूँ। मैं चाहता हूँ, देश का बच्चा-बच्चा, वह बालक हो या बालिका, शिक्षित हो। स्त्रियों में, जिनमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता है, उनके उच्च शिक्षा प्राप्त करने का मैं कट्टर समर्थक हूँ। हाँ, मेरी दृष्टि में यह आधुनिक शिक्षा-पद्धति सदोष है। इस पद्धति का विष पुरुषों के तो रग-रग में व्याप्त हो चुका है, परन्तु यदि इस देश की स्त्रियाँ भी इसी विष का प्याला पी गईं, तो भारतवर्ष की करोड़ों वर्ष की सभ्यता और संस्कृति का अन्त हो जायगा। अब तक भारतवर्ष की लज्जा स्त्रियों के हाथों में ही थी; वही यहाँ की संस्कृति की प्रतिनिधि थीं।

किन्तु यह तो इसका एक पहलू है। एक शिक्षा-शास्त्री के नाते यदि मैं इसके दूसरे पहलू पर विशुद्ध शिक्षा की दृष्टि से विचार करूँ, तब भी मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ। विद्वानों ने व्यक्तिगत सामाजिक उन्नति को शिक्षा का लक्षण माना है। जो शिक्षा हमारी वैयक्तिक उन्नति के साथ-साथ हमें समाज के उपयुक्त बनावे, वही सच्ची शिक्षा है। व्यक्तिगत उन्नति केवल अक्षर-ज्ञान की नहीं, वरन् सब प्रकार की शारीरिक, सामाजिक, मानसिक होनी चाहिए। साथ ही उसे हमें जीविकोपार्जन के योग्य भी बनाना चाहिए। जब हमारा पेट भरा होगा तभी हम समाज में बैठ सकेंगे और समाज की उन्नति के उपाय सोच सकेंगे।

अब हमें देखना चाहिए कि आधुनिक शिक्षा स्त्रियों को शिक्षा के इस सर्व-सम्मत आदर्श की ओर ले जाती है या नहीं। आजकल जो विषय उनको स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं, उसमें उनकी शारीरिक उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता।

हाँ, मैशीन की तरह दिन-रात उनसे मेहनत कराई जाती है और संस्थाओं के सञ्चालक सौ फ़ीसदी नतीजे दिखा कर जनता को चकित करना चाहते हैं। इस प्रकार देश का धन और जनशक्ति का अपव्यय हो रहा है। आचार की ओर तो कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता। सङ्कोच के मारे माता-पिता इस आवश्यक कर्त्तव्य की ओर ध्यान नहीं देते। माताएँ स्वयं अशिक्षिता हैं, उन्हें अपनी सन्तान पर हुकूमत करना ही आता है। रह गईं शिक्षिकाएँ, उन्हें पाठ्य-विषयों के पढ़ाने से फ़ुरसत कहाँ, जो सदाचार की शिक्षा के लिए कुछ मिनट भी दे सकें। फलतः उनकी एकदेशीय (केवल मानसिक) उन्नति होती है और वह भी अधूरी। परीक्षाओं का भय, परस्पर स्पर्धा का भाव उनके स्वास्थ्य में घुन का काम देता है। यही कारण है कि जो चेहरे गुलाब से चमकने चाहिए, वह हरदम मुरझाए रहते हैं। खाने-पीने और सोने की अव्यवस्था के कारण नाना प्रकार के रोग उन्हें यौवन से पूर्व ही आ दबाते हैं, जिससे उनका सारा जीवन ही दुःखमय हो जाता है। अनेकों बालिकाएँ परीक्षा के पहले (कभी-कभी बाद) इहलीला सम्वरण कर लेती हैं!

यह है इस शिक्षा का प्रभाव। इतनी मेहनत करने के बाद भी कोई फल नहीं। जिन विषयों को रटने में इस देश की भावी माताएँ अपना सर्वस्व स्वाहा कर देती हैं—अफ़सोस! वह शिक्षा उनके जीवन में कभी काम नहीं आती। स्त्री का जीवन केवल अख़बार पढ़ने, उपन्यास का पारायण करने और कभी-कभी गम्भीर पुस्तकें पढ़ने में समाप्त नहीं हो जाता। साधारण गृहस्थ की बात तो जाने दीजिए, बड़े-बड़े सम्पन्न परिवारों में भी स्त्री के कुछ और कर्त्तव्य हैं। यह ज़रूरी नहीं कि स्त्री सब काम स्वयं करे; पर सब कामों की निरीक्षिका तो वही है—इस विभाग का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व भी तो उसी पर है। यदि इसको भी जाने दें, तो स्त्री-जीवन का एक और भी लक्ष्य है। इससे बड़े से बड़े घर की स्त्री भी पीछा नहीं छुड़ा सकती। स्त्री का स्त्रीत्व ही सार्थक तभी होता है। वह है—स्त्री का मातृत्व। मैं बड़े अदब से पूछना चाहता हूँ—स्त्री के इस महान उत्तरदायित्व को समझने और उस विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए इस प्रचलित शिक्षा-पद्धति में क्या विधान है?" यदि इसका उत्तर नहीं है, तो इस शिक्षा की निरर्थकता भी स्पष्ट है।

यदि स्त्री-शिक्षा की प्रचलित पद्धति को प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान हर्बर्ट स्पेन्सर की कसौटी पर कसें, तब भी यह खरी नहीं उतरती। न तो स्त्रियों को प्रत्यक्ष प्राण-रक्षा के लिए कुछ स्वास्थ्य या आरोग्य-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, जिससे यह किसी काम आ सके, न परोक्ष प्राणरक्षा अर्थात् जीविका ही का प्रश्न हल होता है। यद्यपि स्त्रियों के लिए नौकरी का प्रश्न अभी टेढ़ा नहीं पड़ा है, लेकिन अब वह दिन दूर नहीं, जब

उन्हें भी प्रत्येक दफ़्तर के दरवाज़े पर No Vacancy का साइनबोर्ड लगा मिलेगा। इस दिशा में पुरुषों की शिक्षा का इतिहास उनका मार्ग-प्रदर्शक हो सकता है। तीस-चालीस वर्ष पूर्व शिक्षित पुरुषों की भी ऐसी माँग थी। अङ्गरेज़ी की प्राइमर पढ़ कर भी लोग रेल के बाबू हो सकते थे, इन्ट्रेन्स पास करके भी हेडमास्टर बन सकते थे, मिडिल पास भी ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन थे। वह समय ही ऐसा था। उस वक्त उनको ज़रूरत थी, अब इनको ज़रूरत है। यही हाल शिक्षिता महिलाओं का भी होगा। नौकरी के मैदान में वह पुरुषों की रोटी छीन सकें, यह सम्भव है। पर आख़िर प्रत्येक बात की हद होती है। आवश्यकताओं का भी अन्त हो ही जायगा। उस दिन मातृत्व का मस्तक लज्जा से अवनत हो जायगा, जब स्त्री रोटी के लिए दफ़्तरों का दरवाज़ा खटखटाएँगी। पर उत्तर मिलेगा—'स्थान नहीं है।'

पाठक-पाठिकाएँ यह न सोचें कि मैं व्यर्थ की कल्पना कर रहा हूँ। यह अवश्यम्भावी है। जो शिक्षा कृषक को कृषक न बना कर उसे एम० ए० बना देती है, जो डॉक्टर को डॉक्टर न बना कर वकील बना देती है, जो वैज्ञानिक को वैज्ञानिक न बना कर साहित्यशास्त्री बना देती है, उसका फल भी यही होता है। अब तो प्रत्येक नवयुवक या नवयुवती के अभिभावक को जागना चाहिए और रोज़मर्रा के झन्झट से थोड़ा समय निकाल कर अपनी सन्तान के सार्वदेशिक विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। उसे प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य रूप में देने के बाद पूछना चाहिए—"तुम्हें क्या बनना है? तुम्हारी रुचि किधर है?" बस उधर ही सन्तान को जाने दें। जो शिल्प का प्रेमी है, उस पर साहित्य का बोझा लादना अन्याय है? जो साहित्य का पण्डित होना चाहता है, उसे विज्ञान की शिक्षा देना भूल है? यही एक हल है, जो बालकों के लिए पेश किया जाता है—यही है, जो बालिकाओं की कठिनाई दूर कर सकता है।

रुचि पर ही इस समस्या का हल रक्खा गया है। इससे स्पष्ट है कि जो युवती उच्च शिक्षा में रुचि रखती है, वह बड़ी ख़ुशी से उधर जाय। परन्तु यह रुचि वास्तविक हो—देखा-देखी नहीं। यह ज़रूरी नहीं है कि यदि मेरी सहेली ने बी० ए० पास किया है, तो मैं भी बी० ए० पास करूँ। रुचि के साथ काम करने की क्षमता भी चाहिए। यह रुचि बीमार की भूख की तरह न हो—भूख हो तो सच्ची। इसी से स्त्री-शिक्षा की समस्या हल हो सकती है। इसी में भारतवर्ष की रमणियों की नाक रह सकती है। यूरोप की नक़ल में कुछ नहीं है। वहाँ के प्रवाह में बह कर, वहाँ की बीमारियों का शिकार भी बनना ही पड़ेगा। इसलिए अधिक सावधानता की आवश्यकता है। हाँ, स्त्री-शिक्षा-संस्था के सञ्चालकों को भी एक बार अपने करीकुलम का वाचन कर लेना चाहिए और पाठ्य विषयों में स्त्रियों के योग्य विषयों का समावेश अवश्य कर देना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि उन्हें स्कूल में न पढ़ाया जाय। अवश्य पढ़ाया जाय, लेकिन अन्य विषयों के साथ कुछ काम की बातों की शिक्षा भी उन्हें दी जाय। युवतियों को गृहस्थ की प्रत्येक बात (चाहे वह छोटी से छोटी क्यों न हो) से पूर्णतया परिचित होना चाहिए। बड़े घर की बेटियों को भी घर के कामों की शिक्षा प्राप्त करने में व्यर्थ की शान को बाधक नहीं बनाना चाहिए। जैसे मनुष्य बीसियों भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, चाहे उनका काम पड़े या न पड़े, इसी प्रकार युवतियाँ यदि गृह-विज्ञान में दक्ष होंगी, तो इसमें उनकी हानि ही क्या है? जिन्हें विवाह करना है और अपना सारा जीवन गृहस्थी में बिताना है, उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली गृह-विज्ञान की शिक्षा ही है।

इसके अतिरिक्त शिशु-पालन और स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान प्रत्येक स्त्री को होना चाहिए, जो माता बनना चाहती है। अब वह समय है, जब युवतियाँ लज्जा को छोड़ कर पत्नी के कर्त्तव्य, शिशु-पालन, गृहस्थ-धर्म सम्बन्धी शिक्षा को प्राप्त करें। अशिक्षित माताओं के हाथ में पड़ कर बच्चों की जो दशा होती है, वह हमने देख ली। अब तो भावी माताओं पर ही भारत की भावी सन्तति का भला या बुरा होना निर्भर है। परमात्मा नवयुवतियों को सुबुद्धि प्रदान करे, जिससे वह डिग्री प्राप्त करने की उच्चाकांक्षा छोड़ कर, गृहस्थ की डिग्री प्राप्त करें। साथ ही स्त्री-शिक्षा के सूत्रधारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो, जिससे वह स्त्री-शिक्षा के इस महान आवश्यक अङ्ग की ओर अधिक ध्यान दे सकें। —जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ

❀ ❀ ❀

स्त्रियों की समस्या

स्त्री और पुरुष दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक की उत्पत्ति दूसरे पर निर्भर है। मानव-जीवन का अस्तित्व बिना स्त्री अथवा पुरुष के असम्भव है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध कभी माता-पुत्र रूप में, कभी पिता-पुत्री रूप में, कभी भाई-बहिन रूप में, कभी पति-पत्नी रूप में, कभी अन्य रूपों में बने ही रहते हैं। ऐसा कोई गल्प, उपन्यास, नाटक तथा काव्य नहीं, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों के चरित्र चित्रित नहीं किए गए हों। इनके बिना मानव-जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी ग्रन्थ अस्वाभाविक और अधूरा समझा जाएगा!

संसार का शासन प्रायः पशु-बल से ही होता आया है और हो रहा है। सबल सदा निर्बल को दबा कर राज्य करना चाहते हैं। न्याय और धर्म तो केवल ढकोसले हैं। जहाँ अपने मतलब में ख़लल पड़ता है, वहाँ बड़े से बड़े न्यायी तथा धार्मिक न्याय की आड़ में अपनी स्वार्थ-सिद्धि को ही प्रधानता प्रदान करते हैं।

इसी स्वार्थ के वशीभूत हो पुरुष जाति अनादि-काल से स्त्रियों पर अत्याचार कर रही है। सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक अधिकारों की बातें जाने दीजिए, घरेलू व्यापार में भी उनकी कोई हस्ती नहीं। वे तो पुरुषों के इशारे पर काम करने वाली पुतलियाँ हैं। पुरुषों के आदेश भले हों या बुरे, उनके मुताबिक़ उन्हें चलना ही होगा। जब कभी बड़ी धारा-सभा में अथवा प्रान्तिक धारा-सभा में स्त्रियों के सुधार अथवा अधिकार की बातें उठती हैं, तो स्वार्थान्ध पुरुषवर्ग प्रस्ताव के उपस्थित करने वाले पर बिल्ली की तरह झपट पड़ता है। हिन्दू वेद, पुराण और स्मृतियों की दुहाई देते हैं, उनके श्लोक उद्धृत कर, गला फाड़ कर प्रस्ताव के विरुद्ध अपनी राय देते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि इन धर्म-ग्रन्थों के रचयिता उन्हीं की तरह स्वार्थान्ध पुरुष ही थे।

स्त्रियों को सदा अशिक्षित रक्खा गया। उन्हें यह भी ज्ञान न होने दिया गया कि उनकी भलाई-बुराई किस बात में है। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि उनको पुरुष के वश में रहना पड़ता है, जिससे वे, प्रयत्न करने पर, छुटकारा पा सकती हैं। उनको भोजन, कपड़ा इत्यादि जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं के लिए पुरुष के मुँह की ओर ही देखना पड़ता है। उनका जीवन पशु से किसी तरह भी अच्छा नहीं है। सन्तान और सुन्दर आभूषण के लिए जीवन भर हाय-हाय करना ही उनके जीवन का ध्येय है। यदि अभाग्यवश विधवा हो गई, तो इन दोनों से भी हाथ धो लेना पड़ता है। ऋषि-मुनि आदि महान आत्माओं ने भी स्त्रियों के साथ न्याय नहीं किया। वेदों की आज्ञा है कि स्त्रियाँ वेदों का पठन-पाठन न करें। मनु जी का आदेश है कि वे कभी स्वतन्त्र न रहें। गोस्वामी तुलसीदास जी रामायण में लिखते हैं:—

> विधिहु न नारि हृदय गत जानी,
> सकल कपट अघ अवगुण खानी।
> नारि-स्वभाव सत्य कवि कहहीं,
> अवगुण आठ सदा उर रहहीं।
> साहस अनृत चपलता माया,
> भय अविवेक अशौच अदाया।

संसार में जितने पदार्थ हैं, वे गुण-अवगुणमय हैं, तब क्यों सारे अवगुण स्त्रियों में ही आ गए? जब सारे अवगुण स्त्रियों में ही समा गए, तब पुरुषों को तो बिलकुल अवगुण-रहित ही होना चाहिए। क्या स्त्रियों में पुण्य का लवलेश नहीं? क्या परमेश्वर ने पुण्य-पुञ्ज का अधिकारी केवल पुरुषों को ही बनाया है? गुसाईं जी की शायद गुणमयी स्त्रियों से कभी भेंट ही नहीं हुई। जब सीता, अहिल्या, मन्दोदरी आदि स्त्री-रत्नों के उदाहरण उनके सामने उपस्थित थे, तब उन्हें ऐसा लिखना उपयुक्त नहीं था। स्त्रियों में असत्यता, भय, अविवेक, अशौच इत्यादि अवगुण के प्रधान कारण अशिक्षा, परदा-प्रथा और परवशता हैं।

स्त्रियों का जीवन जन्म से मृत्यु तक दुःख की एक करुण कहानी है। जब वे माता के गर्भ से भूमि पर गिरती हैं, माता-पिता माथा हाथ पकड़ कर मानों मातम मनाते हैं। कहीं-कहीं इन बच्चों को इस पृथ्वी पर आने के कुछ मिनटों अथवा घण्टों के बाद सूतिका-गृह में ही काल के गाल में पहुँचा दिया जाता है! क्या इन नन्हें बच्चे को मारने वाले राक्षस मनुष्य कहलाने के अधिकारी हैं? यह कर्म उन गण्यमान्य हिन्दुओं का है, जो अपने को वेद,

पुराण और शास्त्रों के अनुयायी मानते हैं! हम लोगों ने लड़के और लड़कियों के भाग्य में अद्भुत विभिन्नता की सृष्टि की है। एक के जन्म पर मङ्गल-गान किया जाता है और दूसरे के जन्म पर मातम मनाया जाता है। लड़के वाले अपने को भाग्यवान समझते हैं, और लड़की वाले अभागे! एक के सुखी जीवन के लिए देवी-देवता मनाए जाते हैं, दूसरे के शीघ्र अवसान के लिए प्रार्थना की जाती है। मानों स्त्री-रूप में जन्म लेना किसी भीषण पाप का फल हो।

भाग्यतः यदि लड़की सौरि-गृह से जीवित निकल आती है, तो भी उसका जीवन सुखी नहीं होता। पग-पग पर उसे विभिन्नता ज्ञात होती है। शिक्षा में विभिन्नता, लालन-पालन में विभिन्नता, असन-वसन इत्यादि में विभिन्नता। लड़की दूसरे के घर की चीज़ समझी जाती है। उससे न अपने वंश की वृद्धि होगी, न राज-कार्य चलेगा, न पितरों का श्राद्ध-तर्पण होगा, इत्यादि कारणों से लोग लड़कियों की तरफ़ अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। समय के प्रवाह में लड़की स्वयं युवती हो जाती है और माता-पिता उसे विवाह कर किसी के माथे मढ़ कर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। लड़कियों का विवाह कर देना माता-पिता उनके प्रति अपने कर्त्तव्य की इति समझते हैं।

यह विवाह का प्रश्न और भी जटिल है। यद्यपि माता-पिता की हार्दिक इच्छा अपनी लड़कियों को किसी अच्छे वर के साथ विवाह करने की रहती है, तथापि अधिकांश लोग अपने सुभीते का ही ध्यान रखते हैं। बच्चियों और युवतियों को बूढ़ों से, परम सुन्दरी, कोमलाङ्गी शिक्षिता को कुरूप और गँवार से विवाह कर देना भी अनुचित नहीं समझा जाता है। गुसाईं तुलसीदास जी लिखते हैं :—

वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना,
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥

यदि युवती और युवक विवाह के समय स्वस्थ और अङ्ग-भङ्ग रहित हों और कुछ समय के बाद दुर्भाग्य-वश रोगी अथवा 'अन्ध-बधिर' हो जायँ, तो पति-पत्नी दोनों का परम कर्त्तव्य है कि प्रेमभाव से परस्पर की सेवा करें। किन्तु किसी सुन्दरी युवती स्त्री को बूढ़े अथवा रोगी या अन्धे या बहरे से विवाह कर दिया जाय, तो यह कदापि न्यायसङ्गत नहीं कि वह ऐसे पति की सेवा करे। बल्कि ऐसा पति तो शीघ्र त्याज्य है। क्या कोई स्वस्थ युवक किसी बूढ़ी अथवा रोगिनी—लँगड़ी-बहरी औरत से विवाह करने को तैयार होगा? पुरुष एक स्वस्थ सुन्दरी स्त्री के रहते हुए कई विवाह कर सकता है, किन्तु स्त्री एक पति के मर जाने पर भी दूसरा पति नहीं कर सकती! क्या यही न्याय की पराकाष्ठा और धर्म है? यदि पुरुषों को भी एक पत्नीव्रत की आज्ञा होती, तो पता लगता कि विधुर रह कर जीवन बिताना कितना कष्टकर है। विधवाएँ तो हिन्दुओं के विमल यश की कालिमा हैं। ये पुरुषों के नग्न स्वार्थ और अन्याय की ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनकी सम्पूर्ण आशाएँ पति के शव के साथ भस्मसात् हो जाती हैं। उनका जीना-मरना बराबर है। उनके लिए संसार शून्य है।

यदि पति, सास, श्वसुर, ननद और पति के कुटुम्ब के अन्य व्यक्ति अच्छे रहे तो नववधू की कुशल है, नहीं तो श्वसुर का घर नरक से किसी अंश में भी कम नहीं। कुछ ही सौभाग्यशालिनी स्त्रियों का विवाहित जीवन सुखमय रहता है। किसी के पति रोगी, किसी के क्रोधी, किसी के नपुंसक, किसी के शराबी और किसी के वेश्याप्रेमी इत्यादि होते हैं। यदि स्त्री रोगी हो, तो पुरुष उसकी चिकित्सा का प्रयत्न इसलिए नहीं करता है कि एक के मर जाने से दूसरी नववधू मिलेगी। रुग्ना पत्नी के भरोसे न रह कर पुरुष अपनी काम-लिप्सा तृप्त करने के लिए दूसरा विवाह कर लेते हैं। परन्तु यदि पुरुष जन्म-रोगी हो तो उसकी पत्नी को उसी रुग्न-देवता का स्मरण-पूजन करके इस भवसागर को पार करना होगा। उसके लिए तो पुनर्विवाह का स्वप्न देखना भी महापाप है। उन स्त्रियों के दुर्भाग्य की तो कोई सीमा ही नहीं होती, जिनके पतिदेवता क्रोधी होते हैं। उनके लिए जूता-लात शुभाशीस है। जिनके पति शराबी हैं, उनकी क्या हालत होती है, वह भुक्तभोगिनी ही जानती हैं। घर में स्वस्थ-सुन्दरी स्त्रियों को छोड़ कर काम-लोलुप पुरुष वेश्याओं के यहाँ रात-दिन बिता दें, इसके लिए

कोई चूँ नहीं करता, किन्तु यदि स्त्री किसी सच्चरित्र पुरुष से भी दो-चार बातें कर ले, तो उसके ऊपर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है।

यह उन्नति का युग है। प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति उन्नति की ओर बढ़ रही है। साम्राज्यवादी साम्यवादी हो रहे हैं। परतन्त्र देश स्वतन्त्र हो रहे हैं। जो पिछड़े हुए थे वे आगे बढ़ रहे हैं। फलतः स्त्रियों को भी अब आलस्य छोड़ना चाहिए और पुरुषों की गुलामी से अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यद्यपि बड़े शहरों में रहने वाली कुछ गण्यमान्य महिलाओं ने महिला-सभा-समितियाँ क़ायम की हैं, तथापि उनसे साधारण स्त्री-समाज का कोई लाभ नहीं होता। इन समितियों का कार्य व्यापक रूप में होना चाहिए। उन्नत विचार के कुछ पुरुष हैं, जो स्त्रियों के सुधार से आन्तरिक सहानुभूति रखते हैं और प्रकट रूप से कुछ ठोस काम भी करते हैं; किन्तु ऐसे उदार हृदय परस्वार्थी पुरुषों की संख्या बहुत कम है। यदि स्त्रियाँ पुरुषों के अधिकार में रहती हैं, तो इसमें सारा दोष पुरुषों का ही नहीं है, स्त्रियाँ स्वयं भी इसके लिए दोषी हैं। एक पुरुष को घर के दस-बीस व्यक्तियों का भरण-पोषण करना पड़ता है, स्त्रियाँ इसमें तनिक भी आर्थिक सहायता नहीं करतीं। यदि स्त्रियाँ पुरुषों को अल्पांश में भी मदद कर सकतीं, तो पुरुषों की दृष्टि में उनका कहीं अधिक समादर रहता।

स्त्रियों को वर्तमान परवशता से विमुक्त होने के लिए दो प्रधान उपाय हैं—(१) शिक्षा और (२) आत्म-निर्भरता।

अधिकांश स्त्री-पुरुष स्त्री-शिक्षा का नाम सुन कर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। उनका कहना है कि स्त्रियों को पढ़ कर क्लर्क या डिपुटी नहीं बनना है, तो उनके पढ़ने की क्या आवश्यकता? उनको तो रसोई बनाना और कपड़ा सीना थोड़ा आ जाय, इतनी ही शिक्षा उनके लिए पर्याप्त है। स्त्रियों को पुरुषों की तरह शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, यह परम्परागत धारणा उनमें दृढ़ हो गई है और उनको शिक्षा देने में बहुत बाधा पहुँचाती है। जिस तरह अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य का प्रकाश परम आवश्यक है, उसी तरह अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए ज्ञानरूप सूर्य-रश्मि की ज़रूरत है। जन्म के बाद पशु और मनुष्य का साधारण ज्ञान बराबर ही रहता है। केवल शिक्षा से ही मनुष्य मनुष्य बनता है।

स्त्रियों की शिक्षा से मेरा अभिप्राय केवल यही नहीं कि वे बी० ए०, एम० ए० पास कर क्लर्क अथवा किसी और पद को प्रतिष्ठित करें। जो तीक्ष्ण बुद्धि वाली लड़कियाँ हैं अथवा जो बुद्धि-वैभव में पुरुषों से टक्कर ले सकती हैं, उन्हें स्कूल और कॉलेज की शिक्षा देना परम उपयोगी सिद्ध होगा। इसके सिवा साधारण लड़कियों को प्रारम्भ में मातृभाषा का यथेष्ट ज्ञान कराना चाहिए, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे सभा-समितियों में कुछ बोल सकें, दूसरे के वक्तव्य को समझ सकें और पत्र-पत्रिकाओं में छोटा-मोटा लेख लिख सकें। मातृभाषा का ज्ञान कराने के साथ-साथ ही सूत कातना, कपड़ा बुनना, कसीदा काढ़ना, बेल-बूटा बनाना, अनेकों प्रकार की भोजन-सामग्रियों का बनाना, बच्चों की सेवा-सुश्रूषा करना आदि गृह-विज्ञान की शिक्षाएँ दी जायँ। इतनी शिक्षा विवाह के पहले अवश्य हो जानी चाहिए। स्त्रियों को शिल्प सम्बन्धी ऐसी व्यवसायिक शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए, जिससे समय पड़ने पर घर में बैठे हुए कुछ पैसे उपार्जन कर सकें, जिससे उनका, उनके बच्चों अथवा पति का भी भरण-पोषण हो सके।

आत्म-निर्भरता—महिलाओं को प्रारम्भ से ही अपने पैर पर खड़ी होने की शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे समय पड़ने पर वे पति के अनाचारों से विमुक्त हो सकें। विवाह के समय अपने वर को अवश्य देख लें, उसके गुण-अवगुण को समझने का प्रयत्न करें। समय पर चूक कर पीछे पछताना मूर्खता है। जब तक अपनी इच्छा के मुताबिक़ घर-वर न मिले, अविवाहित रहने का प्रण करें। दुखी विवाहित जीवन से अविवाहित जीवन लाखों गुणा अच्छा है। अविवाहित जीवन व्यतीत करना असम्भव नहीं है। स्त्री-समाज की अहित करने वाली कट्टर-प्रथाओं का प्रतिकार और अवहेलना करें। उन अहितकारी प्रथाओं में कुछ सार नहीं है। यदि पति का आचार-व्यवहार विरुद्ध और दुखदायी हो, तो उसे समझा-बुझा कर उसे रास्ते पर लाने का प्रयत्न करें, नहीं तो उससे मुक्त होने का प्रयत्न करें।

—(डॉक्टर) रामचरित्र कुँवर

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

प्रभावान्वय

कथा-वस्तु में सामञ्जस्य का निर्वाह करने के लिए कार्यान्वय की विशेष आवश्यकता है। किन्तु यदि कहानी में एकता के सिद्धान्त (Principle of Unities) का पूर्ण रूपेण पालन किया जाय और उसमें एक स्थायी भाव भी निहित हो, तो भी प्रभाव की एकता के बिना कहानी सफल नहीं कही जा सकती। कहानी में प्रभावान्वय (Unity of Impression) उस प्रभाव की पूर्ण एकता का नाम है, जो पाठक-हृदय पर कहानी के सम्बन्ध में अङ्कित हो जाती है।

प्रभावान्वय के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि कहानी का उद्देश्य (Motive) एकान्त हो तथा परिणाम की अभिव्यक्ति आरम्भ में न की जाय। परिणाम का कहानी के समस्त विकास पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है। कहानी के तीन अङ्ग (वस्तु, पात्र एवं दृश्य) अत्यन्त प्रमुख हैं। प्रभावान्वय के सम्पादन के लिए इन अङ्गों में से केवल एक को ही प्रधानता देनी चाहिए। प्रसिद्ध कलाविद एड्गर एलेन पो (Edgar Allan Poe) ने प्रभावान्वय के महत्व के सम्बन्ध में जो शब्द कहे हैं, वे विशेष विचारणीय और उपयोगी हैं। उसका कथन है :—

A skilful literary artist has constructed a tale. If wise, he will not fashion his thoughts to accomodate his incidents; but having conceived with deliberate care a certain unique or single effect, to be wrought out, he then invents such incidents—he then combines such events as may best aid him in establishing this preconceived effect. If his very initial sentence tend not to the outbringing of this effect, then he has failed in his first step. In the whole composition there should be no word written, of which the tendency, direct or indirect, is not to the one pre-established design. And by such means, with such care and skill a picture is at length painted which leaves in the mind of him who contemplates it with a kindred art, a sense of the fullest satisfaction. The idea of the tale has been unblemished, because undisturbed.

इसका संक्षिप्त भावार्थ यह है, साहित्यिक कलाविद् अपनी कहानी की घटनाओं की सजावट में ही अपने विचारों और भावों का उपयोग नहीं करता। पहले वह एक अनुपम भाव या प्रभाव की योजना करता है। तदुपरान्त उस भाव या प्रभाव की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए घटनाओं का सहारा लेता है। कलाकार का प्रत्येक शब्द एवं वाक्य, प्रत्यक्ष या परोक्ष में, उस पूर्व-प्रतिष्ठित भाव और प्रभाव के अनुकूल होना चाहिए।

कहानी का शीर्षक

आजकल जिस प्रकार वाणिज्य-व्यवसाय के लिए विज्ञापन-कला एक उपयोगी साधन है, उसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में कहानी के लिए उत्कृष्ट और आकर्षक शीर्षक भी आवश्यक है। पाठक शीर्षक को देख कर यह निर्णय करता है कि कहानी पठनीय है या अपठनीय; उत्कृष्ट है या निकृष्ट। परन्तु, व्यवहार-जगत में, यह देखने में आता है कि कभी-कभी विज्ञापन जितना मनोहर और आकर्षक होता है, उतनी वह वस्तु नहीं होती,

जिसका विज्ञापन किया जाता है। साहित्य-क्षेत्र में भी इस प्रकार की हेय पद्धति का अनुकरण आरम्भ हो गया है।

कहानी के शीर्षक में निम्न-लिखित विशिष्टताओं का समावेश होना चाहिए। शीर्षक उपयुक्त, विशिष्ट, आकर्षक, सुन्दर, नव्य और छोटा होना चाहिए।

१—उपयुक्तता

यह शीर्षक की सर्व-प्रथम विशेषता है। इसका भाव यह है कि कहानी के विषय एवं भावना के अनुकूल ही उसका नामकरण किया जाय। जब शीर्षक कहानी के विषय से सम्पर्क नहीं रखता, तब वह पाठक की अरुचि का कारण बनने के साथ ही कहानी के सौन्दर्य को विनष्ट कर देता है। निष्कर्ष यह है कि शीर्षक को पढ़ कर पाठक कहानी के प्रति जिस भावना की प्रतिष्ठा करता है, वह कहानी पढ़ने के उपरान्त मिथ्या (असत्) सिद्ध हो जाती है।

यथा—यदि किसी कहानी का शीर्षक सत्याग्रह है, तो उसके विषय का सत्याग्रह-आन्दोलन से अवश्य ही सम्पर्क होना चाहिए। क्योंकि लोक-भावना उसमें महात्मा गाँधी के आन्दोलन की झलक देखना चाहती है।

२—विशिष्टता

शीर्षक का दूसरा गुण विशिष्टता है। इसका तात्पर्य यह है कि शीर्षक सामान्य न होना चाहिए। उसमें किसी न किसी प्रकार की विशेषता का सन्निवेश अपेक्षित है। श्री० चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार ने अपनी एक कहानी का नाम 'गोरा' रक्खा है। वैसे 'गोरा' शब्द का बड़ा सामान्य अर्थ लगता है; परन्तु इसका प्रयोग जिस तात्पर्य से यहाँ किया गया है, उससे इसमें विशिष्टता आ गई है। 'गोरा' किसी मानव-पात्र का नाम नहीं है। इस कहानी में एक पात्र 'बैल' है। वह बड़ा हट्टा-कट्टा और सङ्गमरमर जैसा धवल, गौर वर्ण है। बस इसीलिए कहानी का नाम 'गोरा' रक्खा गया है।

३—चित्ताकर्षण

यह उत्कृष्ट शीर्षक की तीसरी विशेषता है। इस गुण के बिना कहानी लोक-प्रिय नहीं बन सकती। हिन्दी कहानियों में इस विषय में सुधार की अति आवश्यकता है। उत्कृष्ट और कलापूर्ण कहानियों के शीर्षक कभी-कभी बड़े शुष्क और सामान्य रक्खे जाते हैं। 'असमान समाज' शीर्षक में आकर्षण का अभाव है। 'कानों का कँगना' शीर्षक बड़ा आकर्षक है। पाठक का मन बरबस इसे पढ़ने के लिए लग जाता है। अङ्गरेज़ी में एक कहानी है, जिसका नाम है 'Three Sundays in a week' (एक सप्ताह में तीन रविवार)। यह शीर्षक अपनी आकर्षकता में बड़ा अनूठा है। हिन्दी में भी ऐसे ही आकर्षक शीर्षकों की सृष्टि होनी चाहिए।

४—नवीनता और सूक्ष्मता

कहानी के शीर्षक में नवीनता होनी चाहिए। क्योंकि मानव-प्रकृति सदैव नवीनता की खोज में व्यस्त रहती है। वह नए-नए दृश्यों, विचारों, चित्रों और पद्धतियों को अपनाने में बड़ी तत्पर रहती है। यही कारण है कि संसार में नवीनता का जैसा स्वागत होता है, वैसा प्राचीनता का नहीं होता। इस सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि विशिष्टता के साथ नवीनता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है? सूक्ष्मता (Shortness) का गुण सौन्दर्यपूर्ण होने के साथ ही कहानी के लिए बड़ा उपयुक्त है। 'हार', 'आकाश दीप', 'पगली', 'गोरा' इत्यादि शीर्षक सुन्दर होने के साथ ही भावपूर्ण और नवीन हैं। हिन्दी में हमने एक कहानी का शीर्षक बड़ा असाधारण देखा है। वह है—'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी'। इस शीर्षक में सबसे अन्तिम विशिष्टता का अभाव होते हुए भी, यह विशिष्टतापूर्ण है।

अब हम संक्षेप में, शीर्षकों के प्रकार पर विचार कर लेना चाहते हैं।

(१) कुछ शीर्षक ऐसे होते हैं, जो काल्पनिकता व्यक्त करते हैं। उनके अवलोकन से ऐसा आभास होता है कि कहानी का विषय कल्पना-लोक की घटना पर निर्भर है। यथा:—श्री० जयशङ्कर 'प्रसाद' की 'स्वर्ग के खण्डहर' में।

(२) कुछ शीर्षक कहानी के प्रधान-भाव या रस के आधार पर होते हैं। कहानी के प्रधान भाव या रस से ही उनकी रचना की जाती है। यथा:—पण्डित बेचन पाण्डेय 'उग्र' की 'बुढ़ापा'।

(शेष मैटर ४७३ पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)
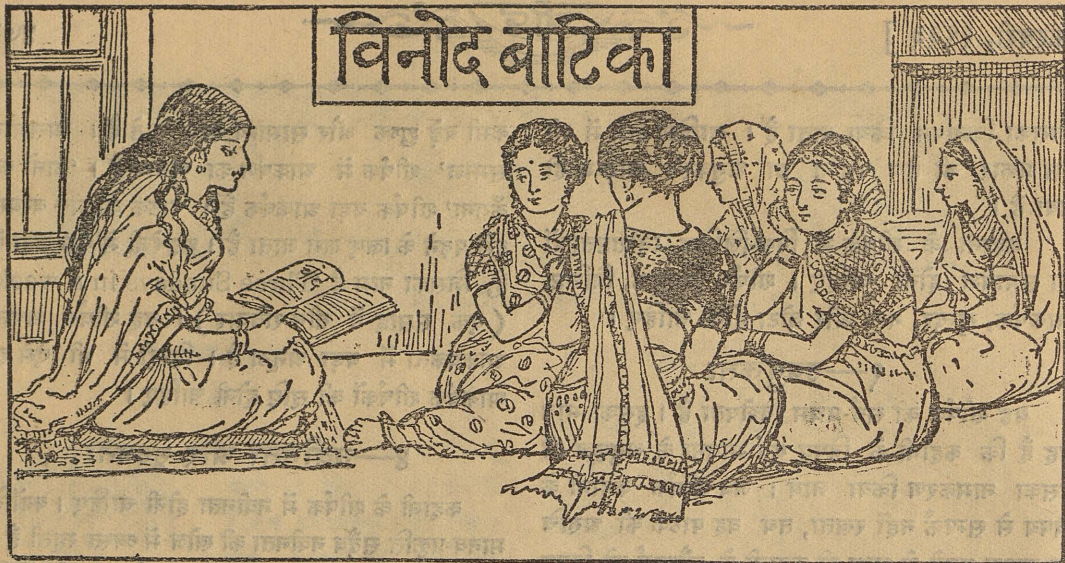
[मुन्शी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल्-एल० बी०]

मगदूम लाला पर वारण्ट

मगदूम लाला स्वभाव के सीधे आदमी थे। उनसे कोई भी प्रेम से बोल कर जो चाहे करा ले। उनके भाई रहसबिहारी बाबू ने जब उन्हें ह्वीलर कम्पनी में नौकर रखा दिया और वे एक 'बुकस्टॉल' पर किताबें और समाचार-पत्र बेचने लगे, तो लोग उन्हें ख़ूब ठग ले जाते थे। कोई आकर उनसे शराब की बातें करने लगता, बस वे मस्त हो जाते और अगर वह आदमी एक-दो किताबें 'पढ़ कर वापस कर देने' का वादा करके ले जाता तो फिर मगदूम लाला उससे वे पुस्तकें माँगने का विचार ही छोड़ देते थे।

साल भर पर जब लाला ने बुकस्टॉल का हिसाब दिया, तो २००) की कमी हुई। रहसबिहारी बाबू ने वे रुपए अपने पास से दे दिए और यही मुनासिब समझा कि मगदूम जी नौकरी छोड़ कर दौलतख़ाने की ही रौनक़ बढ़ाएँ।

अभी लाला जी को नौकरी छोड़े कुछ ही दिन हुए थे कि इलाहाबाद में पहली बार प्लेग फैला। हज़ारों आदमी शहर छोड़ कर दूसरी जगहों में चले गए। रहसबिहारी बाबू भी बाल-बच्चों को लेकर कानपुर चले गए और घर की देख-भाल के लिए मगदूम लाला को यहीं छोड़ दिया।

प्लेग से डर कर मुहल्ले के हज़ारों आदमी भाग चुके थे। मुहल्ला बहुत कुछ ख़ाली हो गया था। बस मगदूम लाला की तरह दस-पाँच आदमी बच गए थे। वे रोज़ शाम को मगदूम लाला के यहाँ आकर बैठ जाते और कुछ देर तक तरह-तरह की बहसें हुआ करतीं।

मगदूम लाला भगवती के उपासक थे और उनके पड़ोसी लल्लामल शिवजी के। इसलिए अक्सर बहस का विषय शराब और भङ्ग ही रहती थी। एक दिन मगदूम लाला की शराब की बोतल को देख कर लल्लामल ने उसे 'क़ारूरे की शीशी' कह दिया।

शराब की बोतल की इतनी कड़ी निन्दा मगदूम लाला के लिए असह्य हो गई। उन्होंने ज़ोर से चिल्ला कर कहा—नालायक़! उल्लू! पाजी! शर्म कर शर्म! देवी का प्रसाद रखने की चीज़ की इस तरह हँसी उड़ाता है। कमबख़्त, तू अन्धा हो जायगा।

लल्लामल ने जब देवी के प्रसाद का नाम सुना तो अपनी ग़लती मान ली और चुप हो गए। परन्तु सम्भूचा (शम्भु चाचा) भला ऐसे अवसर से कब चूकने वाले थे। उन्होंने धीरे से लल्लामल के कान में कुछ कह दिया। लल्लामल कड़क कर बोले—तो क्या मैं इनसे डरता हूँ?

"मगदूम लाला का क्रोध बड़ा भयानक होता है!" सम्भूचा ने मगदूम लाला की ओर देख कर कहा।

यह सुनते ही मगदूम लाला तो सचमुच एकदम जामे से बाहर हो गए और चिल्ला कर बोले—चोरी

और सीनाज़ोरी ! देवी का प्रसाद रखने की चीज़ को 'क़ारूरे की शीशी' कह दिया और तिस पर यह शोख़ी कि 'मैं क्या इनसे डरता हूँ !'

"फिर क्या कहता ?"—कुछ तेज़ होकर लल्लामल ने पूछा।

"बस, क़ारूरा ही कहना तुझे आता था ?"—मगदूम लाला ने और बिगड़ कर कहा—"अरे ! कहना ही था तो शर्बते-नीलोफ़र कह देता या अर्क़-बादियान कह देता। बेवक़ूफ़ कहीं का, तुझे शर्म नहीं आती ?"

"शर्बते-नीलोफ़र और अर्क़-बादियान क्या ?"—सम्भूचा ने मुस्कराते हुए पूछा।

"शर्बते-नीलोफ़र तपेदिक़ में दिया जाता है और अर्क़-बादियान हैज़े में।"—लाला जी ने उन्हें समझाया।

"और यह तुम्हारी शराब किस मर्ज़ की दवा है ?"—लल्लामल ने व्यंग्य की हँसी के साथ पूछा।

"फिर शरारत ! अच्छा ठहर।"—मगदूम लाला ने आस्तीन चढ़ाते-चढ़ाते कहा।

बस, फिर क्या था। लल्लामल ने भी उठ कर दालान का एक खम्भा थाम लिया और ऐसा मालूम होता था कि उसी को उखाड़ कर वह मगदूम लाला को मारेंगे। मगदूम लाला को सम्भूचा ने पकड़ लिया। मगर वे चिल्ला रहे थे—छोड़ दो सम्भू ! छोड़ दो यार ! आज मैं इसकी खोपड़ी का कचूमर काढ़ कर ही दम लूँगा।

"फाँसी हो जायगी !"—सम्भूचा ने समझाया।

"परवा नहीं, हो जाने दो। बस, तुम हट जाओ बीच में से।" मगदूम लाला हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए कहने लगे।

इधर लल्लामल ने भी और कस कर खम्भे को थाम लिया और बोले—छोड़ दो इसे सम्भू ! यह अपने को बड़ा बहादुर लगाता है। देखूँ तो यह मेरी खोपड़ी का कचूमर कैसे निकालता है ?

"तुम्हारी खोपड़ी का कचूमर तो ऐसे काढ़ूँ, जैसे कैथ फोड़ कर चटनी के लिए उसका गूदा निकाला जाता है !"—मगदूम लाला ने उसी ज़ोर से कहा।

"बस ! बस ! अब ज़बान सँभाल लो ! देखो सम्भू, मैं अपने को कितना सँभाले हुए हूँ ?"—लल्लामल ने खम्भा थामे हुए कहा—"मेरी खोपड़ी के साथ कैथ की तुलना बिलकुल ग़लत है ! कहाँ मेरी इतनी बड़ी खोपड़ी और कहाँ कैथ !"

"क्यों ?"—सम्भूचा और मगदूम लाला, दोनों ने एक साथ ही पूछा।

"बताऊँ ?"

"हाँ-हाँ, बताओ।"

"तो सुनो, एक दिन मैं हज़ारी के खेत में कैथ के पेड़ तले बैठा ताश खेल रहा था कि ऊपर से एक कैथ गिरा और मेरी खोपड़ी से टकरा कर दो टुकड़े हो गया।" लल्लामल ने बात की धुन में खम्भे को छोड़ दिया और कुछ पास आकर कहने लगे—"बस मगदूम भाई, मैं तो यह लीला देख कर अवाक् रह गया और हज़ारी भी मुँह बाकर टुकुर-टुकुर ताकता रह गया।"

ऐसी आश्चर्यजनक घटना का हाल सुन कर भला कौन ऐसा कठोर हृदय है, जो न पसीज जाता। मगदूम लाला भी भूल गए कि अभी-अभी उनसे और लल्लामल से लड़ाई हो रही थी। वे दौड़ कर लल्लामल की सजीव लोथ को उठाने का निष्फल प्रयत्न करने लगे, शायद गले लगाने की इच्छा से। सम्भूचा भी लल्लामल की खोपड़ी को थपकियाँ देकर उसकी मज़बूती की प्रशंसा

(४७१वें पृष्ठ का शेषांश)

(३) कहानियों के शीर्षक प्रधान पात्रों के नाम पर भी रक्खे जाते हैं। यथा :—'डोरा', 'चूड़ीवाली', 'पानवाली', इत्यादि।

(४) कुछ शीर्षकों की रचना प्रधान घटना के आधार पर की जाती है। यथा—'अग्नि-समाधि'।

(५) कभी-कभी शीर्षक कहानी की मुख्य वस्तु या हृदय का सूचक होता है। यथा—'आकाश-दीप', 'हार'।

(६) स्थान-सूचक शीर्षक भी होते हैं। परन्तु इनका प्रयोग अति न्यून होता है ; यथा :—'हिमाचल पर'।

शीर्षक किसी उद्देश्य का सूचक अवश्य हो, यद्यपि प्रच्छन्न रूप में हो। जो शीर्षक पाठक के मन को भ्रम में डालने वाले होते हैं, वे दूषित समझे जाने चाहिए; क्योंकि वे पाठक की एक प्रकार की उत्सुकता को जागरित करके उसे दूसरी ओर ले जाते हैं और पाठक को उस कहानी की सम्वेदना से विरत करते हैं।

❀ ❀ ❀

करने लगे। लल्लामल का क्या पूछना था। मारे ख़ुशी के 'वाह रे मैं और वाह रे मेरी खोपड़ी' चिल्लाने लगे।

अभी यह चहल-पहल चल ही रही थी कि इतने में बड़े लाला आ पहुँचे। ये प्लेग-ऑफ़िसर नियुक्त हुए थे। उन्होंने मगदूम लाला से अपने घर को Disinfect (सफ़ाई) कराने को कहा। बस, फिर क्या था, दूसरी बहस छिड़ गई।

"अजी, ऐसा करना भी नहीं !"—लल्लामल ने कहा।

"मेरी भी हिम्मत नहीं पड़ती !"—सम्भूचा ने समर्थन किया।

"भई, इसमें हर्ज ही क्या है ?"—बड़े लाला ने पूछा।

"अजी, यह मत पूछो !"—लल्लामल ने गम्भीरता से कहा।

"आख़िर सूनूँ भी तो !"

"लाला, अब तुम सरकारी नौकर हो। तुमसे कुछ कह कर अपनी जान आफ़त में कौन फँसाए ?"

"भाई, अपने मन की बात मुझसे कहो तब तो मैं भी जानूँ कि बात क्या है ?"

"बात यह है"—लल्लामल ने अपने चारों ओर देख कर कहा—"भाई, मैं सुनी कहता हूँ—झूठ क्यों बोलूँ, मेरी आँख की देखी तो है नहीं—मैंने यही सुना है कि जो तुम लोग घर धुलाते हो, इसी से प्लेग फैलता है और × × ×"

"नहीं भाई, बात यह है"—सम्भूचा ने कहा—"इस साल कुम्भ में लाट साहब आए थे और उन्होंने गङ्गा किनारे बड़ी भीड़ देखी तो कहा—'अभी हिन्दुस्तान में इतने आदमी हैं !' यह कह कर उन्होंने प्लेग की पुड़िया भीड़ पर छोड़ दी।"

"यह बात नहीं है"—बात काट कर मगदूम लाला ने कहा—"यह सब माई का कोप है !"

"तुम क्या जानों लाला ?"—लल्लामल बोले।

"तुम क्या जानों लल्ला ?"

ग़र्ज़ कि मगदूम लाला और लल्लामल की थमी-थमाई लड़ाई फिर भड़क उठी और उसी गुस्से में मगदूम लाला ने अपने मकान को धुलवाने की भी आज्ञा दे दी।

❀ ❀ ❀

इस घटना के दो-चार दिन बाद ही मानिक बाबू की एक बत्तख़ मर गई। उन्होंने मगदूम लाला को 'पिलाने' का वादा करके बत्तख़ को यमुना में फेंक आने को राज़ी कर लिया। लाला अभी फाटक से निकले ही थे कि लल्लामल से मुलाक़ात हो गई। उन्होंने छेड़ते हुए कहा—क्यों जी, बत्तकी माई को मार डाला ?

मगदूम लाला भी तो आख़िर थे मनुष्य ही, ऐसी अपमानजनक बात कैसे बर्दाश्त कर जाते, और फिर लल्लामल जैसे आदमी की बात ? उन्होंने झल्ला कर कहा—मारा तो है, तुम्हारे बाप का क्या ?

लल्लामल ने उन्हें चिढ़ाते हुए कहा—मुझे क्या करना है, आज तुमने बत्तकी माई को मारा है, कल तुम अपनी कपिला गाय को मार डालोगे !

'गाय मारना !' लल्लामल की यह बात उन्हें बुरी तरह खल गई।

"चुप बेवक़ूफ़ !"—ज़ोर से चिल्ला कर मगदूम लाला ने लल्लामल को डाँटा।

"सच कहे और पड़ोस में न रहे !"—लल्लामल ने फिर उसी व्यंग्य-भरी आवाज़ में कहा—"बत्तकी माई के बाद अब कपिला ही का तो नम्बर है !"

मगदूम लाला को अब इतना ग़ुस्सा चढ़ गया था कि उनके मुँह से शब्दों ने निकलने से जवाब दे दिया। उन्होंने झट बत्तख़ को ज़मीन पर फेंका और पास ही पड़ी हुई एक लम्बी-सी लकड़ी उठा कर लल्लामल को दौड़ा लिया।

लल्लामल को थोड़ी दूर दौड़ाने पर अन्त में मगदूम लाला बुरी तरह थक गए। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सामने एक गधा चर रहा था। लाला ने उसी को लल्लामल समझ कर लकड़ी उसकी पीठ पर जमा दी। इधर अचानक मार पड़ी तो गधे ने भी ज़ोर से दुलत्ती झाड़ी, जो लाला की खोपड़ी पर जा लगी और बेचारे मूँड़ थाम कर बैठ गए।

इधर लल्लामल जो भागे तो अन्त में सम्भूचा के द्वार पर ही जाकर साँस ली और हाँफते हुए बोले—सम्भूचा ! सम्भूचा !

सम्भूचा ने सिर उठा कर लल्लामल को इतना घबड़ाया हुआ देख कर पूछा—क्यों ? क्या बात है ?

"मैं सती होने जाता हूँ !"

"क्यों भाई, मामला क्या है ?"

"बस, आज अपना बिस्तरा यहीं लाता हूँ और तुम्हारे चबूतरे पर बिछा कर उसमें आग लगा कर सती हो जाऊँगा! मगदूम लाला पागल हो गया है। बत्तख़ी माई को मार कर अब मुझे मारने को लट्ठ लिए आ रहा है। बस, अब मैं सती हो जाऊँगा और साले को फाँसी दिलवाऊँगा।"

अन्त में सम्भूचा ने समझाया कि सती तो केवल स्त्रियाँ ही हो सकती हैं। पुरुषों को यह अधिकार नहीं। इसलिए अगर सती होना है तो पहले पुरुष से स्त्री बनो।

"पुरुष से स्त्री ? यह तो नहीं होने का।"

"तो फिर तुम सती भी नहीं होने के।"

❀ ❀ ❀

सम्भूचा मज़ाक़-पसन्द आदमी थे। वे फ़ौरन मगदूम लाला के घर चले। रास्ते में एक सिपाही मिल गया। उसे चार आने पैसे दिए और धीरे से कुछ समझा-बुझा कर उसे मगदूम लाला के घर आने को कह दिया।

मगदूम लाला का गुस्सा उतर गया था। वे सोच रहे थे कि लकड़ी का भरपूर हाथ खाकर लल्ला अवश्य ही पञ्चतत्व को प्राप्त हो गया होगा। बड़ी मुश्किल हुई। कमबख़्त मरी हुई बत्तख़ ने सारा गुड़ गोबर कर दिया। न वह मरती और न यह झगड़ा खड़ा होता।

"ग़ज़ब हो गया मगदूम।"—सम्भूचा ने पहुँचते ही कहा।

"मैं जानता था सम्भूचा, शुदनी सब कराती है।" रञ्जीदा होकर मगदूम लाला ने कहा—"ख़ैर, मैं तो चला फाँसी पर। अब कहा-सुना माफ़ करना और तुम भी अब भले आदमियों की तरह रहना, अच्छा!"

"भाई, तुम्हारा ग़ुस्सा भी बड़ा ख़राब है"—सम्भूचा ने कहा—"आख़िर उसकी × × ×"

"तो अब क्या होगा ?"—लाला घबरा कर बीच ही में बोल उठे।

"पकड़े जाओगे !"

"हाय बाप रे!—सम्भूचा! घर देखना और भइया × × ×"

अभी उनकी बात ख़तम भी नहीं होने पाई थी कि बाहर से किसी ने पुकारा—मगदूम लाला हैं।

"बस आ गए मुझे पकड़ने!"—डरते हुए मगदूम लाला ने कहा।

"कोई डर की बात नहीं हैं, मैं तुम्हारी ज़मानत कर दूँगा!"—धैर्य देते हुए सम्भूचा ने कहा।

"देखो, सुनो, मैं पाख़ाने में जाकर छिप जाता हूँ। पुलीस हो तो कह देना कि मैं घर में नहीं हूँ, दूसरा हो तो मुझे बुला × × ×"

"मगदूम लाला हैं ? वारण्ट है।"

"बाप रे!"—कह कर मगदूम लाला ने पाख़ाने में जाकर शरण ली।

"कौन है ? यहाँ आओ!"—सम्भूचा ने कहा।

सिपाही अन्दर आ गया।

"क्या है ?"—सम्भूचा ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"वारण्ट है।"

"किसके नाम ?"

"मगदूम लाला के नाम!"

"वह तो यहाँ नहीं हैं!"

"अच्छा तो मैं फिर आऊँगा!"

"फिर क्यों आइएगा ?"—लाला ने ज़नाने स्वर में भीतर से कहा—"आप घर देख लीजिए। आइए, सब जगह देख लीजिए! पाख़ाना भी देख लीजिए!"

लाला की बातें सुन कर सम्भूचा और सिपाही ने बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोकी। ख़ैर, सिपाही मगदूम लाला को बिना पकड़े ही चला गया।

उसके चले जाने पर मगदूम लाला पाख़ाने से निकले और सम्भूचा की राय से उसी रात को एक इक्के में पर्दा डाल कर और ज़नाने कपड़े पहन कर कानपूर पहुँचे। रहसबिहारी बाबू ने उनके इस तरह आने का कारण पूछा, तो सारा क़िस्सा सुना दिया।

रहसबिहारी ने सारा हाल सुना तो समझ गए कि सम्भू ने इसे बेवक़ूफ़ बनाया है। वे मगदूम पर भी नाराज़ हुए। जब वे बिगड़ चुके तो मगदूम लाला ने अपना सिर नीचे किए हुए कहा—वाह भाई साहब, मैं ऐसी बहादुरी करके घर आया तो आप मुझ पर बिगड़ रहे हैं, और जब ह्वीलर कम्पनी में २००) कम पड़ा तब बिना कुछ कहे ही आपने उसे दे दिया। वाह!
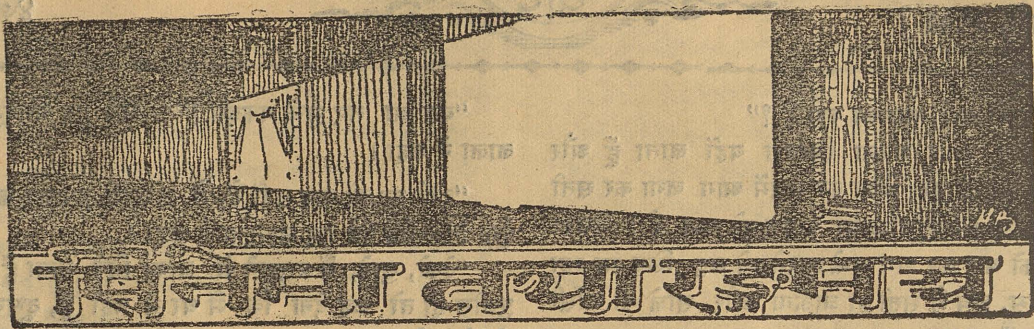
सिनेमा का उत्कृष्ट बालक-ऐक्टर

वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे देश के छोटे बालकों ने भी सिनेमा-क्षेत्र में पदार्पण करना आरम्भ कर दिया है। ऐसी हालत में यदि भारत में 'सिनेमा इण्डस्ट्री' उन्नति के ऊँचे शिखर पर जा पहुँचे तो कोई आश्चर्य नहीं।

कदाचित् छाया-चित्र-प्रेमियों ने मास्टर मोदक का नाम सुना होगा। इस छोटे से विचित्र बालक ने बहुत थोड़ी अवस्था में भारतीय सिनेमा-क्षेत्र में अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली है। मास्टर मोदक का जन्म अहमदनगर में सन् १९१९ ई० में हुआ था। नितान्त अबोधावस्था से ही इसको गाने का बड़ा शौक़ था। उसी उम्र में इसने कई गाने सीख लिए थे। ग्रामोफ़ोन के रेकार्ड सुनने का इसको बड़ा ही चाव था। जब कभी कोई रेकार्ड सुनने लगता, तो ख़ुद भी उसी के साथ गाने की चेष्टा करता। इस प्रकार कुछ दिनों बाद यह भली-भाँति गा लेने लगा। अब क्या था, जहाँ देखो, चाहे स्कूल हो या कोई सामाजिक सभा, मास्टर मोदक की चाह होती थी। होते-होते यह गाने में इस क़दर होशियार हो गया कि इसके गाने की माँग बहुत बढ़ गई। इसी प्रकार की सामाजिक सभा में एक रोज़ मोदक ने अपने चित्ताकर्षक गाने से 'सरस्वती फ़िल्म कम्पनी' के डाईरेक्टर मिस्टर-भालचन्द्र को मुग्ध कर दिया। भालचन्द्र से न रहा गया। उनकी इच्छा हुई कि इस होनहार बालक को अपनी कम्पनी में ले जाएँ और टाकीज़ में काम कराएँ। ख़ैर, भालचन्द्र की इच्छा पूरी हुई और मोदक को उन्होंने अपनी कम्पनी में रख लिया और 'श्यामसुन्दर' नामक 'टाकी' में कृष्ण का पार्ट दिया।

मास्टर मोदक की आयु केवल १३ वर्ष की है, इसका सारा शरीर सुडौल और सुन्दर बना हुआ है। मुख से भोलापन टपकता है। उसकी आँखें चित्ताकर्षक तथा हृदय-भेदी हैं। उसकी चाल अनोखी तथा मनोहर है। उसकी आवाज़ सुरीली और हृदय को बस में कर लेने वाली है। थोड़े शब्दों में मास्टर मोदक एक विचित्र बालक है।

मास्टर मोदक को प्रत्येक फ़िल्म में काम करने के बदले दो हज़ार रुपए मिलते हैं। आजकल यह "वेगेबॉण्ड प्रिन्स" नाम के खेल में काम कर रहा है।

'श्यामसुन्दर' नामक खेल में मास्टर मोदक की ऐकटिङ्ग दिल को लुभाने वाली है। इसमें इसने बड़ी सफलतापूर्वक काम किया है। जब यह कृष्ण के अभिनय में अपनी प्रिया राधा को, उसके पिता के सामने, अपना सच्चा प्रेम तथा अटल स्नेह जनाता है और उसे अपने प्रेम का विश्वास दिलाता है, उस समय इसकी ऐकटिङ्ग बिल्कुल स्वाभाविक होती है। जब यह फलों की दुकान से फल चुराता है, उस समय इसके मुख से इस क़दर भोलापन टपकता है कि जनता मुग्ध होकर अपने को भूल सी जाती है। फिर जब यह गोकुल ग्राम के अधिवासियों को कंस के अत्याचारों का सामना करने के लिए व्याख्यान देकर तथा गाकर उन्हें उत्साहित करता है, उस समय उसकी ऐकटिङ्ग दर्शकों को चमत्कृत कर देती है, फिर जब वह राधा को डूबने से बचाता है और उससे क्षमा चाहता है, उस समय की ऐकटिङ्ग भी बड़ी ही सुन्दर है। जब वह 'कंस' को मारने को जाता है, उस समय क्रोध के भाव की स्वाभाविकता का प्रदर्शन लोगों को मुग्ध कर देता है।

मास्टर मोदक भारत के बालक-ऐक्टरों में सब से बढ़ कर है। यह अपनी चित्ताकर्षक मूर्ति से, सुन्दर चमत्कारपूर्ण ऐक्टिङ्ग से और मधुर तथा सुरीली आवाज़ से जनता

(शेष मैटर ४८२ पृष्ठ के पहिले कॉलम के नीचे देखिए)

मानवोद्यान के नव-विकसित कुसुम

गाम्भीर्य

हर्ष

रुदन

सुप्रसिद्ध फ़िल्म-डाइरेक्टर श्री० भावनानी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती एनाची रामराव।

कुमारी अमला नन्दी—जो कलकत्ता-निवासी श्री० अक्षय-कुमार नन्दी की कन्या हैं। इनकी उम्र अभी कुल १४ वर्ष की है। इन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों में भारतीय नृत्य-कला दिखा कर बड़ी सुख्याति प्राप्त की है।
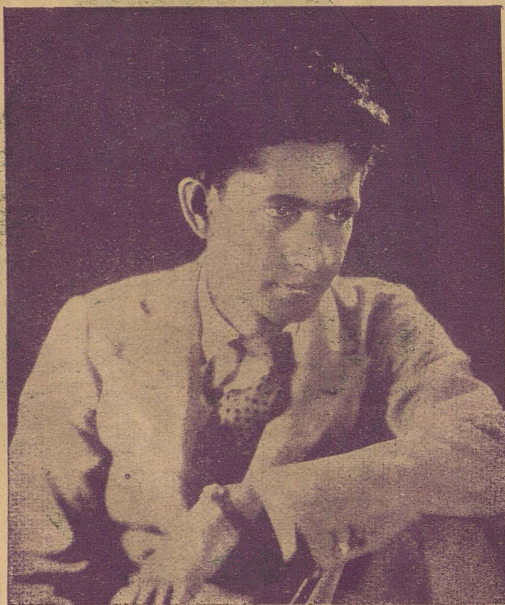
फ़िल्म-डाइरेक्टर मि० जयगोपाल पिल्लाई।
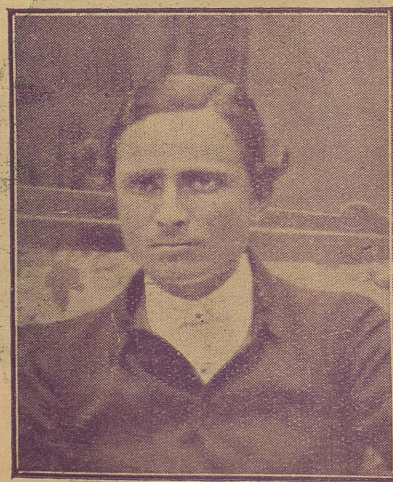
बम्बई की सरोज मूवीटोन सिनेमा कम्पनी के मालिक श्री० नानूभाई बी० देसाई।

सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार मिस ज़ुबैदा

इन्होंने इम्पीरियल कम्पनी की 'आलमआरा' तथा सागर कम्पनी की 'सुभद्राहरण', और 'मीराबाई' आदि खेलों में काम करके अच्छा नाम कमाया है।

मिस फ़्लोरेन्स केप, जो लगडन की एक बहुत पुरानी पोस्ट-वीमेन (पत्र-वाहिका) हैं। आप तीस वर्षों से डाक-विभाग में काम कर रही हैं और अब तक ४०,२०० मील चल चुकी हैं।
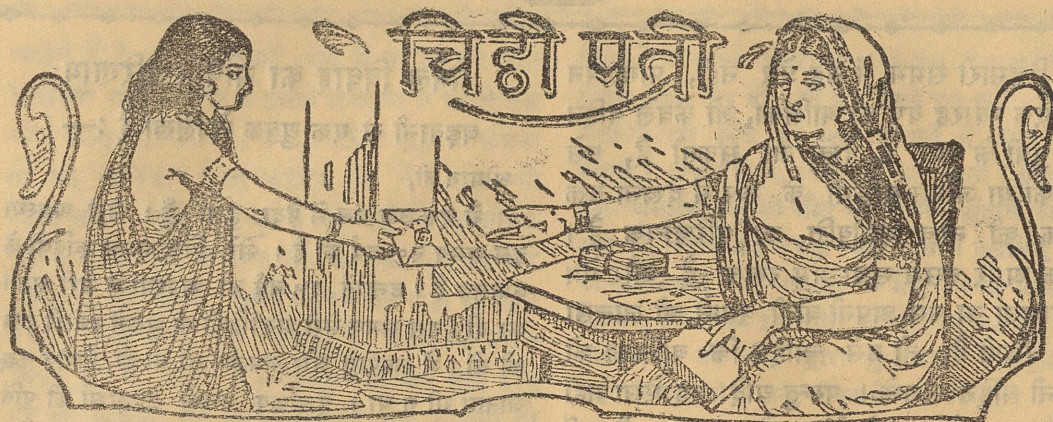
ताल्लुक़ेदार की अभागिनी पत्नी

श्रीमान् सम्पादक जी, सादर नमस्ते !

मैं आपकी सेवा में अपनी दुःख-गाथा लिखती हूँ, कृपा करके अपने 'चाँद' पत्र द्वारा उचित उपाय बता कर मेरा सङ्कट दूर कीजिए।

मैं × × × ज़िले के एक प्रसिद्ध ताल्लुक़ेदार की पत्नी हूँ। पतिदेव एक नीच प्रकृति के मनुष्य हैं। उनकी सङ्गति व्यभिचारी, बदमाशों और गुण्डों की है। हर वक्त उन्हीं कुकर्मी लोगों के साथ मदिरा और मांस के नशे में चूर रहते हैं। अलग एक मकान बनवाया है, उसी में यह सब रहस्य-लीलाएँ किया करते हैं। एक मर्तबा उन पर डकैती का मामला भी चल चुका है। घर तो कभी आते ही नहीं। और अगर कभी कृपा की भी, तो रात को ग्यारह-बारह बजे मदिरा देवी के नशे में मस्त। गालियों से ही मेरा स्वागत करके फिर चले जाते हैं। क़र्ज़ भी काफ़ी हो गया है। मेरे सब गहने तक बिक चुके हैं। हालत ख़राब हो गई है। मुझे उनकी तो कोई फ़िक्र नहीं है, मगर मेरे एक पुत्र और कन्या है। मेरी लड़की की आयु कम से कम १६ साल की है, परन्तु उसकी शादी की कोई परवाह ही नहीं करते।

लड़का क़रीब १४ साल का है, परन्तु उसका यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ। इन सब बातों को देख कर मैं दिन-रात घुला करती हूँ। अब यह सब मेरे लिए असह्य हो गया है। जी में आता है कि विष खाकर इन सब दुःखों से छुटकारा पाऊँ। अब आपकी शरण ली है सम्पादक जी, जो उचित उपाय हो बताइए। आपकी,

—महादुःखिनी बहिन

[इस महादुःखिनी बहिन के कष्टों के प्रतिकार का एकमात्र उपाय यही है कि वे क़ानून की शरण लें और किसी वकील की मार्फ़त एक दरख़्वास्त ज़िला मैजिस्ट्रेट के पास भेजवा दें, ताकि रियासत का प्रबन्ध उनके निकम्मे पति के हाथों से निकल कर स्वयं उनके हाथ में आ जाय। अन्यथा जब ताल्लुक़ेदार साहब की ऐसी ही दशा है, तो क़र्ज़ और भी बढ़ जाएगा, रियासत बिक जायगी और उन्हें तथा उनके बच्चों को और भी कष्ट भोगना पड़ेगा।

—स० 'चाँद']

❁ ❁ ❁

प्रेम या पागलपन ?

हज़ारीबाग़ से एक युवक ने लिखा है :—

मैं सारन ज़िले का रहने वाला हूँ। मेरा जन्म एक प्रतिष्ठित कायस्थ-कुल में हुआ है। मेरी उम्र १७ साल की है। जब मैं आरा में प्रवेशिका की परीक्षा की तैयारी में था, तो वहीं मैं एक प्रतिष्ठित कुल की सजातीया बालिका से प्रेम करने लगा। बालिका की उम्र ११ वर्ष की थी। वह मुझसे अधिक धनवान कुल की है। परन्तु मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि उसके सिवा दूसरी कोई मेरी जीवन-सङ्गिनी नहीं हो सकती। मैं दिन-रात इसी चिन्ता में रहता हूँ और मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ ?

आपका,

× × ×

[हमारी समझ में यह प्रेम नहीं, पागलपन है। एक ग्यारह वर्ष की बालिका, जो केवल बहिन या पुत्री के रूप में देखी जा सकती है, उसे प्रेमिका या जीवन-सङ्गिनी के रूप में देखना उक्त युवक की नीच मनोवृत्ति का परिचायक है। युवक अगर उससे सच्चा प्रेम रखता है और प्रेम में वासना या उसे अपनी बीबी बनाने की लालसा नहीं छिपी है, तो उसे चाहिए कि बालिका को अपनी बहिन समझे। परन्तु यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो वह 'प्रेमी' बनने का दावा भी नहीं कर सकता। क्योंकि सच्चा प्रेम वासना-रहित होता है। इसके विपरीत वह प्रेम नहीं, पाप है। इसलिए युवक को हमारी सलाह है कि इस व्यर्थ के पचड़े में न फँसे, जी लगा कर पढ़े-लिखे और प्रेम क्या होता है, उसे समझने की चेष्टा करे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

(४७६वें पृष्ठ का शेषांश)

को दीवाना बना देता है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जिसने कि इसकी ऐक्टिङ्ग देख कर तथा इसके मधुर गाने को सुन कर तारीफ़ न की हो।

यह प्रायः देखा गया है कि बहुत से गाने वाले गाते समय अपना मुँह अजीब प्रकार का बना लेते हैं, आँखें बन्द कर लेते हैं, चेहरे पर बल पड़ जाते हैं और ऐसा मालूम होता है कि मानों बड़ी मेहनत पड़ रही है, परन्तु मास्टर मोदक गाते समय अपना मुख स्वाभाविक रखता है।

मास्टर मोदक एक होनहार बालक-ऐक्टर है। यदि इसको चतुर सङ्गीतज्ञ गाने की शिक्षा दें, तो यह सिनेमा-क्षेत्र में अचम्भे का काम करेगा और सिनेमा-इण्डस्ट्री को बड़ा लाभ पहुँचावेगा।

—विक्रमादित्यसिंह निगम, बी० ए०

❀ ❀ ❀

बेमेल विवाह का भीषण परिणाम

बड़वानी से एक युवक ने लिखा है :—

श्रीमान जी,

मैं एक उच्च वंश में पैदा हुआ हूँ। मेरी अवस्था इस समय २० वर्ष की है। मेरे पिता-माता रूढ़ियों के उपासक हैं। उन्होंने १५ वर्ष की अवस्था में मेरी शादी कर दी। उस समय मेरी अर्द्धाङ्गिनी जी मुझसे ड्योढ़ी उम्र की थीं। मैं अल्पायु और कमज़ोर तो था ही, विशेष कुछ जानता भी न था। इसलिए उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकता था। इस अपराध में उन्होंने एक दिन चाँटों और घूँसों से मेरी अच्छी तरह मरम्मत कर दी। अब वे कई वर्षों से अपने नैहर में हैं और मैं परदेश में हूँ। कुछ उनके साथ रहने के कारण तथा कुसङ्गत में पड़ जाने के कारण मुझे हस्त × × × की बुरी लत पड़ गई है। अब तक २१९ बार यह कुकर्म कर चुका हूँ। दिन में दो-दो, तीन-तीन बार तक की नौबत आ जाती है। कभी अपने को लानत-मलामत करता हूँ। शपथ खाता हूँ कि ऐसा काम न करूँगा, परन्तु फिर सब भूल जाता हूँ, मेरी हालत उत्तरोत्तर ख़राब होती जाती है। परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि मैं अपनी पत्नी के साथ रहूँ, तो मेरी दशा सुधर सकती है। परन्तु पत्नी जी के नैहर वाले उन्हें भेजने का नाम ही नहीं लेते। मैंने पत्नी जी को सब हाल लिख भी दिया है। परन्तु वह भी कुछ ध्यान नहीं देतीं। अब मैं क्या करूँ? क्या दूसरी शादी कर लूँ या आत्महत्या कर लूँ?

भवदीय,

—एक पतित

[वास्तव में युवक की दशा बड़ी ही दयनीय है; बल्कि यों कहना चाहिए कि उसके सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित है। ऐसी विकट परिस्थिति में हमारी सलाह है कि वह व्यर्थ की लोक-लज्जा छोड़ कर अपने तथा अपनी पत्नी के अभिभावकों पर सारी बातें प्रगट कर दे। अगर स्वयं ऐसा करने का सत्साहस उसमें न हो, तो अपने किसी मित्र द्वारा करा दे। और पत्नी के अभिभावकों से पूछ ले कि आख़िर वे क्या करना

चाहते हैं? यद्यपि हमारे देश में तलाक़ की प्रथा प्रचलित नहीं है और न इसके सम्बन्ध में अभी तक कोई क़ानून ही बना है। परन्तु नैतिक दृष्टि से पत्नियों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे पतिदेव को त्याग सकें। यदि इस युवक की पत्नी ने आजीवन इसके साथ कोई सम्बन्ध न रखने का निश्चय कर लिया है, तो युवक अपने जीवन की रक्षा के लिए दूसरा विवाह भी कर सकता है, जैसा कि उसने अपने पत्र में लिखा है। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी अपनी वह बुरी कुटेव तो उसे छोड़नी ही पड़ेगी। उसे अपने मन पर अधिकार करना चाहिए; ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताने का अभ्यास करना चाहिए और मन की इस गन्दी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। हमें विश्वास है कि वह अगर दृढ़तापूर्वक अपनी आदत से बाज़ आने की चेष्टा करेगा, तो इस गन्दी आदत का सदा के लिए छूट जाना कोई असम्भव बात नहीं है। दृढ़-प्रतिज्ञ मनुष्य सब कुछ कर सकता है। इसके साथ ही इस युवक को कदापि कभी एकान्त में नहीं रहना चाहिए। मन से भी उस भावना को दूर करना चाहिए और सारे मित्रों पर यह बात प्रगट कर देनी चाहिए। ऐसे भयङ्कर ऐब को छिपाना कदापि बुद्धिमानी की बात नहीं।

—स० 'चाँद']

❁ ❁ ❁

कुरूपता का परिणाम

एक बहिन लिखती है :—

श्रद्धेय सम्पादक जी,

मेरे स्वामी साक्षात् देवता हैं। परन्तु मेरे और उनके दुर्भाग्यवश मेरा और उनका पाणिग्रहण संस्कार बिना एक दूसरे की इच्छा के हो गया। वह जैसे सुन्दर हैं, उन्हें स्त्री भी वैसी ही सुन्दरी मिलनी चाहिए। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा न हुआ। क्योंकि मैं रूपवती तो हूँ ही नहीं, साथ ही मेरा रङ्ग भी श्याम है। इसलिए वे मुझे बिलकुल नहीं पसन्द करते। यद्यपि मेरा रङ्ग घोर काला नहीं है, परन्तु चेहरे पर मुँहासों के अधिक निकलने के कारण चेहरा भद्दा हो गया है। इसीलिए वे मुझसे सदैव दूर ही रहते हैं। उनके इस तरह किनाराकशी से मेरे दिल पर क्या बीतती है, उसे मैं कैसे बताऊँ? अच्छा होता, अगर मैं मर जाती! परन्तु मेरी जैसी अभागिनियों को मौत कहाँ? मैंने मुँहासे की बहुत दवा की, परन्तु वह अच्छा नहीं होता। इसलिए 'चाँद' की पाठिकाओं और पाठकों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि यदि किसी को इस रोग की कोई आज़माई हुई दवा मालूम हो, तो 'चाँद' द्वारा मुझे बताने की कृपा करें, नहीं तो अब तो मैं इस जीवन से ऊब उठी हूँ।

आपकी,

—कृष्णादेवी

[आशा है, 'चाँद' के पाठक-पाठिकाओं में से कोई सज्जन मुँहासे की कोई आज़माई हुई दवा बता कर इस दुःखिनी का उपकार करेंगे। साथ ही इस बहिन के पतिदेव से हमारी प्रार्थना है कि केवल रूप के मोह में पड़ कर अपनी पाणिगृहीता पत्नी का तिरस्कार न करें। उन्हें स्वयं मुँहासे की दवा तलाश करनी चाहिए और इस बेचारी अबला को सान्त्वना देनी चाहिए। आख़िर, उस बेचारी का इसमें अपराध ही क्या है?

—सं० 'चाँद']

❁ ❁ ❁

सास-बहू का झगड़ा

दिल्ली से एक भाई ने लिखा है :—

सम्पादक जी महोदय,

सादर नमस्ते!

गत ज्येष्ठ मास में मेरा विवाह हुआ था और गौना हुए तो अभी बहुत थोड़े ही दिन बीते हैं। परन्तु अभी से मेरे घर में कलह का सूत्रपात हो गया है। मेरी माता जी का स्वभाव कड़ा है। वे बात-बात में नाराज़ हो जाती हैं। बहू अभी हाल की आई है, वह बहुत कम बोलती है। बस, यही उसका अपराध है। माता जी उसे बात-बात में कोसा करती हैं। वह बेचारी घबरा रही है कि अभी से यह हाल है तो आइन्दे इस घर में कैसे जीवन कटेगा। वह बार-बार मुझसे कहती है कि मुझे नैहर भे

दो। मैं परेशान हूँ कि आख़िर क्या करूँ? माता जी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। स्त्री मानती ही नहीं, इधर स्त्री से मुझे प्रेम भी काफ़ी हो गया है। मेरी बड़ी सेवा करती है। परन्तु रङ्ग-ढङ्ग से मालूम होता है कि माता जी के साथ उसका निभना कठिन है। अब आपही बताइए कि मैं किसे छोड़ूँ, माता को या स्त्री को? मैं कोई रोज़गार भी नहीं करता। अगर स्त्री को लेकर माँ से अलग रहूँ, तो ख़र्च कहाँ से आवेगा। कृपया आपही कोई उपाय सोच कर बताइए।

आपका,

×××गुप्त

[गुप्त जी की समस्या तो वास्तव में बड़ी विकट है और इसके सुलझने का सीधा रास्ता यही है कि या तो उनकी श्रीमती जी बूढ़ी सास की बातों का ख़याल न करें या गुप्त जी अपनी स्त्री को लेकर प्रगट रूप से अपनी माता से अलग रहें। ऐसी दशा में उन्हें पहले इस योग्य बनना चाहिए कि अपना और अपनी स्त्री का भरण-पोषण कर सकें और तब तक के लिए पत्नी जी को नैहर में ही रहने दें। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

विषम समस्या

ग्वालियर राज्य से एक सज्जन ने लिखा है—

श्रीमान एडीटर साहब, सादर प्रणाम!

मेरे एक मित्र, जो माथुर कायस्थ हैं और इस समय शिक्षा पा रहे हैं, एक बड़ी ही कठिन समस्या में पड़ गए हैं। थोड़े दिन हुए एक स्वजातीय लड़की से उनका प्रेम हो गया है। वह लड़की भी उनसे प्रेम करती है। दोनों में दीर्घ काल से पत्र-व्यवहार भी चल रहा है। परन्तु लड़की के अभिभावकों ने उसकी शादी एक दूसरे पात्र से ठीक कर ली है, जिसे वह बिलकुल पसन्द नहीं करती। उसने एक पत्र द्वारा अपने पिता से निवेदन भी कर दिया था कि वे उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह न करें, परन्तु पिता जी पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। अब परिस्थिति ऐसी विकट हो गई है कि उसकी कल्पना करते ही दिल घबरा उठता है। क्योंकि प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही अपने प्रण पर दृढ़ हैं। उधर शादी भी पक्की है। लड़की चाहती है कि मुझे अब इस सम्बन्ध में शर्म न खोना पड़े और यह शादी भी, जो उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रही है, न होवे। बड़ी विकट समस्या है। कृपा करके आप कोई उचित उपाय सोच कर बताइए।

आपका,

—एक जानकार

[विवाह का सम्बन्ध जीवन से है। उसका परिणाम पति और पत्नी दोनों को ही आजीवन भोगना पड़ता है। इसलिए सङ्कोच और लोक-लज्जा में पड़ कर आजीवन के लिए एक मनोकष्ट सिर पर लाद लेना कदापि उचित नहीं। ऐसी दशा में सीधा-सादा उपाय तो यही है कि दोनों प्रेमी और प्रेमिका खुल्लमखुल्ला अपने अभिभावकों को बता दें कि हम दोनों एक दूसरे को चाहते हैं और लड़की स्पष्ट शब्दों में साहस करके अपनी इच्छा के विरुद्ध पक्के किए हुए विवाह से इन्कार कर दे। परन्तु यदि ऐसा होना किसी तरह भी सम्भव न हो तो पत्र-प्रेरक महाशय स्वयं अग्रसर होकर लड़की और लड़के के अभिभावकों पर सारी बातें प्रगट कर दें और अगर मुमकिन हो तो उनका पत्र-व्यवहार भी उनके अभिभावकों के सामने रख दें।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक विपद्-ग्रस्ता

एक विपद्ग्रस्ता रोगिनी ने लिखा है :—

सम्पादक जी,

मैं एक अत्यन्त ग़रीब स्त्री हूँ। मेरे पति साधारण कृषक हैं। मेरे गर्भाशय में सूजन है, जिससे हर घड़ी थोड़ी-थोड़ी पीड़ा बनी रहती है। परन्तु कभी-कभी पीड़ा इतनी बढ़ जाती है कि मैं कोई काम नहीं कर सकती, इससे मेरे पतिदेव और मेरे बच्चे भूखे रह जाते हैं। पतिदेव भी खाना पकाने में असमर्थ हैं। क्योंकि लगाव पड़ जाने से उनका दाहिना हाथ एकदम ख़राब हो

गया है। मुझसे पति और बच्चों का भूखा रहना नहीं देखा जाता। मैंने शफ़ाख़ाने में जाकर अपने रोग का इलाज कराया, परन्तु उससे कोई फ़ायदा नहीं हुआ। दवा में ख़र्च करने के लिए पैसे मेरे पास नहीं हैं। इसलिए मैं चाहती हूँ कि कोई दयालु भाई या बहिन मुफ़्त में मेरा इलाज करा दें। इसके लिए वे मुझे जहाँ बुलावें, मैं आने को तैयार हूँ। मैंने अपना पता 'चाँद'-सम्पादक को दे दिया है। जो सज्जन या बहिन मेरी सहायता करना चाहें, कृपया जवाबी कार्ड भेज कर उनसे मेरा पता पूछ लें।

आपकी,

—एक विपद्ग्रस्ता

[आशा है, कोई दयालु सज्जन इस विपद्ग्रस्ता बहिन की सहायता करेंगे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक सज्जन की उदारता

नीचे लिखे सज्जन लिखते हैं :—

श्रीमान् जी,

मैंने अपने समाज की अनाथा विधवाओं की यथासाध्य सेवा करने का विचार किया है, इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि यदि कायस्थ जाति की कोई विधवा आपसे किसी प्रकार की सहायता की याचना करे या कोई विधवा पुनर्विवाह करने की इच्छा प्रगट करे, तो कृपया नीचे लिखे पते पर मुझे सूचना दें। मैं यथासाध्य उस बहिन की अवश्य सहायता करूँगा। मेरी शक्ति अल्प है, इसलिए अभी मैंने केवल कायस्थ जातीय विधवाओं की सेवा का ही विचार किया है और मेरी यह भी धारणा है कि परदा आदि कुप्रथाओं के कारण इसी जाति की विधवाओं को सबसे अधिक कष्टों का सामना करना पड़ता है।

आपका,

रामसरूप निगम,

इगज़्क्यूटिव इञ्जीनियर्स ऑफ़िस

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे, रतलाम

[हम श्री० रामसरूप जी निगम महोदय की इस उदारता के लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं। हमारी समझ में केवल कायस्थ जाति ही नहीं, वरन् सभी जातियों की विधवाओं को कष्ट भोगना पड़ता है, और जब तक हिन्दू जाति में अबाध रूप से विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं प्राप्त हो जायगा, तब तक उनका कष्ट भी दूर न होगा। तथापि जिससे जितनी भी सेवा इन अनाथा बहिनों की बन पड़े, करनी चाहिए।

—सं० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

स्वप्नदोष का रोगी

एक युवक ने लिखा है :—

श्रीमान् सम्पादक जी,

नमस्ते ! मैं कॉलेज का विद्यार्थी हूँ। मेरी उम्र प्रायः १९ वर्ष की है। प्रायः पाँच वर्षों से मैं कुसङ्गति में पड़ कर स्वप्नदोष से कष्ट पा रहा हूँ। कभी-कभी रात में दो-दो बार मुझे स्वप्नदोष हो जाता है। प्रायः एक महीने से पेशाब के साथ धातु भी जाने लगा है। शरीर और मस्तिष्क कमज़ोर होने लगा है। मैं ग़रीब विद्यार्थी हूँ। तथापि प्रायः ५०) की दवाएँ खा चुका हूँ। परन्तु कोई फ़ायदा नहीं मालूम होता। आप अपने 'चाँद' द्वारा कृपा करके कोई ऐसा उपाय या दवा बताइए, जिससे मेरे जीवन की रक्षा हो।

आपका,

× × ×

[इस सम्बन्ध में 'चाँद' के इन 'चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भों में कई पत्र, दवाओं के नुसख़े और कई तरह के प्राकृतिक उपाय छप चुके हैं। और इससे अधिकांश रोगियों का उपकार भी हुआ है। अतः थोड़े शब्दों में हम यहाँ फिर उन्हीं उपायों का उल्लेख कर देना उचित समझते हैं। स्वप्नदोष बहुधा उसी अवस्था में होता है, जब मनुष्य पीठ के बल अर्थात् चित सोया होता है। स्त्री-प्रसङ्ग की चिन्ता, दूसरे मनोविकार, गुरुपाक भोजन और शारीरिक थकावट आदि और भी कई कारण इसके होने के हैं। हमारे ख़याल में

यह कोई मारात्मक रोग नहीं है और इससे घबराना नहीं चाहिए। व्यर्थ दवाएँ खाने से भी यह दूर नहीं होता। इससे बचने का एकमात्र उपाय है, मन को तथा अपने आहार-विहार को संयत रखना; इसकी चिन्ता भूल जाना और नियमित रूप से व्यायाम करना। उक्त नवयुवक भाई को चाहिए कि रात को ज़मीन पर चटाई बिछा कर या लकड़ी की चौकी पर सोया करें। कमर में पीछे की ओर एक गेंद या ऐसी कोई चीज़ बाँध लें, जिससे पीठ के बल सोने में बाधा पड़े। इसके साथ ही पाख़ाना जाने के समय, दोनों वक्त नीचे की दोनों इन्द्रियों के मध्य भाग पर बीस मिनिट तक ठण्ढे पानी के छींटे दिया करें। सूर्योदय से पूर्व कम से कम पाँच मील टहलें। मन को संयत रक्खें और देर से पचने वाली तथा मसालेदार चीज़ें न सेवन करें और एकान्त में न सोवें। हमारे ख़याल में इन नियमों का सम्यक् पालन करने से उनकी बीमारी दूर हो जायगी?

—स० 'चाँद']

❁ ❁ ❁

विद्यार्थी की पत्नी

'चाँद' की एक ग्राहिका लिखती हैं :—

सम्पादक जी महोदय,

आपके 'चाँद' में बहुत से स्त्री और पुरुष पत्र द्वारा अपने हृदय के उद्‌गार प्रगट किया करते हैं और आप भी उन्हें यथोचित उत्तर देकर सान्त्वना प्रदान किया करते हैं। इसलिए मैं भी यह पत्र आपकी सेवा में भेजती हूँ। कदाचित् आपके उत्तर से मेरे हृदय को कुछ शान्ति मिले।

मेरा विवाह हुए ९ वर्ष बीत गए और मेरे तीन बच्चे भी हैं, किन्तु पतिदेव का विद्यार्थी-जीवन अभी तक समाप्त नहीं हो पाया है। विवाह इण्ट्रेन्स पास होने पर हुआ था। वे आजकल एल्-एल्० बी० पढ़ते हैं। मुझे विश्वास है कि अभी तीन-चार वर्ष तक और कॉलेज के कीड़े रहेंगे और मैं तो गृहस्थी की मक्खी बनी ही हूँ। उन्होंने अपने लिए नहीं, अपने माता-पिता के पास क़ैद रखने के लिए मेरे साथ ब्याह किया है। सम्पादक जी, मैं सास-ससुर के पास रहना और उनकी सेवा करना बुरा नहीं समझती। किन्तु मेरे भी तो हृदय है। ब्याह से पहले मैं क्या-क्या कल्पनाएँ किया करती थी। कितनी आशाओं से भरा हुआ हृदय लेकर पतिदेव के गृह में आई, उन सब पर पानी फिर गया! वे स्वयं तो कॉलेज में सब प्रकार के आमोद-प्रमोद के साथ रहते हैं। परन्तु मैं रोकर समय बिताती हूँ, या हँस कर, इसकी उन्हें परवाह नहीं। डिग्री तो उन्हें वृद्धावस्था तक मिल ही जायगी। परन्तु जब पढ़ाई समाप्त करके घर आवेंगे, तो मेरे पास क्या रह जाएगा—एक टूटा हुआ सूखा हृदय! उस समय मैं बच्चों की और गृहस्थी की देख-भाल करूँगी या उनकी सेवा करूँगी! सम्पादक जी, इन्हीं सब विचारों से मेरा हृदय व्यथित हो जाता है। कभी-कभी यही इच्छा होती है कि परमात्मा की कृपा से उनकी पढ़ाई आजीवन जारी रहे और मेरा जीवन समाप्त हो जाए। अब अधिक कहाँ तक सहन करूँ, इतने दिन तो हो गए। इति।

—'चाँद' की एक ग्राहिका

[इस बहिन का पत्र हमने ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है। इसमें जितने मर्मभेदी शब्द आए हैं, वे हमारे नहीं, उन्हीं के हैं। इन शब्दों में कितनी मर्मवेदना छिपी है—कितनी विकल पीड़ा निहित है, उसे प्रत्येक सहृदय मनुष्य समझ सकेगा। परन्तु अफ़सोस है कि वह डिग्री-लोलुप विद्यार्थी-हृदय इसे समझने की चेष्टा नहीं करता। आश्चर्य तो यह है कि ये तीन लड़कों के पिता जी अभी अपने को 'कॉलेज का लड़का' ही समझते होंगे। इसे इस अभागे देश की शिक्षा-प्रणाली का दोष कहें या डिग्री प्राप्त करने में ही सारा जीवन नष्ट कर देने की निरर्थक प्रवृत्ति का? ऐसे हीन-हृदय विवाह ही क्यों कर लेते हैं?

अन्त में इस दुःखिनी बहिन से निवेदन है कि वे बच्चों के लिए इस कष्ट को सहन करें और पतिदेव को डिग्री प्राप्त करने दें।

—स० 'चाँद']

मुर्दे जीवित होने लगे

एक जर्मन वैज्ञानिक का अद्भुत आविष्कार

जर्मनी के विख्यात वैज्ञानिक डॉक्टर अलबर्ट एस० हाईमैन ने एक ऐसा यन्त्र तैयार किया है, जिसके द्वारा एकाएक हृदय की गति के रुक जाने के कारण मरे हुए मनुष्य पुनर्जीवित हो सकते हैं। इस यन्त्र की परीक्षा ऐसे मनुष्यों पर की गई है, जिनके हृदय में किसी प्रकार की ख़राबी न थी और केवल किसी आतङ्क के कारण मर गए थे। ऐसे प्रतिशत ६० मुर्दों को पुनर्जीवन प्रदान करने में यह यन्त्र सफल हो चुका है। शर्त्त यह है कि मृत्यु हो जाने के दस मिनट के भीतर ही इस अद्‌भुत यन्त्र का प्रयोग किया जाय।

इस यन्त्र में एक ऐसी सुई लगी है, जिसके द्वारा हृदय में इञ्जेक्शन लगा कर उसमें कृत्रिम बिजली भर दी जाती है। इससे हृदय की रुकी हुई गति फिर से जारी हो जाती है। डॉक्टर अलबर्ट के इस नए आविष्कार ने वैज्ञानिक दुनिया में एक हलचल सी पैदा कर दी है। जर्मनी की एक कम्पनी ने इस यन्त्र को तैयार करने और उसे बेचने का अधिकार उक्त डॉक्टर महोदय से ले लिया है।

❀

भारत में मोटर गाड़ियाँ

सन् १९३१-३२ में संसार के विभिन्न देशों से ७,२२० मोटर गाड़ियाँ भारत में आई हैं। गत सन् १९२२-२३ के बाद, इतनी कम मोटर गाड़ियाँ इस देश में कभी नहीं आई थीं। नीचे १९२२-२३ से १९३१-३२ तक किस साल कितनी गाड़ियाँ आईं, उनका एक विवरण दिया जाता है :—

ईस्वी सन्			गाड़ियों की संख्या
१९२२-२३	...	...	४,३२३
१९२३-२४	...	...	७,९८४
१९२४-२५	...	...	९,३८०
१९२५-२६	...	...	१२,७५७
१९२६-२७	...	...	१३,१९७
१९२७-२८	...	...	१५,१२२
१९२८-२९	...	...	१९,५६७
१९२९-३०	...	...	१७,३९९
१९३०-३१	...	...	१२,६०१
१९३१-३२	...	...	७,२२०

किसी देश से कितनी गाड़ियाँ आईं।

१९२८-२९	इङ्गलैण्ड से	३,६४५
"	अमेरिका	१०,१४५
"	कनाडा	२,३१८
"	फ्रान्स	३६४
"	इटली	१,१५०
"	अन्य देश	१८९
१९३०-३१	इङ्गलैण्ड	२,८८५
"	अमेरिका	५,०९८
"	कनाडा	३,२५०

१९३०-३१	फ़्रान्स	२६१
"	इटली	९१७
"	अन्य देश	१९०
१९३१-३२	इङ्गलैण्ड	२,१७८
"	अमेरिका	३,३६८
"	कनाडा	६७६
"	फ़्रान्स	१६१
"	इटली	६१०
"	अन्य देश	३२७

१९३१-३२ में जो ७,२२० गाड़ियाँ आईं, उनमें बम्बई प्रान्त में ३,३२५, बङ्गाल में १,८०१, मद्रास में ८६०, सिन्ध में ८२४ और बर्मा में ४१० आईं।

मोटर साइकिलें

१९३१-३२ में कुल ६२६ मोटर साइकिलें आईं। परन्तु इससे पहले के सालों में १,५०१ आई थीं। इनमें से अधिकांश मोटर साइकिलें इङ्गलैण्ड से आईं।

मोटर लॉरियाँ, बसें और मोटरवान

उपर्युक्त सालों में कुल ६७ लाख रुपए के मूल्य की मोटर लॉरियाँ, बसें और मोटरवान आए। इनमें ४७ लाख के मूल्य की लॉरियाँ और बसें इङ्गलैण्ड से तथा अवशिष्ट दूसरे देशों से आईं।

सन् १९३१-३२ में जो मोटर गाड़ियाँ आई थीं, उनका मूल्य १ करोड़ ४८ लाख रुपए था। इससे पहले वर्ष में २ करोड़ ५८ लाख रुपए की मोटरें आई थीं।

गत १९३२ साल के मार्च महीने तक भारत के विभिन्न प्रदेशों के मोटर गाड़ियों की संख्या २,१०,७२६ थी। इनमें मोटर साइकिलों की संख्या भी शामिल है।

वर्तमान वर्ष

गत अप्रैल से लेकर अक्टूबर तक सात महीनों में आने वाली मोटरों और टेक्सी गाड़ियों की संख्या २,३७४ थी। गत वर्ष के इन्हीं सात महीनों में ४,७८३ गाड़ियाँ आई थीं। इन सात महीनों में जो गाड़ियाँ आई हैं, उनका मूल्य ४९,४२,७८० रुपए हैं।

प्रेम के उपादान

'रेव्यु द ला फ़ाम' नामक एक फ़्रान्सीसी अख़बार ने यह प्रश्न उठाया था कि "प्रेमपात्री होने के लिए स्त्रियों का सुन्दरी होना आवश्यक है या नहीं ?" इस प्रश्न के उत्तर में विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्यों, पार्लामेण्ट के सदस्यों, कमेटी फ़्रासेज नाम की संस्था के सदस्यों, कई बैरिस्टरों, औपन्यासिकों, शिल्पियों तथा दर्ज़ियों आदि हज़ारों मनुष्यों ने अपनी-अपनी राय 'रेव्यु द ला फ़ाम' के सम्पादक के पास लिख कर भेजी हैं। इन उत्तरदाताओं में कुछ सज्जनों की सम्मति तो यह है कि प्रेमपात्री बनने के लिए रूपवती होना अत्यावश्यक नहीं। परन्तु कुछ सज्जनों की राय में रूप एक अत्यावश्यक वस्तु है और इसके बिना कोई स्त्री प्रेमपात्री नहीं हो सकती। इसके सिवा बहुत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत प्रदान किए हैं। फलतः इन तमाम उत्तरों की जाँच करके उपर्युक्त पत्र के सम्पादक महोदय ने निश्चय किया है कि प्रेम के पाँच उपादान हैं, जैसे—सौन्दर्य, दैहिक गठन, मानसिक गठन, बुद्धिवृत्ति और उदारता। आपकी राय में उम्र जितनी ही कम हो, प्रेमपात्री के लिए सौन्दर्य की आवश्यकता उतनी ही अधिक होती है। परन्तु उम्र की वृद्धि के साथ-साथ सौन्दर्य की आवश्यकता क्रमशः कम होती जाती है।

किस उम्र की स्त्री के लिए किस उपादान की कितनी आवश्यकता है, इसकी एक तालिका भी उक्त पत्र के सुयोग्य सम्पादक महोदय ने दे दी है। आपका कहना है कि सोलह वर्ष की लड़की के लिए सौन्दर्य की मात्रा सौ में अस्सी भाग और मानसिक गठन बीस भाग होनी चाहिए। २० वर्ष के लिए सौन्दर्य प्रतिशत ७०, दैहिक गठन १० और मानसिक गठन २० ; २५ वर्ष के लिए सौन्दर्य ६० भाग, दैहिक गठन १०, मानसिक गठन १५, और बुद्धिवृत्ति १५ भाग ; ३० वर्ष—सौन्दर्य ५० भाग, दैहिक गठन १०, मानसिक गठन १५, बुद्धिवृत्ति १५ और औदार्य १०; ४० वर्ष—सौन्दर्य ३०, दैहिक गठन १०, मानसिक गठन १०, बुद्धिवृत्ति १५ और उदारता १५; ५० वर्ष—सौन्दर्य १०, दैहिक गठन १०, बुद्धिवृत्ति ४० और औदार्य प्रतिशत १० भाग होना चाहिए।
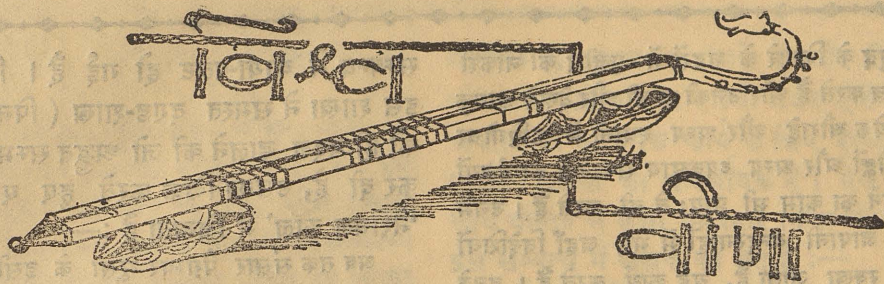
दरिद्र-भारत

कुछ समय हुआ भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य सर हरीसिंह गौड़ चीन, जापान आदि की यात्रा करने गए थे। इस यात्रा का जो मनोरञ्जक वर्णन आपने 'इण्डियन रिव्यू' में प्रकाशित कराया है, उसका एक अंश इस प्रकार है :—

कोलम्बो से रवाना होने के बाद सबसे पहले हम सिङ्गापुर ठहरे। उसे देखने से जान पड़ता था कि ग़रीब भारत के मुक़ाबले में इन पूर्वीय देशों ने ख़ासी तरक़्क़ी की है। क्योंकि पीनाङ्ग, मनीला, मलाया स्टेट्स, चीन, जापान, जहाँ कहीं भी हम गए, हमने आधुनिक ढङ्ग से बसे बड़े-बड़े नगर देखे। इन नगरों में सब प्रकार की आधुनिक सामग्रियाँ पाई जाती हैं और ये सब सुन्दरता, वैभव और उन्नति की दृष्टि से एक दूसरे की प्रतियोगिता करते हैं। इस परिस्थिति की भारत और भारतवासियों के भाग्य से तुलना कीजिए।

इन तमाम देशों में हज़ारों की संख्या में भारतवासी पाए जाते हैं, पर उनमें से अधिकांश, मेहतरों और नालियाँ साफ़ करने का काम करते हैं। इस कारण यहाँ पर भारतवासी 'कुलियों की जाति' समझे जाते हैं। मैंने इन स्थानों में जो भारतवासी देखे, वे ख़ासकर तीन विभागों में बाँटे जा सकते हैं। मज़दूर, जिनकी संख्या सबसे अधिक है; दुकानदार और फेरी वाले, जो बड़े शहरों में पाए जाते हैं, और थोड़े से इधर-उधर बिखरे हुए व्यक्ति, जो अपना गुज़ारा भाषाओं की शिक्षा देने, डॉक्टरी, पूजा-पाठ, ज्योतिष या धर्मोपदेश आदि तरह-तरह के कामों से करते हैं।

भारतीय कुली

बड़े शोक का विषय है कि ऊँची श्रेणियों के भारतवासी इन देशों में बहुत कम पाए जाते हैं। इससे विदेशियों को भारत तथा भारतवासियों के सम्बन्ध में बड़ी भ्रमपूर्ण धारणा हो जाती है। यहाँ पर मैं केवल एक उदाहरण देता हूँ, जो मेरे आशय को स्पष्ट कर देगा। जब मैं टोकियो (जापान की राजधानी) में था, तो मैंने प्राइमरी स्कूल से लेकर यूनीवर्सिटी तक सब तरह की शिक्षा-संस्थाओं का निरीक्षण किया। एक प्राइमरी स्कूल में मैंने एक आलमारी में रक्खी कितनी ही मूर्तियाँ देखीं, जो संसार के विभिन्न देशों के अधिवासियों की थीं। इनमें एक का रङ्ग काला था, उसकी कमर में एक छोटा सा गमछा लपेटा हुआ था, जिससे वह अर्द्ध-नग्न जान पड़ती थी, उसके काले बाल हवा में उड़ रहे थे। इस मूर्ति के नीचे लिखा था, 'भारतीय !'

स्कूल की प्रधान अध्यापिका, जो मेरी बग़ल में ही खड़ी थी, मेरी दृष्टि उस मूर्ति पर पड़ते देख कर कुछ लजा गई और मेरे समाधान के लिए कुछ ऐसा कारण बताने लगी जो ठीक न था। वास्तव में ऐसी मूर्तियाँ कारख़ानों में बनाई जाती हैं और अबाध रूप से स्कूलों में भेजी जाती हैं। यह भारतीय कुली की प्रतिमूर्ति है, जिसे चीन या मलाया आदि के किसी भी बन्दरगाह में देखा जा सकता है। एक मज़ेदार बात यह है कि इन कुलियों में से अधिकांश मद्रास की तरफ़ के होते हैं, जबकि दक्षिण भारत में इस प्रकार का काम प्रायः उत्तर भारत के अधिवासी करते हैं।

सिख और सिन्धी

इस प्रकार यद्यपि अधिकांश भारतवासी इन प्रदेशों में नीचे दर्जे की मज़दूरी करते हैं, तो भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अच्छी स्थिति में कहे जा सकते हैं। इस ओर के

समस्त समुद्र के किनारे के शहरों में पुलीस की नौकरी प्रायः सिक्ख करते हैं और उनकी लम्बी और देखने लायक़ आकृति प्रत्येक चौराहे और अन्य स्थानों में दृष्टिगोचर होती है। बैङ्कों और अन्य व्यवसाय सम्बन्धी कार्यालयों पर पहरा देने का काम भी प्रायः वे ही करते हैं। उनमें से कुछ तो जापानी बन्दरगाहों में भी, जहाँ विदेशियों को दूर ही रक्खा जाता है, यह कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त क़रीब ३०० सिन्धी भी इन शहरों में रहते हैं, जो यहाँ से भारत में और अन्य देशों में रेशम भेजने का व्यवसाय करते हैं। पर वे थोक माल का काम करते हैं और सर्वसाधारण को उनसे परिचित होने का अवसर बहुत कम मिलता है।

❀ ❀ ❀

अपराध और दण्ड

बीसवीं शताब्दी से पूर्व अपराध और दण्ड के विषय में साधारण लोगों में प्रायः यही ख़याल फैला हुआ था कि अपराधियों को जितना अधिक और कड़ा दण्ड दिया जायगा, उतना ही जनता पर उसका प्रभाव पड़ेगा और लोग इस प्रकार के वर्जित काम करने से डरते रहेंगे। इतना ही नहीं, एक ज़माना वह था जबकि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपराधियों को अधिक से अधिक यन्त्रणा देने के उपाय खोजे जाते थे। अपराधियों को जलते तेल के कड़ाह में डाल देना, कुत्तों से नुचवाना, हाथी से कुचलवाना, दीवार में चुनवा देना, पत्थरों से मार डालना आदि उसी बर्बर-युग की स्मृतियाँ हैं। पर जैसे-जैसे ज्ञान-विज्ञान की उन्नति होती गई और जीव-दया का भाव वृद्धि पाता गया, अपराधियों को दण्ड देने में कम क्रूरता से काम लिया जाने लगा। इधर जब से मनोविज्ञान ने विशेष रूप से उन्नति की है और मनुष्यों के कामों और आन्तरिक विचारों की नियमित रूप से जाँच-पड़ताल की जाने लगी है, तब से तो इस सम्बन्ध में काया-पलट हो गई है। विज्ञान की इस शाखा ने समस्त दण्ड-शास्त्र (पिनल कोड) को ही बदल डालने की जो अद्भुत सम्भावना पैदा कर दी है, उसका ज़िक्र करते हुए एक लेखक 'नेशनल कॉल' में लिखता है :—

अब तक संसार पैग़म्बर मूसा के इसी नियम पर अमल करता आया था कि 'आँख के बदले आँख निकाल लो।' सभ्यता की वृद्धि के साथ इस नियम में अनेकों सुधार किए जाते रहे हैं, तो भी हमारे वर्तमान समस्त क़ानूनों का मूल आधार यही नियम है। जब हम न्यायालयों में होने वाले मुक़दमों की कार्यवाही और कठोर दण्डों का वर्णन पढ़ते हैं, तो हमारे चित्त में यही भाव उत्पन्न होता है कि 'यह उचित ही किया गया।'

जीवदया-प्रचारक कितने ही समय से इस पाशविक भावना के विरुद्ध उद्योग कर रहे हैं। पर उनकी चेष्टा का आधार केवल अनुकम्पा का भाव है। ऐसे लोगों ने वर्षों तक क़ानूनदाँ लोगों की बेवकूफ़ियों के ख़िलाफ़ लड़-झगड़ कर जेलख़ानों के नियमों में कितनी ही तरह के सुधार कराए हैं। पर इस सम्बन्ध में वास्तविक और स्थायी कार्य मनोविज्ञानवेत्ताओं ने किया है, और वे ही आजकल उन लोगों का पक्ष समर्थन कर रहे हैं, जिन्हें समाज ने समस्त प्राणियों में जघन्य मान रक्खा है।

अस्वाभाविक मस्तिष्क

पर जीव-दया से प्रेरित सुधारकों और मनोविज्ञान-वेत्ताओं में एक बड़ा अन्तर है। जहाँ ये सुधारक अपराधियों के लिए केवल दया की भिक्षा माँगते हैं अथवा जेलख़ानों के सुधार की चेष्टा करते हैं, मनोविज्ञान वाले इस प्रथा को ही ग़लत बतलाते हैं। उनके मतानुसार अपराधियों के साथ जो व्यवहार आजकल किया जाता है, वह बर्बर और अमानुषिक होने के साथ ही अवैज्ञानिक और निरर्थक है। वे लोग यहाँ तक आगे बढ़ते हैं कि जेलों में ठूँसे जाने वाले अपराधी और बड़े-बड़े मतों के प्रचारक, जिनके नामों की लोग माला जपते हैं, एक ही प्रणाली द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये दोनों प्रकार के व्यक्ति अनियमित अथवा असाधारण स्वभाव के होते हैं। मस्तिष्क की जिस विषम परिस्थिति के फल से एक व्यक्ति महात्मा बुद्ध या महात्मा ईसा बनता है, उसी

दूसरा चङ्गेज़ ख़ाँ या नादिरशाह या ताँतिया भील बन जाता है।

पर इस लेख का उद्देश्य इस विचित्र प्रकार की परस्पर-विरोधिता का विवेचन करना नहीं है, और हम यहाँ मनोविज्ञान के उसी अंश पर विचार करेंगे, जिससे अपराधों के उत्तरदायित्व, उद्देश्य और प्रोत्साहक कारणों पर प्रकाश पड़ता है। क्योंकि प्रत्येक विवेक पर आधार रखने वाले न्याय-शास्त्र में सबसे अधिक ध्यान अपराध के उत्तरदायित्व पर ही दिया जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति, जिसे नींद में उठ कर चलने-फिरने की बीमारी हो, वैसी अवस्था में अपनी स्त्री को गोली से मार दे तो उसे न्यायपूर्वक इसके लिए उत्तरदायी नहीं बतलाया जा सकता। यही सिद्धान्त मनोविज्ञान के अनुसार विचार करने से अधिकांश अपराधों पर लागू होता है।

समाज का उत्तरदायित्व

फ़्रुड नाम के विद्वान का कथन है कि हमारे जीवन भर के कार्यों और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत बड़ा प्रभाव हमारे माता-पिताओं के विचारों और अनुभवों का पड़ता है, जिन्हें हम जानते भी नहीं। एडलर नाम के एक अन्य विद्वान् ने इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि बाल्यावस्था के अनुभव और उसके बाद की परिस्थिति हमारे जीवन के मार्ग को निर्धारित करती है। इसलिए किसी व्यक्ति के कार्य का उत्तरदायित्व उसका नहीं वरन् समस्त समाज का है। किसी व्यक्ति के कार्य की निन्दा करते समय हम केवल एक आदमी की निन्दा नहीं करते वरन् उस युग की अथवा उस समाज की सभ्यता की निन्दा करते हैं, जिसमें वह उत्पन्न हुआ है।

आगे चल कर लेखक ने उदाहरण देकर बतलाया है कि किस प्रकार हत्या आदि अपराधों का विचार ऐसे व्यक्तियों के हृदय में, जिनका समस्त जीवन निर्दोष रहा है, अकस्मात् उत्पन्न हो जाता है। मनोविज्ञानवेत्ताओं ने इस प्रकार की घटनाओं की जाँच करके पता लगाया है कि इस प्रकार के भावों के बीज निकट और दूरवर्ती सम्बन्धियों के कार्यों अथवा स्वभाव के द्वारा अज्ञात रूप से मस्तिष्क में स्थान पा जाते हैं और फिर कभी अकस्मात् अप्रत्याशित रूप में प्रकट होते हैं। ऐसे अपराधियों को उनके कार्य के लिए दोषी ठहराना हमारी अज्ञता का परिचायक है। ऐसे लोगों के साथ वास्तव में कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए इस सम्बन्ध में लेखक का मत है :—

इन उदाहरणों से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि अपराध या जुर्म की समस्या बड़ी दुरूह है और वर्तमान दिखावटी दण्ड-संग्रह उसकी तह तक कदापि नहीं पहुँच सकते। अगर दुनिया का विवेकपूर्ण सङ्गठन हो जाय तो अपराधियों के साथ वही व्यवहार किया जाने लगे जो आजकल बीमारों के साथ किया जाता है। ऐसी दुनिया में मुक़द्दमे अदालतों के अज्ञम्य-मूर्ख जजों के सम्मुख पेश नहीं होंगे वरन् सब प्रकार के यन्त्रों से पूर्ण किसी रोग-परीक्षा-गृह में मनोविज्ञान के ज्ञाताओं द्वारा उनकी जाँच की जायगी।

❀ ❀ ❀

रूस के बच्चे क्या पढ़ते हैं

जब से रूस में नवीन शासन की स्थापना हुई है तब से वहाँ छोटे बच्चों के पढ़ने की पुस्तकों पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है और देश के श्रेष्ठ विद्वान्, शिक्षाविज्ञ और कलाविद् मिल कर यह निर्णय करते हैं कि बच्चों के लिए पुस्तकें किस प्रकार लिखी जायँ। इन लोगों के मतानुसार केवल सीधी-सीधी और अर्थहीन कहानियों से बच्चों में रचनात्मक कल्पना-शक्ति का विकास हो सकना असम्भव है। इसलिए वे आरम्भ ही से उनके हाथों में ऐसी पुस्तकें देना चाहते हैं, जिससे वे जीवन की समस्त आवश्यकीय समस्याओं का परिचय प्राप्त कर सकें। रूसी शिक्षा-विभाग के इस नवीन उद्योग का वर्णन करते हुए एक लेखक ने अमेरिका के 'न्यू-रिपब्लिक' नामक पत्र में लिखा है :—

यद्यपि सामाजिक समस्याओं के आलोचक बहुत वर्षों से कहते आए हैं कि वर्तमान युग में सबसे अधिक

ध्यान देने का विषय बालकों की शिक्षा है, पर इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में व्यवहारिक कार्य रूस वालों ने ही आरम्भ किया है। वहाँ बच्चों की किताबें लिखने वालों का पद वैसा ही महत्वपूर्ण समझा जाता है जैसा कि महान व्यवसायों और उद्योग-धन्धों के सञ्चालकों का। जिस प्रकार उद्योग-धन्धों के डाइरेक्टरों की कॉन्फ्रेन्सें प्रायः हुआ करती हैं, उसी प्रकार ये लेखक भी प्रायः एक साथ बैठ कर अपने विषय पर विचार किया करते हैं। प्रत्येक पन्द्रहवें दिन सरकारी शिक्षा-विभाग के कार्यालय में बच्चों की किताबों के लेखकों, चित्रकारों, शिक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों, मनोविज्ञानवेत्ताओं और साहित्य-समालोचकों की कॉन्फ्रेन्सें होती हैं।

इस अवसर पर बच्चों के आदर्श, रुचि और भावनाओं को ध्यान में रख कर पुस्तकों के सम्बन्ध में वाद-विवाद होता है। ये कॉन्फ्रेन्सें केवल विभिन्न लेखकों की भूलों का ही पता नहीं लगातीं वरन् यह भी निर्णय करती हैं कि वर्तमान समय में बच्चों के लिए क्या लिखा जाय और किस तरह लिखा जाय। उदाहरणार्थ, इनमें विचार किया जाता है कि परियों और जादूगरों की अद्भुत रसपूर्ण कहानियाँ बच्चों को पढ़ाई जायँ या नहीं? प्राकृतिक विषयों की कहानियों में दैवी शक्ति सम्पन्न समझे जाने वाले व्यक्तियों का वर्णन किया जाय? क्या उद्योग-धन्धों की चर्चा और शिल्प-विद्या सम्बन्धी विचारों को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया जाय? आदि। इन वाद-विवादों के फल-स्वरूप बच्चों की किताबों के सम्पादकों और प्रकाशकों को अपने कार्य के लिए सहायकों की एक मण्डली मिल जाती है।

कभी-कभी बच्चे भी इन कॉन्फ्रेन्सों में बुलाए जाते हैं, क्योंकि रूस वाले स्वभाग्य निर्णय पर बहुत अधिक विश्वास रखते हैं। वे लेखकों का कथन सुनते हैं, अपने विचार प्रकट करते हैं और पुस्तकों की आलोचना करते हैं। कभी-कभी ये बच्चे विशेषज्ञों के समान बातें करते हैं, जिनसे बड़ा अहङ्कार प्रकट होता है। उदाहरणार्थ, एक बार दस साल की उम्र के बच्चों के एक समूह ने किसी पुस्तक के सम्बन्ध में निम्न-लिखित सम्मति लिख कर भेजी थी—"हमने इसको पढ़ा और निश्चय किया कि इसे छापना अनुचित न होगा।"

बच्चों के लिए जितनी पुस्तकें तैयार की जाती हैं वे सब कुछ न कुछ ज्ञान प्रदान करने वाली होती हैं, ऐसी ख़ाली तस्वीरों की किताबें भी जो चार-चार, पाँच-पाँच साल के अक्षर-ज्ञान-विहीन बच्चों के लिए छापी जाती हैं, जीवन सम्बन्धी वर्तमान समस्याओं से सम्बन्ध रखती हैं। उनमें लाल सेना की कवायद, मास्को की नई इमारतें, श्रमजीवियों के विश्राम-गृह आदि के दृश्य दिखलाए जाते हैं। ऐसी पुस्तकों में जानवरों, फूलों, जहाज़, सर्कस आदि की आकर्षक तस्वीरें भी होती हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष में इनका कोई सम्बन्ध साम्यवादी पुनर्सङ्गठन से नहीं जान पड़ता, पर तो भी उनमें इस तरह का कुछ न कुछ भाव छिपा रहता है।

जैसे ही बच्चा कुछ पढ़ने लगता है उसे ऐसी पुस्तक मिल जाती हैं, जिनसे उसे संसार की गतिविधि का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामरिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक कैसी भी घटना क्यों न हो, जैसे ही उसका हाल अख़बारों में छपता है वैसे ही बच्चों के लिए उसका ज्ञान चित्रों की पुस्तकों द्वारा करा दिया जाता है। इन पुस्तकों में सब से अधिक आकर्षक अन्तर्राष्ट्रीय विषयों की पुस्तकें होती हैं। इनमें छोटे हबशी बच्चों, चीन, भारत, मैक्सिको के मज़दूरों आदि के चित्र छापे जाते हैं। कहीं ग़ुलामी की जञ्ज़ीरों में बँधा हबशी पीठ पर भारी बोझा ढो रहा है, कहीं भारतीय मज़दूर रुई की भारी गाँठें उठा रहा है, कहीं थकी-माँदी चीनी बालिकाएँ सूत कात रही हैं, और उनका निरीक्षक चुपचाप खड़ा हुआ उनका काम देख रहा है।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की पुस्तकों का मुख्य उद्देश्य बच्चों के सम्मुख एक ऐसा नवीन आदर्श उपस्थित करना है, जिससे साम्यवाद और संसार के श्रमजीवियों की एकता का भाव उनके हृदयों में अङ्कित हो जाय। रूस के शिक्षा-विभाग के अधिकारी भी इससे इनकार नहीं करते। इस सम्बन्ध में डॉ० मेकसिन ने स्पष्ट कहा है कि "प्रत्येक महान् सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के पश्चात् बच्चों के साहित्य की गति बदल जाती है और विजय प्राप्त

करने वाला दल अपने आदर्शों को उनके हृदयों में भरने की चेष्टा करता है।"

बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में सब से अधिक ध्यान आकर्षित करने वाली वस्तु लेनिनग्राड का नवीन 'बाल-साहित्य स्कूल' है। इस स्कूल में क़रीब बीस युवक और युवतियों का एक समूह है जो किसी न किसी विषय के विशेषज्ञ हैं। ये लोग एक स्थान में सम्मिलित होकर बाल-साहित्य के सम्बन्ध में वाद-विवाद करते हैं और अपने-अपने विषय में आवश्यकीय सम्मति देते हैं। इस स्कूल के प्रधान सी० मर्शक हैं, जिनके पद्य बच्चों को बहुत अधिक पसन्द आते हैं। बच्चों के पढ़ने की पुस्तकों के सम्बन्ध में इन्होंने जो विचार प्रकट किए हैं; वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनका कथन है :—

"हम चाहते हैं कि बच्चों की पुस्तकों के लेखकों को उन विषयों का पूर्ण अनुभव हो जिनको वे लिखते हैं। हमको बच्चों के सामने ख़ाली हाथ नहीं आना चाहिए और न निरर्थक बातें बता कर उनको ठगना चाहिए। विज्ञान युद्ध-क्षेत्र है न कि एक चेतना-शून्य वस्तु। प्रत्येक व्यक्ति को जो इस क्षेत्र में पैर रक्खे कोई नई चीज़ जाननी चाहिए। जैसा कि तुम जानते हो मानव-जीवन में बच्चा नाटक के तीसरे अङ्क के समान है और उसमें सौन्दर्य और अभिनय को अनुभव करने की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। हमारे बच्चों के बस्तों में वर्तमान काल की समस्याओं का इतिहास होना आवश्यकीय है। वे अपने लिए केवल दर्शक की भाँति न समझें, क्योंकि उनमें से प्रत्येक भावी समाज का निर्माता है।"

पाठक इस लेख को पढ़ने के पश्चात् क्षण भर के लिए अपने देश के बाल-साहित्य पर दृष्टिपात करें। विशेष रूप से हिन्दी में इस अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण विषय की जैसी दुर्दशा हो रही है, उसे सोच कर कलेजा मुँह को आने लगता है। विशेषज्ञों और कॉन्फ़्रेन्सों की कथा तो दूर, यहाँ बच्चों की किताबें सबसे गए बीते और टके-हल लेखकों से तैयार कराई जाती हैं। ऐसी पुस्तकों द्वारा हमारे बच्चों का कैसा चरित्र निर्माण होगा और भविष्य में वे क्या बनेंगे यह बतलाना निरर्थक है।

ईश्वर-प्रार्थना की असारता

हाल में बम्बई में श्री० जे० कृष्णमूर्ति के कई भाषण हुए थे, जिनमें उन्होंने धर्म, ईश्वर और आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में बड़े स्वतन्त्र विचार प्रकट किए हैं। पाठकों को इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि श्री० कृष्णमूर्ति को अब तक दुनिया के हज़ारों शिक्षित और सभ्य व्यक्ति ईश्वरीय अवतार मानते रहे थे और वे 'ऑर्डर ऑफ़ दी स्टार ऑफ़ ईस्ट' नामक धार्मिक समुदाय के प्रधान धर्मगुरु थे। नीचे हम आपके एक भाषण का आशय, जो 'बॉम्बे-क्रॉनिकल' में प्रकाशित हुआ है, देते हैं, जिससे उनके वर्तमान विचारों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है :—

वर्तमान समय में लोग मज़हबों के ग़ुलाम बने हुए हैं। इससे मनुष्यों की कार्य करने की स्वतन्त्रता में बड़ी बाधा पड़ती है। मज़हब का जन्म तभी हुआ, जब कि मनुष्य ने एक व्यक्ति की हैसियत से अपने उत्तर-दायित्व को भुला दिया। पर इस बुराई का प्रतिकार मज़हब और धर्मगुरुओं के नाश करने से नहीं हो सकता। स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य प्राचीन काल के अनुभवों और प्रचलित रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त हो जाय। जब तक मनुष्य का दिमाग़ सामाजिक या धार्मिक धारणाओं द्वारा कुण्ठित रहेगा, तब तक वह अविनाशी सत्य को नहीं समझ सकता।

मैं ईश्वर-प्रार्थना की उपयोगिता में विश्वास नहीं रखता। क्योंकि इसका मूल कारण भय है। जबकि मनुष्य किसी अवाञ्छनीय बात से भयभीत होता है, तो वह उससे बचने के लिए प्रार्थना करता है। पर कष्टों से पीछा छुड़ाने का उपाय प्रार्थना करना नहीं है, वरन् अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेकर कष्ट के कारण को मालूम करना है।

मनुष्य ने ईश्वर की सृष्टि अपनी आकृति और वासनाओं के अनुसार कर ली है। यह बतला सकना असम्भव है कि ईश्वर क्या चीज़ है।

नेत्र और उनके रोग

[श्री० बुद्धिसागर वर्मा, बी० ए०, एल्‌टी०]

नेत्र बड़े ही सुकुमार अङ्ग हैं। इसीलिए प्रकृति ने उन्हें इतना सुरक्षित रक्खा है। परन्तु हमारी असावधानी से उनमें फूली, जाला, माँड़ा, खुजली, ढरका, रतौंधी आदि अनेक रोग उत्पन्न होकर हमारे कष्ट का कारण हो जाते हैं। फलतः यथाशक्ति इन रोगों को दूर करने का उपाय शीघ्र से शीघ्र करना चाहिए। इसी से यहाँ पर हम नेत्र-रोग सम्बन्धी कुछ साधारण बातें बता देना चाहते हैं; किन्तु फिर भी नेत्रों का मामला नाज़ुक है, इसलिए किसी भी भयङ्कर रोग की दशा में किसी जानकार वैद्य अथवा डॉक्टर की सलाह अवश्य लेनी चाहिए।

एक माशा फिटकिरी का फूला प्रायः आधी छटाँक पानी में मिला कर 'लोशन' (Lotion) बना लिया जाय। इस लोशन को आँखों में डालने से धुन्ध, पानी जाना और जाला आराम होता है। जिनकी निगाह बुढ़ापे के कारण निर्बल पड़ गई हो, उन्हें सदा भीमसेनी कपूर आँखों में डालते रहना चाहिए। घेकुआर (घृतकुमारी) के गूदे पर पिसी हल्दी डाल कर गरम करके बाँधने से नेत्रों की पीड़ा, चोट की पीड़ा और लाली आदि दूर होती है। लाल चन्दन को जल में घिस कर पलकों पर लेप करने से भी नेत्रों की लाली और पीड़ा जाती रहती है। घेकुआर के रस की २-३ बूँदें कान में टपकाने से भी नेत्र-पीड़ा को लाभ पहुँचता है। २-३ माशे काली-मिर्च महीन पीस कर और उसमें इतना ही घी तथा कुछ मिश्री मिला कर सायं-प्रातः खाने से दुखती आँखें अच्छी हो जाती हैं। यदि इसका सेवन लगातार कुछ समय तक किया जाय, तो दृष्टि की निर्बलता दूर हो सकती है। सुनते हैं, मुण्डी बूटी की कुछ घुण्डियाँ बिना पानी के निगल जाने से एक वर्ष तक आँख नहीं दुखती। डेढ़ माशा अफ़ीम गरम पानी में घोल कर आँखों पर लगाने से भी आँखों का दुखना बन्द हो जाता है। रसौत को स्त्री के दूध में घिस कर नित्य लगाने से नेत्रों के बहुत से रोग दूर होते हैं। भोजनोपरान्त दोनों हथेलियों को आपसमें खूब रगड़ कर नेत्रों पर नित्य ४-५ बार फेर देना नेत्रों को नीरोग एवं स्वस्थ रखने का अनुभूत प्रयोग है।

पित्तपापड़ा के क्वाथ (जुशाँदा) में शहद मिला कर पीने से नेत्रों की जलन दूर होती है। गाय के कच्चे दुग्ध में कपड़ा भिगो कर उसकी तही करके ऊपर से पिसी हुई फिटकिरी डाल कर रखना भी यही गुण करता है। गाय का मक्खन भी लगाया जा सकता है। यह अनुभव-सिद्ध है कि साबुन को पानी में घिस कर आँखों में लगाने से रतौंधी रोग जाता रहता है। रतौंधी के रोगी को नित्य प्रातः ३ तोले शुद्ध गोघृत खिलावे और काली मिर्च तथा लौंग घोड़े की राल में महीन पीस कर अञ्जन की भाँति लगावे, तो बहुत लाभ होने की सम्भावना है। सम्हालू के पत्तों का रस आँखों में टपकाने से या प्याज़ अथवा पान के रस की २-३ बूँदें नेत्रों में डाल कर शीतल जल से धो डालने से भी रतौंधी जाती रहती है। स्त्री के दूध अथवा जल में रीठे की गुठली घिस कर आँजने से भी रतौंधी को बड़ा लाभ पहुँचता

है। बड़ के दूध में कपूर का बारीक चूर्ण मिला कर आँजने से और त्रिफले के जल से प्रतिदिन धोने से नेत्रों की खुजली दूर होती है। यदि नेत्रों से पानी जाता हो तो यह उपचार करे—बबूल की पत्तियाँ ८ गुने पानी में उबाले, जब पानी आठवाँ भाग रह जाय, तो मल कर छान ले और फिर आग पर चढ़ाए। जब वह शहद की भाँति गाढ़ा हो जाय, तो उसमें ½ भाग स्वच्छ शहद मिला कर शीशी में रख ले। इस दवा को सलाई से अथवा योंही नित्य आँखों में लगावे तो नेत्रों की खुजली और ढरका आदि में बड़ा फ़ायदा होता है। शहद वैसे भी आँखों के लिए अमृत है। यदि नीम का शहद मिल सके तो और भी अच्छा। इसे नित्य आँखों में आँजते रहने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। निर्मली को शहद में पीस कर लगाने से मोतियाबिन्द अच्छा हो जाता है। मिश्री और कलमी शोरा सम भाग महीन पीस कर नित्य सायं-प्रातः आँजते रहने से एक ही सप्ताह में माँड़ा कट जाता है। यह प्रयोग रतौंधी, आदि के लिए भी उत्तम प्रमाणित हुआ है। यदि आँखें नीली हो जायँ अर्थात् पहले तो स्याह हों फिर बाद में नीलगूँ हो जायँ तो हरे इन्द्रायन का अर्क़ नित्य आँखों में टपकाते रहना चाहिए। वाग्भट्ट का मत है कि यदि दातौन बाँई दाढ़ से चबाई जाय, तो नेत्रों में कोई रोग नहीं होता।

आँखों के रोहे

वैसे तो यह रोग किसी भी अवस्था में हो सकता है, किन्तु अधिकांश में रोग का प्रारम्भ बचपन में ही होता है। प्रारम्भ में रोगी को कोई विशेष कष्ट नहीं होता, केवल पढ़ने, धुआँ लगने या आँख के ऊपर अधिक प्रकाश पड़ने से पानी निकला करता है। प्रातःकाल आँख में ऐसी खटक होती है, मानों उसमें कुछ पड़ गया हो। रात को अधिक समय तक जागने पर खटक और भी अधिक होती है। पलक को उलट कर देखने से लाली मालूम पड़ती है और पलक के भीतरी भाग में बारीक-बारीक साबूदाने के समान कुछ-कुछ सफ़ेद या गुलाबी रङ्ग के दाने भी दिखलाई देते हैं। यह रोग जितना ही पुराना होता है, उतनी ही कठिनता से अच्छा होता है। इस रोग में कभी-कभी आँखों में छोटे-छोटे व्रण भी हो जाते हैं और उस समय मस्तक में तथा नेत्रों में असह्य वेदना होती है। आँखों से खूब पानी बहता है तथा प्रकाश सहन नहीं होता। यदि रोग अधिक समय तक टिक जाता है तो आँखों में छुरी पड़ जाती है और चमकीले गोल भाग की चमक कम हो जाती है। छुरी देखने में वैसी ही प्रतीत होती है जैसे घिसा हुआ काँच। ज्यों-ज्यों रोग की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों छुरी गाढ़ी होती जाती है और निगाह कम होती जाती है। कभी-कभी तो छुरी के कारण आँख के भीतरी भाग में सूजन होकर दृष्टि बिल्कुल नष्ट हो जाती है। कितने ही रोगियों की पुतली का मध्य भाग पतला होकर सामने टेंट-सा निकल आता है। प्रायः ग्रामीण और मूर्खा स्त्रियाँ रोहों को खाँड़ की डली, मरे हुए पशुओं की जीभ अथवा अन्य किसी खुरखुरी और गन्दी वस्तु से रगड़ देती हैं। इससे खून निकलता है और पलक में सूजन उत्पन्न हो जाती है। यदि सूजन अधिक हुई या पलक को अधिक बार घिसा गया, तो वह भीतर को मुड़ जाती है और 'परबाल' हो जाते हैं।

प्रत्येक पलक के किनारे एक बालों की क़तार होती है। ऊपर की पलक के बाल नीचे और कुछ बाहर की ओर और नीचे की पलक के बाल ऊपर की ओर कुछ बाहर की ओर मुड़े हुए होते हैं। परन्तु पुराने रोहों के फल-स्वरूप ये बाल आँखों की पुतली की ओर मुड़ जाते हैं। बस इसी स्थिति का नाम 'परबाल' है। यह आँखों के लिए बड़ा ही ख़तरनाक होता है।

रोहों वाली आँख को लगा हुआ हाथ या कपड़ा, जैसे रूमाल या धोती का किनारा आदि, यदि दूसरी तन्दुरुस्त आँख में लग जाता है तो उसमें भी रोहे हो जाने की सम्भावना रहती है। यदि रोहों वाले रोगी के साथ दूसरे लोग खुली हवा में घूमें-फिरें, तब तो कोई डर नहीं, किन्तु जिन स्थानों में काफ़ी हवा या रोशनी नहीं पहुँचती, उनमें रोगी के साथ सोने से तन्दुरुस्त आँखों वाले व्यक्तियों को भी यह रोग हो जाता है। रोहों के रोगी को धूल, धुवाँ, धूप और धूम्रपान से बचना चाहिए। उन्हें अधिक लिखने-पढ़ने का काम भी न करना चाहिए।

रोहों की कोई रामबाण औषधि तो आज तक नहीं निकली। परन्तु कुछ दवाएँ अधिक बरती जाती हैं, उन्हीं का वर्णन यहाँ किया जाता है। नीलेथोथे

की सलाई रोहों की एक विशेष औषधि है। परन्तु इसका प्रयोग करने से प्रथम तीन बातों का निश्चय कर लेना चाहिए—(१) पुतली के ऊपर लाली न हो, (२) पुतली पर बारीक-बारीक घाव न हों, और (३) रोगी की आँखों को सूर्य के प्रकाश से बहुत नफ़रत न हो। नीलाथोथा का प्रयोग करने की अनेक विधियाँ हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) पलक को उलट कर उस पर नीलेथोथे की सलाई फेरने का अधिक रिवाज है। नीलेथोथे का एक टुकड़ा चिकने पत्थर पर पानी डाल कर घिस कर सलाई बनाई जा सकती है। यह सलाई उलटी हुई पलक पर मामूली तेज़ी से एक या दो बार फेर कर तुरन्त थोड़ी सी विलायती रुई आँख के कोए में दबा दें, इससे नीलेथोथे का पानी उधर को खिंच आएगा और पुतली को हानि न पहुँचेगी। यदि यह सँभाल न रक्खी जाय तो आँख के शुक्र-मण्डल में घाव हो जाते हैं। उक्त सलाई पहले तीसरे दिन और फिर नित्य लगानी चाहिए।

(२) एक औन्स वेसलीन में ५ ग्रेन तक नीला-थोथा डाल कर मरहम बना लें और उसी को आँजें।

(३) एक औन्स पानी में २ से ४ ग्रेन तक नीला-थोथा डाल कर लोशन बना लें और आँखों में उसकी बूँदें टपकाएँ।

(४) १ तोला नीलाथोथा; १ तोला फिटकिरी; ४ तोला शोरा; सबको पीस कर एक चीनी के पात्र में आग पर चढ़ावें। सब चीज़ों के पिघल जाने पर उसमें ३ माशे भीमसेनी या सादा कपूर मिला दें और साँचे में ढाल कर सलाइयाँ बना लें। यह सलाई उलटी हुई पलक पर दिन में एक बार फेर लें।

यहाँ यह बतला देना भी आवश्यक है कि रोहों के लिए कोई भी दवा ६ मास से लेकर १२ मास तक लगातार नियमपूर्वक इस्तेमाल की जानी चाहिए।

ट्रेनिक एसिड का चूर्ण २० ग्रेन, एक औन्स शहद में मिला कर नित्य एक वक्त आँख में आँजा करें अथवा एक चम्मच सिरस के पत्तों के रस* में ४ चम्मच शहद मिला कर आँख में आँजते रहने से भी रोहों को लाभ होता है। यदि रोहों के कारण आँख में व्रण या छरी हो जाय, तो शीघ्र किसी नेत्र-चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। छरी के लिए लाल गुन्जे (घुँघची) का पानी अच्छा काम देता है। ६ दाने लाल गुन्जे अध-कचरे करके एक औन्स ठण्डे पानी में २४ घण्टे तक भिगो रक्खें, फिर छान कर २-३ दिन तक नित्य आँख में उसकी बूँद टपकाया करें। दूसरे या तीसरे दिन रोगी की आँख सूज जायगी और उससे पानी बहने लगेगा। तीसरे दिन पानी डालना बन्द कर दें और आँख को नित्य गरम जल अथवा बोरिक एसिड (Boric Acid) के पानी से धोता रहे।

साधारण रीति से नित्य व्यवहार के लिए रोहों के रोग में बोरिक एसिड का चूर्ण सुरमे की भाँति आँख में लगाया जाता है। आरज़ीरोल और प्रोटारगल एक औन्स पानी में २०-२५ ग्रेन तक डाल कर लोशन बना लिया जाय और इसकी बूँदें नित्य आँख में दोनों समय डाली जायँ।

भोजन—घृत का सेवन नेत्रों के लिए अत्यन्त हित-कर है। धारोष्ण दुग्ध भी नेत्रों के लिए बहुत उपयोगी है। आँवला नेत्रों का ख़ास पोषक है। इसे जिस प्रकार जिस अवस्था में भी हो सके, नित्य सेवन करते रहना चाहिए। भोजनोपरान्त नियम से सदा सौंफ़ चबाना या पान में रख कर खाना कठिन से कठिन नेत्र-रोगों से आयु-पर्यन्त सुरक्षित रखता है। शलजम, नारि-यल, मिश्री, हल्दी, ज़ीरा, केशर, दालचीनी, लौंग, मेवे, मुलहठी, हड़, कालीमिर्च, हींग आदि पदार्थों का सेवन नेत्रों के लिए हितकर है। नेत्रों को सुरक्षित रखने वालों को तेल, खटाई, बैंगन तथा समस्त बादी पदार्थ, भुने हुए चने, जुवार आदि की अधिकता से यथाशक्ति बचना चाहिए। मदिरा, गाँजा, चरस तथा अन्य मादक-द्रव्यों को आँख का शत्रु समझो। कोकेन का अधिक सेवन भी नेत्रों के लिए अहितकर है। तम्बाकू खाने-पीने और सूँघने का आम रिवाज पड़ गया है। आरोग्यता-पद्धति के रचयिता श्रोत्रिय पं० लक्ष्मीधर शर्मा वैद्यराज तम्बाकू के विषय में लिखते हैं :—"परीक्षा से अच्छी तरह निर्णय हो चुका है कि तम्बाकू खाने से आँख, दाँत एवं मस्तिष्क निर्बल पड़ जाते हैं तथा बुद्धि भी मन्द हो जाती है।" शिलाजीत, ब्राह्मी, च्यवनप्राश, शङ्खपुष्पी बूटी आदि का नियमपूर्वक सेवन नेत्रों की ज्योति को ख़ूब बढ़ाता है।

* यह रस ४ दिन से अधिक अच्छा नहीं रहता।
—लेखक

मेरी आह—लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द जी वर्मा। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या १०७, मूल्य ।।।) छपाई और काग़ज़ साफ़ और आवरण-पृष्ठ सचित्र।

श्रीयुत परिपूर्णानन्द जी वर्मा हिन्दी के विचित्र लेखक हैं। जिस विषय पर क़लम उठाते हैं, उसी पर कुछ न कुछ लिख डालते हैं। कहानी, दर्शन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अर्थशास्त्र—लीजिए, एक उपन्यास भी लिख डाला। खुदा जाने कोई विषय छोड़ेंगे या नहीं। अस्तु, 'मेरी आह' एक छोटा सा सामाजिक उपन्यास है और 'हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक ऐक्य का प्रतिपादन तथा मानवी जीवन की विडम्बना और निस्सारता का किंचित् प्रदर्शन' कराने के उद्देश्य से लिखा गया है। हमारे ख़याल में लेखक ने अपने उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त की है। कथानक और वर्णन-शैली रोचक है। हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के तुच्छ कारणों पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। भाषा भी बोलचाल की है।

मीना बाज़ार—लेखक, श्रीयुत हनूमान-प्रसाद शर्मा। पृष्ठ-संख्या १४८; मूल्य १)

इस पुस्तक में लेखक महोदय की तेरह कहानियाँ संग्रहीत हैं और इसकी भूमिका हिन्दी के सिद्धहस्त भूमिका-लेखक श्री० शिवपूजनसहाय जी ने लिखी है। ये कहानियाँ सामयिक पत्रों में भी एक बार छप चुकी हैं, परन्तु भूमिका-लेखक के कथनानुसार लेखक ने, जो वैद्यशास्त्री भी हैं, इन्हें 'मकरध्वज खिला कर' पुस्तक-रूप में प्रकाशित कराया है। कुछ भी हो, कहानियाँ अच्छी हैं। इनमें कला है या नहीं, यह तो कलाविद ही बता सकते हैं, परन्तु इनमें शिक्षा अवश्य है। कहानियों की भाषा सीधी-सादी और परिमार्जित है।

विदेशी दैनिक पत्र—लेखक, श्रीयुत विनोद-शङ्कर व्यास। पृष्ठ-संख्या ३४; मूल्य ।)

यह फ़्रेडरिक कार्टर की लिखी 'सिक्रेट्स् ऑफ़ योर डेली पेपर' नाम की पुस्तक के आधार पर लिखा हुआ, व्यास जी का एक लेख है, जो काशी के पाक्षिक 'जागरण' के कई अङ्कों में छप चुका है। प्रकाशकों ने इसे पुस्तिक का रूप देकर बड़ा काम किया है। क्योंकि हिन्दी के अख़बार वालों के लिए इसमें बड़े काम की बातें हैं। साधारण पाठक भी इससे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेम-कहानी—लेखक, श्री० विनोदशङ्कर जी व्यास। पृष्ठ-संख्या ५४, मूल्य ।।)

विक्टर ह्यूगो फ़्रान्स का विश्वविख्यात उपन्यास-लेखक था और डोस्टावेस्की रूस का। इस छोटी सी पुस्तिका में इन्हीं दोनों साहित्य-महारथियों की आप-बीती प्रेम-कहानियाँ हैं और हैं, बड़ी ही रोचक। पुस्तक में दोनों लेखकों और उनकी प्रेमिकाओं के चित्र भी हैं।

विनोदशङ्कर व्यास की ४१ कहानियाँ—आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ३७७; मूल्य २)

'मनसुखा' के शब्दों में 'व्यास जी गल्प-लेखकों की नाक हैं।' परन्तु हमारे ख़याल में कोई गल्प-लेखक व्यास जी को अपनी नाक के रूप में चेहरे पर चिपकाना स्वीकार न करेगा, इसलिए व्यास जी नहीं, वरन् उनकी

कहानियाँ, हिन्दी कहानियों की नाक हो सकती हैं। क्योंकि वे सुन्दर होती हैं और सुडौल भी! व्यास जी छोटी कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं और जिस तरह महाकवि बिहारी के दो सतर के दोहे में भावगाम्भीर्य लहराता है, उसी तरह व्यास जी की छोटी सी कहानी में भी मनों 'कहानीपन' निहित होता है। यह संग्रह व्यास जी की कहानियों के कई संग्रहों का समष्टि है। सभी कहानियों में रोचकता और मौलिकता, भाषा का सौष्ठव और सुन्दर वर्णन-शैली है।

महाकवि चच्चा—लेखक, श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द जी वर्मा; आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या १४१, मूल्य १)

'मेरी हजामत' और 'मगन रहु चोला' के बाद 'महाकवि चचा' के रूप में यह तीसरी हास्य-रस की पुस्तक श्री० अन्नपूर्णानन्द जी ने लिखी है और ख़ूब सफल भी हुए हैं। इसमें देश की सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और धार्मिक त्रुटियों पर बड़ा ही मज़ेदार विद्रूप किया गया है। कहीं-कहीं तो लेखक ने कमाल कर दिया है। शैली भी सम्पूर्ण मौलिक है। 'चाँद' के पाठकों से हमारा साग्रह अनुरोध है कि 'महाकवि चचा' अवश्य पढ़ें। क्योंकि इसमें मनोरञ्जन भी है और शिक्षा भी।

अश्रुदल—लेखक, श्रीयुत मङ्गलाप्रसाद विश्वकर्मा, विशारद। आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या १५६; मूल्य ।॥)

इसमें विश्वकर्मा जी की स्मृति, प्रताड़ित, कुसुम, अदृष्ट और ज़हर के टुकड़े—ये पाँच कहानियाँ संग्रहीत हैं। इस संग्रह के सम्बन्ध में 'दो शब्द' 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक श्री० पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी ने लिखा है। सचमुच कहानियों में भावुकता और मौलिकता है। कई कहानियाँ तो बड़ी ही हृदयग्राहिणी हुई हैं।

उपर्युक्त सभी पुस्तकें बलदेव-मित्र-मण्डल, राजा दरवाज़ा, बनारस सिटी से मिल सकती हैं और वही इनका प्रकाशक भी है।

'सुधा' (विशेषाङ्क)—सम्पादक श्री० दुलारेलाल भार्गव।

लखनऊ की सहयोगिनी 'सुधा' ने अपना दिसम्बर का अङ्क एक बृहद् विशेषाङ्क के रूप में निकाला है। 'चाँद' के आकार के ४८२ पृष्ठों का यह विशेषाङ्क हिन्दी के बहुत से प्रतिष्ठित लेखकों और कवियों की रचनाओं का यह सुन्दर संग्रह है। एकरङ्गे और बहुरङ्गे चित्र भी हैं। अङ्क संग्रह करने योग्य बना है। मूल्य १॥) मिलने का पता—'सुधा' कार्यालय, ३६, लाटूश रोड, लखनऊ।

'विश्वमित्र'—(मासिक) सम्पादक डॉ० हेमचन्द्र जी जोशी, डी० लिट् और श्री० इलाचन्द्र जोशी। आकार 'चाँद' जैसा, वार्षिक मूल्य ६), एक संख्या का मूल्य ।॥); प्रकाशक विश्वमित्र कार्यालय, कलकत्ता।

साप्ताहिक और दैनिक के साथ ही 'विश्वमित्र' अब मासिक रूप में भी प्रकाशित होने लगा है। सम्पादन, चित्र, छपाई और सफ़ाई आदि सभी दृष्टियों से मासिक 'विश्वमित्र' सुन्दर हो रहा है। अब तक जितने अङ्क निकले हैं, सभी सुन्दर और उपयोगी विषयों से पूर्ण हैं। हम सहयोगी का सादर स्वागत करते हुए उसकी उन्नति की कामना करते हैं।

'प्रकाश'—सम्पादक श्री० नरसिंहराम जी शुक्ल, आकार क्राउन, पृष्ठ-संख्या १८, वार्षिक मूल्य २॥), मिलने का पता—प्रकाश कार्यालय, रीवाँ।

यह साप्ताहिक पत्र अभी हाल से ही निकलने लगा है। इसमें सामयिक समाचार-संग्रह के अतिरिक्त अन्य उपयोगी विषय भी रहते हैं। सम्पादन अच्छा होता है, परन्तु उन्नति की गुञ्जाइश है। भारत के एक देशी राज्य से निकलने के कारण इस नवीन सहयोगी का हम तहे-दिल से स्वागत करते हैं। यह चिरञ्जीवी हो।

—'गुणग्राही'
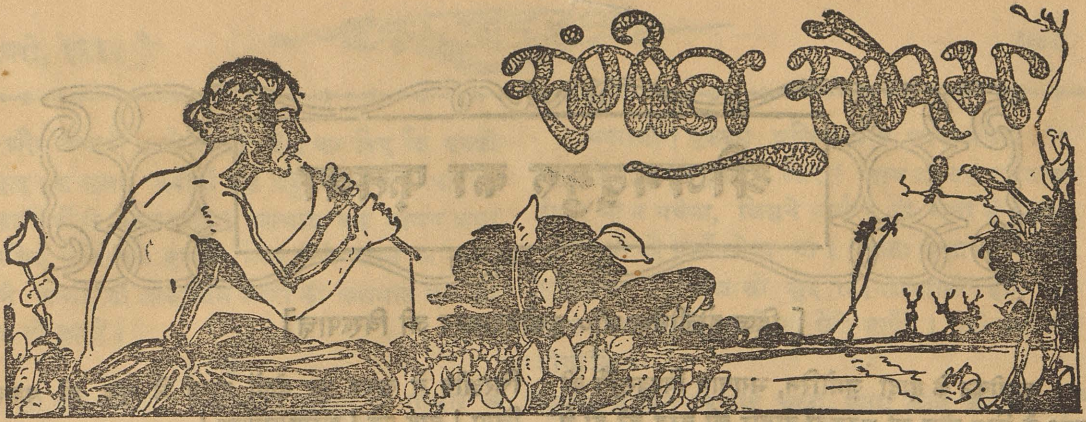
[स्वरकार—श्रीयुत
नीलू बाबू

भूपाली—तीन ताल

[शब्दकार—श्रीयुत
नीलू बाबू]

स्थायी—समझ लो मतलब का संसार ।
सुख हित लोग जगत में अपना, करता है व्योपार ॥
अन्तरा—मातु पिता सुत दारा परिजन, प्रेम करे दिन चार जगत में ।
कष्ट पड़े जब बात न पूँछे, बन्धु सखा अरु नार ॥

स्थायी

	१				×				३				०		
सं	ध	सं	प	—	ग	प	ध	प	ग	प	ग	रे	स	—	—
स	म	झ	लो	—	म	त	ल	ब	का	आ	स	अं	सा	—	र
ग	ग	रे	ग	रे	—	रे	रे	स	रे	ग	रे	स	स	ध़	—
सु	ख	हि	त	लो	—	ग	ज	ग	त	में	ए	अ	प	ना	—
प़	ध़	स	रे	ग	प	ध	प	सं	ध	रें	सं	ध	प	ग	रे
क	र	ता	आ	ह	ए	बे	यो	पा	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आर

अन्तरा

ग	—	ग	ग	प	—	ध	प	सं	—	सं	—	ध	रें	सं	सं
मा	—	तु	पि	ता	—	सु	त	दा	—	रा	—	प	रि	ज	न
ध	—	ध	ध	सं	—	रें	रें	सं	रें	गं	रें	सं	सं	ध	—
प्रे	—	म	क	रे	—	दि	न	चा	आ	र	ज	ग	त	में	—
गं	—	गं	गं	रें	—	गं	गं	सं	—	रें	रें	ध	—	सं	—
क	—	ष्ट	प	ड़े	—	ज	ब	बा	—	त	न	पू	—	छे	—
ग	—	ग	रे	ग	प	ध	सं	ध	रें	सं	ध	प	ग	रे	स
बं	—	धु	स	खा	आ	अ	रु	ना	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आर

500

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

कालीकट के दादा ज़मोरिन, भगवान विश्वमूर्ति की रक्षा के लिए चीन की क़हक़हा दीवार की तरह डटे ही थे कि ऊपर से सनातनियों ने उन्हें 'धर्म-धीर महावीर' की उपाधि दे डाली। लीजिए, फिर क्या है—'एक तो तितलौकी दूसरे नीम चढ़ी !'

❀

ख़ैर, 'महावीर' के पीछे यह 'धर्म-धीर' शब्द वैसा ही फ़िट हो गया है, जैसे हनूमान जी के पीछे उनकी लम्बी दुम। बस, अब बाबा विश्वमूर्ति के अभिभावकों को चाहिए कि लगे हाथ कुछ चिथड़े और दो-चार टीन किरासन तेल का भी जुगाड़ कर डालें, ताकि इन कलियुगी हनूमान जी को अपनी बुद्धि की अन्तिम बानगी दिखाने का भी काफ़ी सामान मुहय्या हो जाए।

❀

क्योंकि पक्की 'महावीरता' का प्रदर्शन तो तभी होगा, जब अछूतोद्धारक मनीषियों की चिताओं में आग लगाने पर—"पूँछ बुझाई खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि" ये सनातनी महावीर जी डट जायँगे मूँछों पर ताव देते हुए बाबा विश्वमूर्त्ति के सामने, जैसे हनूमान जी लङ्का जला कर सीता जी के सामने जा डटे थे।

❀

तब तक सनातनियों को चाहिए कि अपनी पेंदी का बल यह सिद्ध करने में लगा दें कि—'हरिजन हिन्दू ही नहीं हैं।' वल्लाह, यह नुसख़ा सबसे अधिक मुजर्रब साबित होगा और सनातनधर्म का भविष्य पॉलिश किए हुए जूते की तरह चमक उठेगा !

❀

अपने राम को यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि इस सम्बन्ध में चिरञ्जीव 'वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ' ने ठुमुक कर अपना क़दम आगे भी बढ़ा दिया है। अन्यान्य सनातनी तो डाल ही थामे रह गए थे, परन्तु हमारे चिरञ्जीव ने लपक कर दोनों हाथों से मूल ही पकड़ लिया ! वाह पट्ठे ! आयुष्मानभव !

❀

यानी, उस दिन ख़ास गुरुवायूर में 'वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ' (वल्लाह, ऐसा श्रुति-मधुर नाम है, जैसे इस्लाम कुली पाँड़े !) का एक जलसा हुआ और उसके स्वागताध्यक्ष ने बग़ैर किसी शर्म व-लिहाज़ के बरजस्ता कह डाला कि 'हरिजन हिन्दू नहीं हैं !' और क्या ? भाड़ में जाय हरामज़ादी हया ! कौन पड़ा रहे, उसके फेर में जो है सो ?

❀

इसी सभा में एक चण्डूख़ोर से चिपके चेहरे वाले बङ्गाली तर्करत्न जी भी विराजमान थे। ये जब गुरुवायूर के मन्दिर में जाने लगे थे, तो पण्डों ने इन्हें मत्स्यभोजी बङ्गाली कह कर बाहर निकाल दिया था। मगर चूँकि लज्जा और आत्माभिमान आदि व्यर्थ के बखेड़ों को आपने बङ्गाल में ही छोड़ दिया था, इसलिए निर्विकार चित्त से—'शालारा बड़ो पाजी तो !' गुनगुनाते हुए बाहर निकल आए थे। ख़ैर—

❀

बङ्गमाता के यशस्वी 'खोका बाबू' अर्थात् पण्डित-प्रवर तर्करत्न जी ने फरमाया—'ये अस्पृश्य जो हैं सो आर्यों की जारज सन्तान हैं !' भई वाह, ऐसी पावरफ़ुल बावन तोले की कही कि सभा वाले फड़क कर रह गए और अपने पूर्व-पुरुषों की प्रशंसा सुन कर होंठ चाटने लगे। अपने पूर्वजों की ऐसी प्रशंसा सुन कर भला, कौन ख़ुश न होता।

❀

मगर आपने क्या समझा ? अच्छा, सुनिए—बङ्गाल तर्करत्न, सनातनियों के पुरखे पक्के लम्पट थे ; घर-घर में घुस कर जारज सन्तान उत्पन्न करते फिरना उनका काम

था और अन्त में इतने दोग़ले पैदा कर दिए कि उनकी तादाद इस समय करोड़ों तक पहुँची हुई है! वाह रे, सनातनियों के बाबा-दादा! वल्लाह, उस समय अगर सुप्रसिद्ध अमेरिकन कुमारी मिस मेयो भारत का भ्रमण करने आतीं, तो तत्कालीन आर्यों की करामात देख कर मुग्ध हो जातीं।

❀

सो जनाबआली, अगर आप 'तुख़्म की तासीर' के क़ायल हैं, तो समझ सकते हैं कि बुज़ुर्गों के औसाफ़ से औलाद ख़ाली नहीं रह सकती। ऐसी हालत में वर्णाश्रम स्वराज-सङ्घ वाले जो कुछ कर रहे हैं, बजा कर रहे हैं, अपने बाप-दादों की अमर कीर्ति को अमर और अक्षुण्ण रखने की चेष्टा कर रहे हैं। योग्य पिता की योग्य सन्तान को यही तो चाहिए।

❀

कुछ भी हो साहब, दादा सनातन-धर्म के प्रत्येक आशिक़ेज़ार को यह जान कर परम प्रसन्नता होगी कि गाँधी बाबा के आन्दोलन का असर दादा जी के अनुयायियों के दिमाग़ की तह तक पहुँच गया है और अगर ख़ुदा ने चाहा तो अब की 'पागलपन' की दवा बेचने वालों की पौ-बारह रहेगी!

❀

अच्छा तो हाँ, महात्मा गाँधी जी इस मुल्क में कैसे आए और उन्होंने इतनी सफलता कैसे प्राप्त कर ली; इसका भी एक राज़ उक्त बङ्गाली तर्करत्न ने फ़ाश कर दिया है। आख़िरश जब खोपड़ी का 'पिहान' खुल ही गया था, बेचारे कुछ बाक़ी कैसे छोड़ देते?

❀

कलकत्ते के एक पत्र में आपने यरवदा-जेल से जाकर गाँधी जी से मिलने का विवरण छपवाया है। उसमें आप लिखते हैं—"मैंने गाँधी जी से कहा, जब आप अफ़्रिका में काम कर रहे थे तो मैंने आपकी सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी कि हे ईश्वर, इस वीर पुरुष को यहाँ भेज दो। यहाँ आने पर आपके लिए गीतामृतवल्ली का पाठ कराया। भगवान ने मेरी प्रार्थनाएँ पूरी कीं। अब अगर आपके द्वारा धर्म की हानि हो तो मुझे भी उसके लिए अपराधी होना पड़ेगा।"

❀

अपराधी? एकदम कुम्भिपाक में जाना पड़ेगा और वह भी पुश्त-दर-पुश्त के लिए! साथ ही वह कमबख़्त ईश्वर भी न बचेगा, जिसने तर्करत्न की बातों में आकर गाँधी जी को यहाँ भेजा था। फलतः जनाब, अपनी मूर्खतावश ये तर्करत्न जी ख़ुद तो नरकगामी होंगे ही, साथ ही अपने ईश्वर को भी लेते जाएँगे। वही कहावत होगी कि—

"कुटुम्ब सहित नरकहिं चला, साथ लिए जजमान!"

❀

ख़ैर, "नहीं बोया तुख़्म अच्छा तो कब पाएगा फल अच्छा!" अभागे तर्करत्न जी को अपना कर्म-फल भोगने दीजिए और गाँधी-युग के इतिहास की यह अनूठी सामग्री संग्रह कर लीजिए कि महात्मा गाँधी की वर्तमान सफलता के हेतु यही तर्करत्न जी हैं। न ये बङ्गमाता के अनूठे लाल जन्म लेते और न गाँधी जी का आविर्भाव होता।

❀

पड़ोस के धोबी का गधा रोज़मर्रा हाजी साहब के चबूतरे पर चढ़ जाता और वहाँ लीद करके गन्दा कर जाता। हाजी परेशान थे। रोज़ दुआ माँगते कि या अल्लाह, धोबी का यह गधा मर जाय। इत्तफ़ाक़ की बात, एक रोज़ हाजी का घोड़ा बीमार पड़ा और मर गया! अब तो हाजी बिगड़ उठे और आस्मान की ओर मुँह करके बड़े ज़ोर से अल्लाह को डाँटा—इतने दिन ख़ुदाई करते बीते, मगर अभी तक तुझे घोड़े और गधे की भी तमीज़ न हुई!

❀

ठीक यही दशा उपर्युक्त तर्करत्न के ईश्वर की है। उसने उनके कहने से गाँधी जी को अफ़्रिका से यहाँ भेज तो दिया, परन्तु साथ ही उनसे ऐसा काम कराना आरम्भ किया कि बेचारे तर्करत्न की आक़बत ही बिगड़ गई। इसलिए अपने राम की राय है कि अब तर्करत्न जी अपने ईश्वर की मतिगति दुरुस्त करने के लिए 'गीतामृतवल्ली' का पाठ आरम्भ करें।

❀

केवल बङ्गाल के तर्करत्न ही नहीं, काशी के विद्यावाचस्पति, तर्कवागीश, वेदान्तशास्त्री और व्याकरणाचार्य भी इस अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन के कारण कुकरौंछी-विताड़ित जीव विशेष की तरह व्याकुल हैं।

यहाँ तक कि जब 'हेंपों-हेंपों' करते-करते कण्ठ सूखने लगता है तो फ़ौरन 'दुलत्ती' झाड़ना आरम्भ कर देते हैं।

❀

आइए, काशी का एक क़िस्सा सुनावें। उस दिन श्री० भगवानदास जी के सभापतित्व में एक सभा हो रही थी। उद्देश्य था, यह निर्णय करना कि अस्पृश्यता शास्त्र-सम्मत है या नहीं? सनातनी शास्त्रियों ने ढेले बरसा कर अपने कुल-परम्परागत पाण्डित्य और शास्त्र-ज्ञान का ऐसा परिचय दिया कि बेचारी सभ्यता को दुम दबा कर वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो जाना पड़ा।

❀

परन्तु बी बेहयाई तो कुछ ऐसे कमज़ोर दिल की हैं नहीं; उन्होंने चट लहँगा समेटा और उछल कर जा पहुँचीं एक शास्त्री-सुवन की खोपड़ी पर और तुरन्त ही खाद-पानी का प्रयोग करके उसकी (खोपड़ी की) उर्वरता की ऐसी वृद्धि कर दी कि देखने वाले चकित रह गए!

❀

बी बेहाई के गोबर-पानी की गन्ध मिली तो सनातनी-सरस्वती के मुँह में भी पानी भर आया। वे फ़ौरन अपने मञ्जुल कर-कञ्जों में वीणा लिए उपर्युक्त टेल्हाराम अर्थात् शास्त्री-सुवन की जिह्वा पर आ विराजीं और वे बोल उठे—'सभापति (आचार्य भगवानदास जी) संस्कृत कम जानते हैं, उन्होंने मनुस्मृति का जो श्लोक सुनाया है, उसका अर्थ ग़लत बताया है।' वाह पट्ठे! 'बाप न मारी मेंडकी और बेटा तीरन्दाज़!'

❀

किसी ने पूछा—तो आपही कृपा करके मनुस्मृति के उस श्लोक का शुद्ध अर्थ बता दीजिए। लाहौल बिला कुव्वत! अजी, ये टेल्हाराम कोई तोता-मैना थोड़े ही थे, जो मनुस्मृति का श्लोक और अर्थ उन्हें याद होता। उन्होंने एक बार सिर खुजलाया और फिर कृतज्ञ दृष्टि से पृथिवी की ओर देखा, जिसकी छाती पर उनके जैसे बहुत से भू-भार मौजूद हैं, परन्तु वह उफ़ तक नहीं करती!

❀

ख़ैर, एक दूसरे चिरञ्जीव चहक उठे—'मनुस्मृति का श्लोक क्या कोई दोहा है, जो कोई उसे रट कर आवे!' बोल सनातनधर्म की जय! वल्लाह, कैसी मार्केदार बात कह डाली! धन्य हो दादा सनातनधर्म! सचमुच विधाता ने तुम्हारी तक़दीर बड़े ही मज़बूत क़लम से लिखा है। जब ऐसे-ऐसे सभाचतुर प्रत्युत्पन्नमति पण्डित तुम्हारे सहायक हैं, तो दो-चार दर्जन सूर्य और चन्द्र तो तुम्हारे आस-पास का अन्धकार दूर ही नहीं कर सकते, फिर गाँधी और मालवी की क्या हस्ती है!

❀

यह प्रसन्नता की बात है कि काशी की विद्वन्मण्डली अस्पृश्यता और स्पृश्यता के निर्णयार्थ पोथी-पत्रा और शास्त्र-पुराण के झगड़े में नहीं पड़ना चाहती। अजी, जब लाठी-सोंटा, ढेला-ईंट और परमपिता परमात्मा का प्रदान किया हुआ, हाथ, दाँत और नख मौजूद ही हैं, तब नाहक़ बेचारी पोथियों को क्यों तकलीफ़ दी जाय। मतलब तो धर्म-रक्षा से है, न कि पाण्डित्य-प्रदर्शन से।

❀

और ये बेचारी पोथियाँ इन बाल की खाल निकालने वाले पण्डितों के सामने रखने के लिए थोड़े ही हैं। इनकी रचना तो आचार्यों ने की थी, उनके लिए जो उन पर श्रद्धा रखते हैं, फूल और चन्दन द्वारा उनकी पूजा करते हैं और उन पर 'नग़द-नारायण' चढ़ाते हैं। जिससे जो है सो भगवती तोंद की पूर्ति होती है और—मगर किसी से कहिएगा नहीं—जजमानों की आँख बचा कर कभी-कभी दाल की मण्डी की भी सैर हो जाती है।

❀

इस समय अगर शास्त्रों के अर्थ आदि पर बहस-मुबाहसा हो तो कमबख़्त अख़बार वाले उसे छाप कर भण्डाफोड़ कर दें और जनता उसका वास्तविक अर्थ समझने लगे। तो फिर आप ही अपने बाप के मत्थे पर हाथ धर कर बताइए, कि दक्षिणा की डौल पर पानी फिर जाय या नहीं? कहीं लोगों को मालूम हो जाए कि धर्म और ईश्वर सबके लिए हैं तो धर्म की ठीकेदारी ही टूट जाए।

❀

आपको पता नहीं, पञ्जाब के जालन्धरियों ने वहाँ कोई दलितोद्धार मण्डल क़ायम कर रक्खा है। इस मण्डल ने कुछ हिन्दी जानने वाले अछूतों को पुरोहिती

की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी है। अब ये अपना ब्याह और श्राद्ध आदि स्वयं कर लेंगे और दक्षिणा रक्खेंगे, सँभाल के अपनी अण्टी में ! भला, यह अनर्थ नहीं तो क्या है ?

❀

इसीलिए कहते हैं, कि भैया, अगर अपना कल्याण चाहते हो, और बाल-बच्चों को जठर-ज्वाला से बचाए रखना चाहते हो, तो इस अवसर पर पोथियों को पवित्र विदेशी कपड़े के पीले बेठन में कस कर बाँध लो और उठा कर पण्डिताइन जी की गहने वाली पिटारी में बन्द कर दो। सभा-समितियों का काम तब तक दाँतों और नखों से चला लो। धर्म के नाम पर इनका भी सदुपयोग हो जायगा और दक्षिणा का डौल भी बना रहेगा।

❀

अर्थ का अनर्थ मूर्खों के सामने चल सकता है, विद्वानों के सामने नहीं। परन्तु लाठी-ढेले और दाँत-नख की गति तो अबाध है। चाहो तो बाप का भी मुँह नोंच लो। ज़बान को लगाम देने की आवश्यकता नहीं, कुछ घोड़े थोड़े ही हैं, जो लगाम दें। फलतः आचार्य के लकड़दादा जी भी जिस विद्वान की जूतियों का तसमा खोलने की योग्यता न रखते हों, उसके सम्बन्ध में भी यह कह देने में कि 'ये संस्कृत नहीं जानते', कुछ बुराई नहीं ! क्योंकि अपने तो बाबा विश्वनाथ की कृपा से 'धृष्ठ' ठहरे। अपने को क्या ?

❀

ज़रा परदादा के लकड़दादा को तो देखो, कैसे चतुर-चूड़ामणि त्रिकालदर्शी महापुरुष थे। पहले से ही एक श्लोक बना कर रख दिया कि शास्त्र पढ़ने का अधिकार सबको नहीं है। यही नहीं, अगर उनके मुँह से निकला हुआ कोई वेद-मन्त्र किसी शूद्र के कानों में घुस जाता तो वे न तो अपने मुँह को पीटते और न उस मन्त्र को गोबर और गोमूत्र से धोकर शुद्ध करते, बल्कि उसी शूद्र को पकड़वा मँगाते और उसके कानों में सीसा गला कर ढलवा देते ! आख़िर धर्मपरायण ऋषि थे कि नहीं ?

❀

और उसी पवित्र कुल में उत्पन्न होकर तुम ऐसे नालायक़ हो जाओगे कि शरीर में शक्ति रहते और दाँतों में समूची सुपारी तोड़ने का बल रखते हुए, सभा में—शूद्र और अस्पृश्य आदि सबके सामने शास्त्रों के अर्थ पर विचार करने बैठोगे ? राम-राम ! भला ऐसा अनर्थ ! ऋषियों का विमल वंश डूब थोड़े ही गया है।

❀

इस समय प्रत्येक असली ऋषि-सन्तान का कर्त्तव्य है कि वह सनातन-धर्म के शरीर पर जमी हुई युग-युगान्तर की काई को रत्ती भर भी अलग न होने दे। शास्त्र और पुराण तो क्या, वेदों के बाप भी अगर आकर कहें कि हिन्दू-मात्र को मन्दिरों में जाने का अधिकार है, विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है, बाल-विवाह बेवक़ूफ़ी है और वृद्ध-विवाह पाप है, तो कदापि नहीं मानना चाहिए। इसके लिए जितनी भी बेवक़ूफ़ी करते बने, कर डालो। यही तो अवसर है, इसी दिन के लिए तो बेचारी (बेवक़ूफ़ी) मस्तिष्क में पैर फैलाए बैठी है।

❀

ख़ैर, जिस तरह महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यों के लिए आन्दोलन करके सनातन-धर्म की जड़ में मट्ठा डाल दिया है, उसी तरह इलाहाबाद हाईकोर्ट के माननीय जजों ने भी एक भीषण अनर्थ कर डाला है।

❀

क़िस्सा यों है कि अलीगढ़ के बाबा देवीनाथ ने अपने चेले को देवी की बलि चढ़ा दी ! सो, इस सम्पूर्ण धर्मानुमोदित कार्य के लिए बाबा को 'धर्मधीर महावीर' की पदवी देना तो दूर रहा, उलटे अलीगढ़ के सेशन जज साहब ने उन्हें बलिदान का 'टेस्ट' लेने के लिए फाँसी पर चढ़ जाने की आज्ञा दे दी और इलाहाबाद-हाईकोर्ट ने सेशन जज के फ़ैसले को बहाल रक्खा !

❀

आशा है कि काशी के सनातनी पण्डित और उनका टेहा-मण्डल शीघ्र ही इलाहाबाद हाईकोर्ट के विरुद्ध कोई 'फ़तवा' देगा। क्योंकि हाईकोर्ट ने दिन-दहाड़े एक पवित्र धर्म-कार्य में हस्तक्षेप करके एक देवी-भक्त के धर्म-विश्वास को धक्का पहुँचाया है। हालाँकि ब्रिटिश-सरकार की अटल प्रतिज्ञा है कि वह किसी के धर्म-विश्वास पर आघात न करेगी।

पूछते हैं सब तबीयत किस पे है आई हुई,
तेरी बदनामी का बायस[१] मेरी रुसवाई हुई।
इसमें है आँधी की ताक़त, इसमें है दरिया का ज़ोर,
क्या तबीयत रोकने से रुक सके आई हुई।
जो हमें वह बेवफ़ा भी, बेवफ़ा कहने लगा,
तर्क-उलफ़त[२] से हमारी और रुसवाई हुई।
हो गए ख़ुश जब कोई मजमा नज़र आया मुझे,
रो लिए जी खोल कर जिस वक़्त तनहाई हुई।

—"नूह" नारवी

ज़िन्दगी पहले बहुत फिरती थी इतराई हुई,
आख़िर-आख़िर मौत की ख़ुद ही तमन्नाई[३] हुई।
दे पयामे-गुल[४] क़फ़स[५] वालों को ऐ बादेसबा,[६]
क्या दबे पाँवों चली जाती है कतराई हुई।
हो गए क्या-क्या न जलवे बज़्मे-आलम[७] से निहाँ,
मेरी आँखें ढूँढ़ती हैं उनको घबराई हुई।

—"ज़या" देवान्दपुरी

तोड़ कर दिल को उसी ने दिल के टुकड़े कर दिए,
जिस पे थी मेरी तबीयत टूट कर आई हुई।
दम के दम में दम पलट आया हमारा वक़्ते-नज़्आ,[८]
तुम जो आए, तो क़ज़ा भी टल गई आई हुई!

—"कुश्ता" गयावी

क्या तबीयत मनचली भी रङ्ग है लाई हुई,
इस पे मचली, उस पर आई, इसकी शैदाई हुई,

१—कारण, २—प्रेम का त्याग, ३—अभिलाषिनी, ४—फूलों का सन्देश, ५—पिंजड़ा, ६—पूर्वी हवा ७—संसार की महफ़िल, ८—अन्तिम समय।

शम्आ कहती है पतिङ्गे ख़ाक जल कर हो गए,
क्या भरी महफ़िल में मेरी आज रुसवाई हुई।

—"हुनर" गयावी

तू दिखा कर एक झलक ऐ छुपने वाला छुप गया,
क्या ख़बर तुझको कि दुनिया तेरी शैदाई हुई।
हम तो समझे थे कि क़ैदे-ज़िन्दगी से छुट गए,
टल गई लेकिन हमारी मौत भी आई हुई!

—"बेदिल" इलाहाबादी

इश्क़ोउलफ़त की कहानी लब पे है आई हुई,
फिर वही दुहरा रहा हूँ, बात दुहराई हुई।
आपके वहशी को वहशत में भी अच्छा शग़्ल है,
गिन रहा है धज्जियाँ दामन की सुलझाई हुई।

—"शैदा" आज़मगढ़ी

सहने-गुलशन[९] में यह किसकी जलवा-फ़रमाई[१०] हुई,
नाज़ से बादेसबा चलती है इठलाई हुई।

—"हक़ीर" रायबरेलवी

बाद एक मुद्दत के दोनों में शिनासाई हुई,
ज़िन्दगी थी मौत से इस दर्जा घबराई हुई।
नक़्श ज़र्रे-ज़र्रे पर तस्वीरे-रुसवाई हुई,
मेरी मुश्ते-ख़ाक[११] है दुनिया की ठुकराई हुई।
पुरसिशे-आमाल[१२] से ख़िलक़त[१३] है घबराई हुई,
हश्र की दुनिया में, दुनिया भर की रुसवाई हुई।
क्यों न ऐ सय्याद, अब रग-रग में बिजली दौड़ जाय,
दिल जलाने को गुलों पर है बहार आई हुई।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

९—बाग़ का मैदान, १०—शुभागमन, ११—मुट्ठी भर ख़ाक, १२—करतूत की पूछताछ, १३—दुनिया।
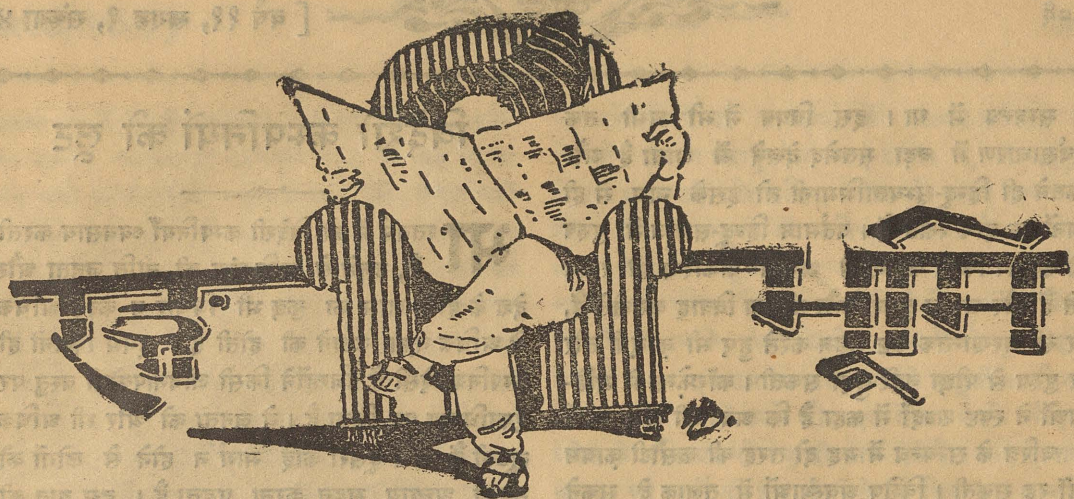
[सम्पादकीय]

महिला-सम्मेलन

इस बार का महिला-सम्मेलन, जिसका अधिवेशन बड़े दिन की छुट्टियों में लखनऊ में हुआ था, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भारतीय महिलाएँ भी संसार-व्यापी परिवर्तन के प्रभाव से बची नहीं हैं। यह सच है कि वे अभी तक पहले के समान ही घर-गृहस्थी के झमेले में पड़ी हैं और उसी भाँति पुरुषों की सेवा में जीवन बिता रही हैं, पर उनके मानसिक क्षेत्र में महान परिवर्तन हो रहे हैं। यद्यपि इन परिवर्तनों की ध्वनि अभी बहुत सौम्य है, पर उससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि स्त्रियाँ अब अधिक समय तक वर्तमान अधिकारविहीन अवस्था में नहीं रह सकेंगी। उनके ऊपर जो सामाजिक अन्याय सैकड़ों-हज़ारों वर्षों से होते आ रहे हैं, उनका अब वे स्वयं अनुभव करने लगी हैं और उनके विरुद्ध आवाज़ भी उठाने लगी हैं। अब तक हमारे यहाँ सामाजिक अथवा अन्य सार्वजनिक मामलों में स्त्रियों का कोई स्थान न था; पुरुष ही इन विषयों में निर्णयकर्ता समझे जाते थे। पर अब स्त्रियाँ समस्त क्षेत्रों में 'पूर्ण समानता' का दावा करने लगी हैं। वे अपने लिए नागरिकता के उन तमाम अधिकारों को माँग रही हैं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं। केवल वादविवाद करने वाली कमिटियों और कौन्सिलों में ही नहीं, वरन् सब प्रकार की सरकारी नौकरियों और व्यवसायों में भी वे अपने लिए स्थान चाहती हैं। उत्तराधिकार और सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में भी वे बराबरी का दावा करती हैं और अनिवार्य रूप से किसी न किसी पुरुष की आश्रिता बन कर रहना पसन्द नहीं करतीं। ख़ैर, ये परिवर्तन और सुधार तो ऐसे हैं, जिनकी चर्चा स्त्रियों में बहुत समय से किसी न किसी रूप में होती चली आई है, पर कॉन्फ्रेन्स ने दो प्रस्ताव ऐसे पास किए हैं, जो स्त्रियों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने की सूचना देते हैं। जिन प्रश्नों के सम्बन्ध में अभी अधिकांश पुरुष भी हिचकिचाते हैं, उनको स्त्रियों ने साहसपूर्वक उठाया है और उनके सम्बन्ध में मार्के के प्रस्ताव पास किए हैं। ये प्रस्ताव सन्तान-निग्रह और तलाक़-प्रथा के सम्बन्ध में हैं। सन्तान-निग्रह का प्रस्ताव गत वर्ष भी कॉन्फ्रेन्स में पेश किया गया था। पर प्रतिनिधियों की बहुत बड़ी संख्या ने उसके विरुद्ध मत दिया और उसके पक्ष में केवल सात मत आए थे। पर इस बार तख़्ता आश्चर्यजनक रूप से लौट गया। प्रस्ताव के विरुद्ध केवल सात हाथ उठे और वह बहुत बड़े बहुमत से पास हो गया। यह घटना बतला रही है कि हवा किस रुख़ को बह रही है। प्रस्ताव में केवल सन्तान-निग्रह का औचित्य और आवश्यकता ही स्वीकार नहीं की गई है, वरन् म्युनिसिपैलिटियों और लोकल बोर्डों से अनुरोध किया गया है कि वे इसके लिए विशेष रूप से 'क्लिनिक' क़ायम करें, जहाँ पर जनसाधारण को इस सम्बन्ध में व्यवहारिक उपाय बतलाने का प्रबन्ध हो। दूसरा प्रस्ताव तलाक़-प्रथा

के सम्बन्ध में था। इस विषय में भी अभी तक सर्वसाधारण में बड़ा मतभेद देखने में आता है और कितने ही हिन्दू-सभ्यताभिमानी तो इसके नाम से ही कानों पर हाथ रखते हैं। वर्तमान हिन्दू-समाज में पुरुष तो स्त्री को किसी कारण से अथवा अकारण ही त्याग देते हैं और अपना दूसरा और तीसरा विवाह कर लेते हैं, पर स्त्री मरणान्तक कष्ट सहन करते हुए भी क़ानूनी तौर पर पुरुष से पीछा नहीं छुड़ा सकती। कॉन्फ्रेन्स में महिलाओं ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अब स्त्री और पुरुषों के चरित्र के सम्बन्ध में यह दो तरह की कसौटी क़ायम नहीं रह सकती। विशेष अवस्थाओं में तलाक़ दे सकने का अधिकार स्त्रियों को मिलना आवश्यकीय है। वे वैवाहिक सम्बन्ध को कितनी ही पश्चिमी महिलाओं की भाँति खिलवाड़ की चीज़ नहीं बनाना चाहतीं, पर जहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध निभ सकना असम्भव हो और शोचनीय परिणाम उत्पन्न हो रहे हों, वहाँ स्त्री को इसकी अनुमति मिलनी ही उचित है। उदाहरण के लिए यदि पति कुष्ठ-रोग में ग्रसित हो अथवा वह नपुंसक हो, तो उस दशा में पत्नी को उसके साथ रहने को विवश करना अन्याय है। यदि कोई स्त्री उस अवस्था में भी उसे त्यागना न चाहे, तो यह उसकी इच्छा की बात है, पर जो इस अवस्था को अपने और अपनी सन्तान के लिए हानिकर समझती हैं, उनके लिए कोई मार्ग अवश्य होना चाहिए। इन दो प्रस्तावों के अतिरिक्त कॉन्फ्रेन्स ने अछूतों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया है, जिसमें इस प्रथा को मिटाने पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया है। अब तक स्त्रियाँ ही मुख्यतः रूढ़ियों की पोषक समझी जाती हैं और अनेक बार वे ही सुधार के कार्य में पुरुषों की बाधक होती हैं और इस दृष्टि से यह प्रस्ताव विशेष महत्वपूर्ण है। कॉन्फ्रेन्स की समस्त कार्यवाही पर दृष्टिपात करने से भारतीय रमणियों की जागृति में सन्देह नहीं रह जाता। सम्भव है, कुछ लोगों को ये लक्षण चिन्ताजनक प्रतीत हों, पर संसार की गति को देखते हुए ये अनिवार्य हैं। भावी राष्ट्र-निर्माण में स्त्रियों का स्थान बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण है और इस दृष्टि से स्त्रियों में स्वाधीनभाव का उदय मङ्गल-जनक ही समझा जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀

विदेशी कम्पनियों की लूट

भारतवर्ष में जो विदेशी कम्पनियाँ व्यवसाय करती हैं, उनमें से अधिकांश की नीति जनता और देश के हानि-लाभ का कुछ भी विचार न करके अधिक से अधिक नफ़ा उठाने की होती है। इनमें कितनी ही कम्पनियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने किसी जीवनोपयोगी वस्तु पर एकाधिपत्य कर लिया है। ये जनता को और भी अधिक लूटती हैं और दूसरा कोई मार्ग न होने से लोगों को उनका अन्याय सहन करना पड़ता है। इस बात की सचाई का एक बहुत स्पष्ट उदाहरण हाल में मिला है। भारतवर्ष में मिट्टी के तेल और पेट्रोल का व्यवसाय मुख्यतया बर्मा-शेल आयल कम्पनी के हाथों में है। इस कम्पनी के डायरेक्टर, शेयर होल्डर और मैनेजिङ्ग एजेण्ट आदि सब विदेशी हैं। इसका कोई विशेष प्रतिद्वन्दी न होने से यह अब तक तेल और पेट्रोल आदि के मनमाने दाम लिया करती थी। यदि कभी कोई साधारण प्रतिद्वन्दी उत्पन्न हो जाता था तो उसे भी अन्य कम्पनियों के समान ही ऊँची दर में माल बेचने को लाचार किया जाता था, और यदि वह इस पर राज़ी नहीं होता था तो माल की दर एकदम घटा कर उसके कारबार को नष्ट कर दिया जाता था। पर इस बार इस सम्बन्ध में एक विशेष घटना हुई है। बम्बई में एक नई कम्पनी 'वेस्टर्न इण्डिया कम्पनी' के नाम से स्थापित हुई है, जो रूस से पेट्रोल और तेल मँगा कर भारत में बेचती है। इसका पेट्रोल इस देश में बिकने वाले पेट्रोल से बहुत सस्ता और बढ़िया होने के कारण ख़ूब बिकने लगा है। यह देख कर बर्मा-शेल आयल कम्पनी में हलचल मच गई है। उसने तुरन्त अपने पेट्रोल का दाम बम्बई में १ रु० १० आना गैलन से घटा कर १ रु० गैलन कर दिया है, क्योंकि नई कम्पनी १–)॥ अथवा १=) गैलन के हिसाब से अपना पेट्रोल बेचती थी। पर अन्य स्थानों में पहली दर से ही माल बेचा जा रहा है, वरन् कहीं-कहीं उसका दाम दो पैसा फ़ी गैलन और बढ़ा दिया गया है। यह शायद इसलिए कि जिससे बम्बई-ब्राञ्च का घाटा पूरा हो सके। पर अब 'वेस्टर्न इण्डिया कम्पनी' भी अपना क्षेत्र बढ़ा रही है और आशा की जाती है कि उसका तेल थोड़े ही दिनों में भारत के

समस्त शहरों में पहुँच जायगा। जब ऐसा होगा तो बर्मा-शेल कम्पनी अवश्य ही वहाँ भी बम्बई की तरह अपना माल सस्ते दर से बेचेगी। पर वह इसके लिए तैयार नहीं कि बिना इस प्रकार की प्रतिद्वन्दिता के ही वाजिब नफ़ा लेकर जनता के हाथ माल बेचे। बम्बई में पेट्रोल का भाव एकाएक १० आने गैलन घटा देने से यह तो स्पष्ट है कि बर्मा शेल कम्पनी बहुत अधिक नफ़ा लेकर माल बेचती है और यदि वह चाहे तो अपने माल की दर हमेशा के लिए कम से कम चार-छः आने गैलन के हिसाब से घटा सकती है। पर ऐसा करने के बजाय वह व्यापार की मन्दी का रोना रो रही है और उसके मैनेजर साहब कहते हैं कि यदि रूस का तेल इसी तरह फैलता गया तो ढाई लाख हिन्दुस्तानियों और बर्मियों की रोज़ी मारी जायगी। उनका आशय यह है कि रूस के तेल से भारत का तेल-व्यवसाय चौपट हो जायगा और उसमें लगे हुए भारतीय मज़दूर बेकार हो जायँगे। पर इस प्रकार का भय निरर्थक है और इस भय के कारण भारत के करोड़ों ग़रीब लोग, जिनके लिए एक पैसा भी बड़ी चीज़ है, सदा मँहगे दर से तेल ख़रीदते रहें, यह भी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। जब संसार के समस्त देशों में सस्ते दर से तेल और पेट्रोल बिक रहा है, तो कोई कारण नहीं कि बर्मा-शेल आयल कम्पनी वैसा न कर सके।

❀ ❀ ❀

क्या अछूत हिन्दू नहीं ?

स्वार्थ और हठवादिता जो न करा दे वही थोड़ा है। यह बात आजकल कट्टरपन्थी सनातनियों के विषय में पूरी तरह चरितार्थ होती है। जब से अछूतों के मन्दिर-प्रवेश का आन्दोलन चला है, तब से वे सच-झूठ, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय का विचार त्याग कर हर तरह से उसका विरोध करने को तुल गए हैं। इस आवेश में वे यह भी भूल जाते हैं कि उनके मुँह से जो बात निकल रही है, वह युक्ति-सङ्गत भी है या नहीं और उससे उनका कल्याण होगा अथवा अकल्याण। ऐसी ही भावना के वश होकर उनमें से कुछ लोग यहाँ तक कह बैठते हैं कि 'अछूत हिन्दू ही नहीं हैं!' पाठक इसको कोरी दिल्लगी न समझें। गुरुवायूर में होने वाली सनातनधर्मियों की कॉन्फ्रेन्स की स्वागत-समिति के चेयरमैन दीवान बहादुर रामचन्द्र अय्यर ने, जो मद्रास के एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध वकील हैं, अपने भाषण में केरल प्रान्त के अछूतों को अहिन्दू बतलाया है। उनका कहना है कि ये अछूत 'हिन्दू-लॉ' की सीमा से बाहर हैं, उनके देवता और मन्दिर अन्य जाति के हिन्दुओं से भिन्न हैं, और वे अब से पहले किसी ज़माने में हिन्दू-मन्दिरों में नहीं गए। इन तमाम कारणों से वे अछूतों का हिन्दू होना स्वीकार नहीं करते और इस प्रकार उनके मन्दिर-प्रवेश के अधिकार की जड़ ही काट देते हैं। यदि दीवान बहादुर की बातों को हम थोड़ी देर के लिए सच मान लें तो क्या वे अन्य प्रान्तों के अछूतों का, जिनका शासन 'हिन्दू-लॉ' के अनुसार होता है और जिनका कोई पृथक देवता या मन्दिर नहीं है, हिन्दू होना स्वीकार करेंगे और उनको मन्दिर-प्रवेश का अधिकार देने को राज़ी होंगे? केरल प्रान्त के अछूतों में कुछ प्रथाएँ ऊँची जाति के हिन्दुओं से भिन्न होंगी, पर इनके आधार पर उनको 'हिन्दू-लॉ' से बाहर नहीं समझा जा सकता। हिन्दुओं की सैकड़ों अन्य जातियों में भी कुछ अपनी विशेष प्रथाएँ प्रचलित हैं और अदालत को 'हिन्दू-लॉ' के साथ उनका भी ध्यान रखना पड़ता है। 'हिन्दू-लॉ' में साधारणतया तलाक़ का विधान नहीं है, पर कितनी ही जातियों में पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो सकने का नियम पाया जाता है, इससे क्या वे अहिन्दू हो जायँगी? केरल प्रान्त के नायरों में विवाह और उत्तराधिकार की जो अद्भुत प्रथा प्रचलित है और जिसके अनुसार पुत्र के बजाय पुत्री घर की मालकिन बनती है, उससे क्या उनको अहिन्दू कहा जायगा? हिन्दू-समाज तो अनगिनती जातियों और उनसे भी बहुसंख्यक प्रथाओं का अजायबघर है, इसमें भिन्नता के आधार पर किसी को हिन्दुत्व से अलग कर सकना सम्भव नहीं। यही बात देवताओं और मन्दिरों के बारे में है। हिन्दू किसी एक देवता की पूजा नहीं करते। वे ३३ करोड़ में से कम से कम एक हज़ार देवताओं की तो मूर्ति बना कर पूजा करते ही होंगे। उत्तरी प्रान्तों में कितने ही लोग कबीरपन्थी हो गए हैं, जिनके मन्दिर हिन्दुओं के साधारण मन्दिरों से बिलकुल निराले होते हैं। यही हाल राधास्वामी और अन्य अनेक पन्थ वालों का है, तब इनको भी हिन्दू-जाति

के दायरे से बाहर निकालना चाहिए। जैनियों का धर्म तो हिन्दुओं से सर्वथा भिन्न है और उनके देवता तथा मन्दिर भी सर्वथा अलग होते हैं। तब उनकी गिनती हिन्दुओं में क्यों की जाती है और उनको हिन्दू-मन्दिरों में घुसने से क्यों नहीं रोका जाता? सच तो यह है कि 'हिन्दू' शब्द का दायरा बहुत फैला हुआ है और जो कोई व्यक्ति अपने को हिन्दू कहता है और हिन्दू-संस्कृति के अनुसार आचरण करता है, वही हिन्दू है। विशेषकर अछूतों को, जो हिन्दू-जाति के स्तम्भ हैं, हिन्दू न मानना तो परले सिरे की मूर्खता और अज्ञानता है। आज भी जब हिन्दू जाति और धर्म पर विपत्ति आती है और जब ऊँची जाति के हिन्दू दुम दबा कर घरों में घुसने लगते हैं, तो वे अछूत ही रक्षक बनते हैं। यदि कट्टरपन्थियों की बात मान कर चार या पाँच करोड़ अछूतों को हिन्दुओं से पृथक् कर दिया जाय, तो कुछ ही दिनों में समस्त हिन्दू जाति स्वयं अछूतों की दशा को प्राप्त हो जायगी।

❀ ❀ ❀

भारत का वस्त्र-व्यवसाय

बम्बई की 'मिल ओनर्स एसोसिएशन' की तरफ़ से हाल ही में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिससे भारत के वस्त्र-व्यवसाय पर अच्छा प्रकाश पड़ता और यह भी विदित होता है कि भारतवासी अगर निश्चय कर लें तो जीवन-निर्वाह की इस आवश्यकीय सामग्री के सम्बन्ध में शीघ्र ही स्वावलम्बी बन सकते हैं। उक्त रिपोर्ट के अनुसार इस समय समस्त भारत में कपड़े की ३४० मिलें हैं, जिनमें ३१७ पिछले वर्ष चलती रही हैं। इन मिलों में ४० करोड़ २२ लाख रुपए लगे हैं, जो गत वर्ष की अपेक्षा १२ लाख अधिक हैं। काम करने वाले मज़दूरों की संख्या क़रीब ४ लाख है, जिनमें रात में काम करने वाले सम्मिलित नहीं हैं। रिपोर्ट से प्रतीत होता है कि गत वर्ष के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव इस व्यवसाय के लिए बहुत शुभ हुआ है। क्योंकि पिछले वर्ष जहाँ कुल मिला कर २६ लाख १० हज़ार रुई की गाँठें (१ गाँठ ४ मन ३० सेर की होती है) इन मिलों में खपी थीं, इस वर्ष २९ लाख १० हज़ार गाँठों की आवश्यकता पड़ी। तकुओं और करघों की संख्या में भी क्रमशः २ लाख और ४ हज़ार की वृद्धि हुई है। इस वृद्धि में सबसे पहला स्थान अहमदाबाद का है, जहाँ ९० हज़ार नए तकुए और २३½ हज़ार करघे लगाए गए हैं। बङ्गाल भी इस सम्बन्ध में अच्छी उन्नति कर रहा है और आशा है कि कुछ दिनों में वह इस व्यवसाय का ख़ासा केन्द्र बन जायगा। बङ्गाल में स्वदेशी कपड़े की खपत बहुत अधिक है, पर अधिकांश माल बम्बई और अहमदाबाद से ही आता है। इस वर्ष वहाँ २० नई मिलों के खोलने की तैयारी हो रही है। इन लक्षणों से इस व्यवसाय का भविष्य बहुत आशापूर्ण जान पड़ता है। अगर मिलों के मालिक अपने प्रबन्ध में और अधिक उन्नति करें तथा कम से कम कुछ समय के लिए अधिक से अधिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति को त्याग कर देशहित की दृष्टि से काम करें, तो इससे अधिक वृद्धि हो सकेगी और देश की आर्थिक स्थिति बहुत-कुछ सुधर जायगी।

❀ ❀ ❀

भारत के पतन का कारण जात-पाँत

लाहौर में होने वाली जात-पाँत-तोड़क कॉन्फ़्रेन्स के सभापति सर हरीसिंह गौड़ अपने अभिभाषण में हिन्दू-जाति की निर्बलता का ज़िक्र करते हुए प्रश्न करते हैं:—

"जिस जाति की आध्यात्मिकता की ज्योति से अब भी समस्त एशिया प्रकाशित हो रहा है और जिसकी किरणें दूरवर्ती मेक्सिको और नार्वे तक जा पहुँची थीं, जैसा कि हाल की खोजों से प्रकट हुआ है, उसके वर्तमान शोचनीय पतन का क्या कारण हो सकता है? इस देश के मनुष्य ज्यों के त्यों हैं, वे उसी आबहवा और परिस्थिति में रहते हैं, उनकी संख्या पहले से दस गुनी हो गई है। तो भी वे संसार की समस्त छोटी-बड़ी जातियों की अपेक्षा अत्यन्त निर्बल और असहाय बने हुए हैं, इसका क्या कारण है?" वे स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—"हमारे समाज के ढाँचे के सिवाय और कोई चीज़ नहीं बदली है। इस ढाँचे ने समाज की जीवनी शक्ति का शोषण कर लिया है और उसकी एकता के आधार को नष्ट कर डाला है। इसने एक भाई को दूसरे भाई से लड़ाया है और उनको परस्पर में विश्वासघाती बना

दिया है। हमारे चरित्र का, जिसकी प्राचीन काल के लेखकों ने अत्यन्त प्रशंसा की है, पतन हो गया है, हमारा जीवन आनन्दशून्य हो गया है और हम कुत्ते-बिल्ली की तरह ज़िन्दगी बिताने लगे हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-समाज की वर्तमान दुर्दशा और निर्बलता का मूल कारण जात-पाँत का अभिशाप ही है। कहने वाले कह सकते हैं कि जाति-प्रथा किसी समय बड़ी उपयोगी थी और इसी ने विदेशियों के आक्रमण से समाज के अस्तित्व और विशुद्धता की रक्षा की है। ऐसे लोगों की ख़ातिर अगर थोड़ी देर के लिए चतुर्वर्ण की उपयोगिता स्वीकार भी कर ली जाय, तो उन ३॥ हज़ार जातियों का, जिनका वर्णन मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में पाया जाता है, औचित्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता। इनके कारण केवल हमारे फूट के भाव की वृद्धि होती है, हम छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाते हैं और किसी महान कार्य के लिए अपनी शक्ति का उपयोग सम्मिलित रूप से नहीं कर सकते। इसी के फल-स्वरूप हमको अपने से कहीं छोटी और कम योग्यता वाली जातियों के पन्जे का शिकार होना पड़ता है। यही हमारे यहाँ की अनेक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बुराइयों का मूल कारण है। अगर हम अब भी अपनी जाति और देश की रक्षा करना चाहते हैं, और चाहते हैं कि संसार की दूसरी जातियाँ हमको तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से न देखें, तो हमको पूर्ण शक्ति लगा कर अपनी जड़ खोखली करने वाली इस महा-व्याधि से छुटकारा पाने की चेष्टा करनी चाहिए।

❁ ❁ ❁

शक्कर के कारख़ानों की उन्नति

जब से टैरिफ़ कमिटी की सिफ़ारिश के आधार पर सरकार ने विदेशी शक्कर पर सवा सात रुपया प्रति हण्डर की चुङ्गी लगाई है, तब से भारतीय शक्कर के कारख़ानों की बड़ी उन्नति हुई है और उनकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। सन् १९३०-३१ में भारत में ३,५५,००० टन शक्कर तैयार हुई थी, जिसका परिमाण सन् १९३१-३२ में ४,२०,००० टन तक पहुँच गया है। अकेले संयुक्त-प्रान्त में इस वर्ष १८ नए कारख़ाने खोलने की तैयारी हो रही है। तो भी अभी इस सम्बन्ध में उन्नति की बड़ी गुञ्जायश है, क्योंकि इस समय भी भारत में जितनी शक्कर तैयार होती है, उससे कहीं अधिक विदेशों से आ रही है। टैरिफ़ कमिटी की रिपोर्ट से मालूम होता है कि सन् १९०८ में विदेश से ५ लाख टन शक्कर भारत में आई थी। सन् १९३० में इसका परिमाण बढ़ कर १० लाख टन तक जा पहुँचा। यद्यपि आर्थिक सङ्कट और अन्य कारणों से यह संख्या सन् १९३१ में ६ लाख टन रह गई, तो भी इसके लिए एक बहुत बड़ी धन-राशि देश से बाहर चली जाती है। इस वृद्धि का एक मुख्य कारण जनता में गुड़ के स्थान में शक्कर का उपयोग बढ़ाते जाने की प्रवृत्ति है। अन्यथा कोई कारण न था कि इस समय देश में शक्कर के इतने कारख़ाने खुल जाने पर भी विदेशों से सन् १९०८ की अपेक्षा अधिक शक्कर आती। इस परिस्थिति का प्रतिकार केवल इस देश में नए कारख़ाने खोल कर उनमें बढ़िया सफ़ेद शक्कर तैयार करने से ही हो सकता है। भारत में गन्ने के लिए उपयोगी भूमि की कमी नहीं है और यहाँ की आबहवा भी उसके अनुकूल है। गत वर्ष क़रीब २७ लाख एकड़ भूमि में गन्ना बोया गया था। अभी तक इसका अधिकांश गुड़ बनाने के काम आता है। पर गुड़ की क़ीमत इन दिनों बेहद घट गई है और इसलिए किसानों की अपार क्षति हो रही है। गुड़ के अलावा कितने ही स्थानों में पुराने तरीक़े से शक्कर भी बनाई जाती है, पर उसमें लागत बहुत अधिक पड़ती है और वह किसी तरह फ़ैक्टरियों में बनने वाली शक्कर से प्रतियोगिता नहीं कर सकती। फ़ैक्टरी में जहाँ गन्ने से ९-१० प्रति सैकड़ा शक्कर निकलती है, वहाँ पुराने तरीक़े से केवल ५ या ६ प्रति सैकड़ा निकलती है। इसलिए किसानों को गन्ने का उचित मूल्य भी तभी मिल सकता है, जबकि उससे बढ़िया शक्कर बनाई जाय। विशेषज्ञों के कथनानुसार गुड़ या पुराने तरीक़े से शक्कर बनाने से जहाँ किसानों को गन्ने का मूल्य ३-४ आना प्रति मन के हिसाब से मिलता है, वहाँ फ़ैक्टरी वाले अगर ईमानदारी से काम लें तो कम से कम ६-७ आना मन दे सकते हैं। इस दृष्टि से शक्कर के कारख़ानों की उन्नति देश की आर्थिक दशा और किसानों के हित दोनों की दृष्टि से वाञ्छनीय है।

❁ ❁ ❁

आत्म-निवेदन

गत मास के 'चाँद' में पाठकों ने संस्था पर होने वाले कुछ नए प्रहारों का विस्तृत विवरण पढ़ा होगा। पाठकों ने देखा होगा, कि गवर्नमेण्ट का कहना है कि जब तक संस्था से मेरा सम्बन्ध रहेगा, तब तक यहाँ से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं में "ऐसे प्रकाशनों की सम्भावना है, जो भारतीय दण्ड-विधान की कई धाराओं तथा ऑर्डिनेन्सों के अनुसार दण्डनीय हैं.... इत्यादि !"

पाठकों को विस्मरण न करना चाहिए कि मैंने संस्था का जन्म व्यापारिक दृष्टि से नहीं दिया था। मेरा एकमात्र लक्ष्य देश तथा समाज की सेवा करना था और मुझे इस बात का सन्तोष है कि पिछले लगभग ग्यारह वर्षों से मैंने अपने इस व्रत का ईमानदारी से पालन किया है, पर उस समय मैं संस्था का एकमात्र स्वामी था; मेरी नीति में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को न था, मैंने जो चाहा किया और अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण लाखों रुपए स्वाहा भी कर दिए; पर गत वर्ष से भविष्य में और भी ठोस एवं व्यापक सेवा करने की भावनाओं से प्रेरित होकर मैंने संस्था को एक लिमिटेड कम्पनी का रूप दिया। मेरा अनुमान था कि देश में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो निःस्वार्थ भाव से कम्पनी के हिस्से ख़रीद कर इस पुनीत कार्य में संस्था की सहायता करेंगे। पर मुझे पिछले एक वर्ष के अनुभव ने यह बतला दिया है कि यह मेरा भ्रम था। पूँजीपतियों की मनोवृत्ति आज भी वैसी ही ठोस एवं अवाञ्छनीय है, जैसी आज से १०० वर्ष पूर्व थी। वे कोई 'जोखिम' उठाने को तैयार नहीं हैं। अस्तु—

कम्पनी के डाईरेक्टर्स भविष्य में जिस व्यापारिक नीति से संस्था का सञ्चालन करना चाहते हैं, उससे मेरा घोर मतभेद है। इस प्रकार के मामलों में समझौता हो भी नहीं सकता—आत्मा की पुकार के सामने अपना सर्वस्व बलिदान कर देना ही एक ऐसी वसीयत है, जो मुझे बाप-दादों से मिली है और मैं भी अन्त तक उसकी रक्षा करने का पक्षपाती रहा हूँ। इस गुत्थी को सुलझाने के लिए, कम्पनी के अन्य डाईरेक्टरों के अतिरिक्त, कराची से रावबहादुर सेठ शिवरत्न जी मोहता (श्रद्धेय सेठ रामगोपाल जी मोहता के छोटे भाई) भी यहाँ पधारे थे। वे ४ रोज़ तक यहाँ रहे। बराबर मीटिङ्गस् होती रहीं। ये सारे सज्जन एकमत होकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे लोग वर्तमान परिस्थिति से तभी मुक़ाबला करके संस्था को आर्थिक कष्टों से मुक्त कर सकते हैं, जबकि मैं संस्था से एक बार ही अलग हो जाऊँ। इस बहुमत के आगे मुझे मस्तक झुकाना पड़ा

और फल स्वरूप मैंने पहिली जनवरी, १९३३ को अपने मैनेजिङ्ग डाइरेक्टरी के पद को त्याग दिया है।

प्रयाग के सुप्रसिद्ध व्यवसाई और धन-कुबेर पं० निरञ्जनलाल जी भार्गव ने कृपा-पूर्वक मेरे परित्यक्त-पद को सुशोभित करना स्वीकार कर लिया है। कम्पनी के डाइरेक्टर्स की हैसियत से अन्य कई व्यापार-कुशल मित्रों का सहयोग भी सौभाग्य से संस्था को प्राप्त है। जिसमें श्री० विशुननाथ जी सक्सेना, बी० ए०, एल्-एल्० बी० (जो यहाँ के एक धनी एडवोकेट होने के अतिरिक्त इलाहाबाद ज़िला कॉपरेटिव बैङ्क के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर भी हैं) तथा श्री० राजा श्रीराम सेठ तथा रायबहादुर लाला प्रयागनारायण साहब (भूतपूर्व एम० एल० सी०) ताल्लुक़ेदारान के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध देशभक्त तथा समाज-सेवी रावबहादुर सेठ शिवरत्न जी मोहता, (जिनका भारत में करोड़ों रुपयों का कारोबार है) के परामर्श का सौभाग्य भी संस्था को प्राप्त है। आपने यथाशक्ति संस्था को हर प्रकार की सहायता करते रहने का विश्वास दिलाया है।

मेरी स्थिति स्पष्ट है। आज से ११ वर्ष पूर्व मैंने जिन शुभ सङ्कल्पों को हृदय के एक कोने में छिपा कर काँपते हुए हाथों से जिस संस्था की नींव डाली थी, उसे यौवनावस्था में केवल अपने कार्यक्षेत्र की सीमा और भी विस्तृत करने के अभिप्राय से ही देशवासियों को सौंपा था, अतएव संस्था की उत्तरोत्तर वृद्धि देखना ही मेरे जीवन का लक्ष्य रहेगा। 'भविष्य' तथा 'चाँद' द्वारा भविष्य में देश तथा समाज की जो भी सेवाएँ होंगी, उसका सारा श्रेय इन कार्य-कर्ताओं को होगा और सारी त्रुटियों के लिए, जब तक संस्था क़ायम रहेगी, मैं अपने को ज़िम्मेदार समझता रहूँगा।

अन्त में मैं उन मित्रों, ग्राहकों, लेखकों, कवियों, चित्रकारों तथा संस्था के समस्त कर्मचारियों को हृदय की सारी पवित्रता और सचाई से धन्यवाद देता हूँ, जिनकी कृपा और सहयोग के फल-स्वरूप ही संस्था की सेवाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत हो सका और मुझे आशा है, संस्था के नए प्रबन्धकों को भी उनका वैसा ही सहयोग प्राप्त होता रहेगा, जिसका उपभोग मैंने पिछले ११ वर्षों में किया है। कविवर 'मीर' के शब्दों में :—

अब तो जाते हैं बुतकदे से 'मीर'
फिर आएँगे, गर ख़ुदा लाया।

चन्द्रलोक, इलाहाबाद
१ ली जनवरी, १९३३

रामरख सिंह सहगल

रीवाँ के ४० हज़ार दास

कितने ही पाठकों के लिए शायद आश्चर्य होगा कि ग़ुलामी की प्रथा अब भी इस देश में मौजूद है और कितनी ही देशी रियासतों में लाखों की संख्या में ऐसे अभागे व्यक्ति पाए जाते हैं, जिनको पशुओं की तरह ख़रीदा और बेचा जाता है और जो बिना किसी प्रकार के वेतन के जन्म भर एक व्यक्ति की सेवा करने को बाध्य होते हैं। ऐसी रियासतों में से एक रीवाँ की रियासत है, जहाँ सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस समय भी क़रीब चालीस हज़ार ग़ुलामों का अस्तित्व है। वहाँ इस प्रथा के प्रचलित रहने का एक विशेष कारण बतलाया जाता है। इस प्रदेश में ज़मीन के मालिक प्रायः उच्च जाति के लोग हैं, जो प्राचीन सामाजिक प्रथा के अनुसार हल छूना पाप समझते हैं। ऐसी दशा में खेती-बारी के काम के लिए उन्हें स्वभावतः अन्य लोगों से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है। पर यदि वे मज़दूरों से काम लें तो एक तो ख़र्च अधिक करना पड़े और दूसरे यदि समय पर काम करने वाले न मिलें तो बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़े। इसलिए उन्होंने एक बड़ी सरल तरकीब यह निकाल ली कि किसी ग़रीब व्यक्ति को २०-२५ रु० में ख़रीद लिया और उससे इच्छानुसार काम लेते रहे। ऐसे ख़रीदे हुए व्यक्ति जो कुछ काम करते हैं या कमाते हैं, वह सब मालिक का ही समझा जाता है और इसलिए वे कभी इस योग्य नहीं हो पाते कि मालिक को अपना मूल्य चुका कर स्वतन्त्र हो सकें। हर्ष की बात है, अब रीवाँ के महाराज का ध्यान इस अमानुषिक प्रथा की ओर गया है और उन्होंने इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिए पाँच व्यक्तियों की एक कमिटी नियत की है। साथ ही उन्होंने स्वयं अपने हाथ से हल चला कर ऊँची जाति वालों के लिए एक आदर्श भी उपस्थित कर दिया है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे अपना खेती-बारी का काम ख़ुद ही कर सकें और दासों के ऊपर ही निर्भर न रहें।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २२वाँ अधिवेशन दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में ग्वालियर में सानन्द समाप्त हो गया। अधिवेशन के व्यय के लिए स्वागत-समिति को ग्वालियर सरकार से १५००), म्युनिसिपल-बोर्ड से ८००) और महाराज की बड़ी बहिन श्रीकमला राजा से ५००) की सहायता मिल गई थी। इसके अतिरिक्त ग्वालियर आजकल व्यवसाय और उद्योग-धन्धों का एक केन्द्र बना हुआ है और वहाँ इस तरह के कार्य के लिए आवश्यक धन मिल सकना कठिन नहीं है। इसलिए धूमधाम, प्रतिनिधियों के स्वागत, पण्डाल की सजावट आदि की दृष्टि से अधिवेशन में किसी तरह की त्रुटि रहने की आशङ्का न थी। सभापति पं० श्यामबिहारी मिश्र का भाषण विद्वत्तापूर्ण था। मिश्र जी सुप्रसिद्ध साहित्यिक और हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पूर्ण ज्ञाता हैं, इसलिए आपके भाषण में हिन्दी-साहित्य के विकास और उसके महत्व का विशेष रूप से विवेचन होना स्वाभाविक ही था। प्रस्ताव भी काफ़ी तादाद में विभिन्न विषयों पर पास किए गए हैं। एक प्रस्ताव द्वारा आगामी वर्ष पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द जी ओझा को, उनकी ७०वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में सम्मेलन द्वारा एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया गया है। आचार्य द्विवेदी जी के पश्चात् ओझा जी का यह सम्मान सर्वथा उचित है। अपने पूज्य साहित्य-सेवियों का सम्मान करना प्रत्येक भाषाभाषी का कर्तव्य है, और इस दृष्टि से सम्मेलन का प्रस्ताव निस्सन्देह उपयोगी है। और भी कई काम के प्रस्ताव पास किए गए हैं। तो भी उन सबको पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि सम्मेलन के कार्य में शिथिलता आती जा रही है और यही दशा रही तो आज नहीं तो कल वह एक लकीर पीटने वाली संस्था मात्र रह जायगा। वर्तमान युग में कोरी सद्भावनाओं और महान आकांक्षाओं का उतना मूल्य नहीं है, जितना कि किसी ठोस कार्य का।

निम्न-लिखित नए ग्राहकों का चन्दा दिसम्बर तथा जनवरी माह में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१७८५	श्री० एच० केहाथमल जैन, त्रिचनापली	६॥)
३१७८६	श्रीमती राधिका देवी, पो० पश्चौनजिया	"
३१७८७	श्रीमती फूलमती देवी, पो० बैकुण्ठपुर	"
३१७८८	श्रीयुत रामप्रसाद, जमुनाब्रीज, आगरा	३॥)
३१७८९	श्रीयुत वेदनाथसिंह, येनआम ...	६॥)
३१७९०	मेसर्स डिप्टी साह रामलाल, पो० जार्जस्टी	४)
३१७९२	बाबू रामप्रसाद जी, मो० कटकुईया	६॥)
३१७९३	श्रीयुत शिवप्रसाद सिंह, पो० एस० नीमगाँव	३॥)
३१७९४	श्रीयुत एस० के० उमरुद्दीन, बिलासपुर	"
३१७९५	श्रीयुत गीतसिंह, पो० गङ्गाफ़री ...	६॥)
३१७९६	श्रीमती करनदेवी, बन्दर रोड, कराची	"
३१७९७	श्रीमती सतदेवी, बहावलनगर ...	"
३१७९८	श्रीयुत तारनीप्रसादसिंह, पो० कनौली बाज़ार	"
३१७९९	श्रीयुत यादव मोहन, कानपुर ...	"
३१८००	श्रीयुत रामलखनसिंह, दोस्तपुर ...	"
३१८०१	मिसेज़ एस० राया, लाहौर ...	"
३१८०२	श्रीजैन श्वेताम्बर लायब्रेरी, पाली ...	"
३१८०३	श्रीमती चन्द्रावती देवी, करनाल ...	"
३१८०४	श्रीयुत रामकृत लाल, पो० विक्रमगञ्ज	"
३१८०५	श्रीयुत राजमल गुप्त, सरावगी मुहल्ला अजमेर	"
३१८०६	सेठ जौहरमल जी डालमिया, कलकत्ता	६॥)
३१८०९	ठाकुर पुष्करसिंह, पो० एकेश्वर ...	"

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त-रक़म
३१८१०	श्रीयुत कृष्णचन्द्र, पेशावर ...	६॥)
३१८११	मिसेज़ बी० एन० इकसर, इन्दौर ...	"
३१८१२	पं० प्रभुलाल शर्मा, मु० पो० जुनियन	"
३१८१३	मैनेजर 'देशीमित्र', सुरत ...	"
३१८१४	डॉक्टर आर० बी० कोठारकर, कुरमी मुहल्ला, सिवनी	"
३१८१५	बाबू चन्द्रभूषणसिंह, पो० बाढ़ ...	"
३१८१६	श्रीयुत शमसेरबहादुर ख़ाँ, हरपालपुर	३॥)
३१८१७	श्रीजैन श्वेताम्बर, पब्लिक लायब्रेरी चौक, लखनऊ	५॥)
३१८१८	लोकहितकारी लायब्रेरी, डिबाई ...	५)
३१८१९	बाबू भरतजी साहू, पो० दरभङ्गा ...	६॥)
३१८२०	मिसेज़ आर० मेहता, पो० हरदोराना	"
३१८२१	पब्लिक ट्रस्ट लायब्रेरी, डिबोई ...	५॥)
३१८२३	कुमारी विमलादेवी, पो० जसुआना	६॥)
३१८२५	मिसेज़ करमचन्द बेरी, लाहौर ...	"
३१८२६	पं० गेन्दालाल चतुर्वेदी इन्दरगढ़, कोटा स्टेट	"
३१८२७	श्रीयुत हरिभाउ, चाँदा ...	"
३१८२८	श्रीश्याम मोहनदास, बनारस ...	"
३१८२९	लाला रामगोपाल गुप्त, दिलावरगञ्ज, शाहजहाँपुर	"
३१८३०	श्रीयुत द्वारकाप्रसाद साह, शेखावटी	६॥॥)
३१८३२	श्रीमती सरलादेवी, मेरठ ...	६॥)
३१८३३	श्रीमती कुसुमलता सरन, पो० दिघाघाट	"
३१८३४	मेसर्स खुबीलाल ग़रीबदास, नागपुर सिटी	"
३१८३५	श्रीयुत भगवानदास, न्यु दिल्ली ...	६॥)
३१८३६	सेक्रेटरी, रीडिङ्ग रूम मेडिकल कॉलेज, लखनऊ	३॥)
३१८३७	श्रीयुत ठाकुर दयालराम, पो० डुगरीजान	"

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१८४१	दीनबन्धु पुस्तकालय, पो० श्रोवरा ...	३॥)
३१८४२	पं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, बलिया ...	”
३१८४३	श्रीयुत नारायणसरनप्रसाद सिंह, पो० झनडाहा	”
३१८४४	श्रीमती किरणशशि भार्गव, मथुरा ...	६॥)
३१८४५	मेसर्स अलीमचन्द वसन्तमल, थरपारकर	”
३१८४६	श्री० वी० एल० वर्मा, पो० मोटाला	”
३१८४७	श्री० रामभरोसे लाल गर्ग, कपरापाथ	”
३१८४८	श्री० रामकृष्ण मिसन लायब्रेरी, पो० कटिहार	”
३१८४९	श्री० आर० एस० शर्मा, पो० जमालपुर	”
३१८५०	सेक्रेटरी, मित्र-मण्डल, मु०पो० धमनोद	”
३१८५१	मेसर्स इन्द्राजमल महेदीन, सोनापतमण्डी	”
३१८५२	श्री० लालकरनसिंह, कानपुर ...	”
३१८५३	श्रीमती ज्वालादेवी निको, पेशावर सिटी	”
३१८५४	श्रीयुत ज्वालाप्रसाद, आगरा ...	”
३१८५५	पं० दुलीचन्द नियादरमल, मण्डी रोहतक	”
३१८५६	श्री० सी० एस० चौहान, मैनपुरी ...	”
३१८५९	श्रीमती कस्तूरीदेवी, पो० अजरारा...	”
३१८६०	मुन्शी रामचन्द्र राव, मङ्गलोर ...	”
३१८६६	श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद, राँची ...	”
३१८६७	श्रीयुत जानकीनाथ शर्मा, दिल्ली ...	”
३१८६८	हकीम लक्ष्मीनारायण, फ़तेहगढ़ ...	३॥)
३१८७३	श्रीयुत वी० नारायण जी, बम्बई नं० २	६॥)
३१८७४	श्रीमती कटोरी देवी, बदायूँ सिटी	३)
३१८७५	विद्याप्रचारक पुस्तकालय, मु० पो० बेरी	५)
३१८७६	श्रीयुत चेतनदास जी वकील, बीकानेर	६)
३१८७७	श्री० सेक्रेटरी मुफ़्त वाचनालय, मु० बीड	६॥)
३१८७८	श्रीयुत टी० आर० सक्सेना, पलसाना	३॥)
३१८७९	प्रोपराईटर शुद्ध कोकोज़िम एण्ड प्रोविजन स्टोर्स, हज़रतगञ्ज, लखनऊ ...	६॥)
३१८८०	मेसर्स रामचन्द्र मोतीलाल, जयपुर	३॥)
३१८८१	श्रीयुत लक्ष्मीनारायण जी, जयपुर सिटी	३॥)
३१८८२	मिस्टर रामचरनसिंह, पो० नादी, फ़िजी	८॥=)
३१८८३	सार्वजनिक पुस्तकालय, मलकिया पो० अभ्यासन	६॥)
३१८८४	कपूर सार्वजनिक पुस्तकालय, ग्वारा	६॥)
३१८८७	श्री० एच० आर० कनाघट, मण्डाथा, मण्डले	”
३१८८८	पं० यमुनाप्रसाद मवलैक, अपर बर्मा	,,
३१८८९	श्री० एस० के० पी० पोखल, पो० जवाल	,,
३१८९०	श्री० कुँवरानी जी, श्री० बीकानेरी जी साहिबा, कोटा	,,
३१८९१	श्रीयुत प्रेमनारायण मिश्र, पो० बर्मी	२)
३१८९३	श्री० ज्वालाप्रसाद गुप्त बजाज़, बिजनौर	६॥)
३१८९४	मिस्टर रघुवंशबली, पो० नैनी ...	,,
३१८९५	सेक्रेटरी हीरा रिडिङ्गरूम, दिल्ली ...	५)
३१८९६	श्री० खोजवाँ आदर्श पुस्तकालय, पो० लङ्का	”
३१८९७	शाह बलदेव चुन्नीलाल जी, सिनोर, बरोदा स्टेट ...	६॥)
३१८९८	मिस कौशिल्या देवी, डगलासपुरा, लायलपुर	,,
३१८९९	लाला भोलानाथ लालचन्द, मथुरा	५)
३१९००	सेक्रेटरी, नानजी लायब्रेरी, पो० बक्स नं० ८४ उगण्डा	८॥)
३१९०१	श्री० द्वारकाप्रसाद जी मालगुज़ार, पो० रहटगाँव	६॥)
३१९०२	श्रीयुत सूरजनारायण जी अरोरा, जयपुर	,,
३१९०३	मेसर्स गङ्गाराम चिमनलाल, मण्डले (बर्मा)	६॥)
३१९०४	मेसर्स सुगनचन्द मन्नालाल, अजमेर	”
३१९०७	मेसर्स राधाकृष्ण गङ्गाराम, राजनाँदगाँव	”
३१९०८	प्रेसिडेण्ट, दी श्याम एसपोर्टिङ्ग क्लब, पो० श्याम फ़ैक्टरी ...	”
३१९०९	कमला राजा वाचनालय, कमलागञ्ज, शिवपुरी	”
३१९१०	श्रीयुत जितेन्द्रनारायणसिंह, पो० बिशनपुर बाज़ार	”
३१९११	श्री० ओ० एन० मुट्टू, वालेस रोड, कराची	३॥)
३१९१२	श्रीयुत शालिगरामप्रसाद पो० नगर-नोशा (पटना)	”

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१६१४	श्रीयुत कन्हैयालाल, मैशिना ...	६।।)
३१६१५	श्रीयुत बालगोविन्दप्रसाद, गया ...	"
३१६१६	श्रीयुत हज़ारीलाल गुप्त, शाहजहाँपुर	"
३१६१७	लाला ख़ुशीराम जी, मुज़फ़्फ़रनगर	"
३१६२१	मिसेज़ सत्यवती मलहोत्रा, पो० मियाँचनू	"
३१६२२	मिसेज़ योगेश्वरदयाल, दिल्ली ...	"
३१६२३	श्रीमती रुक्मिणीदेवी, बीकानेर ...	"
३१६२४	बाबू हरलाल जी, पिपरिया ...	"
३१६२५	श्री० वी० एल० विद्यार्थी, मङ्गलोर	"
३१६२६	इम्प्रेस मील वेलफ़ेयर वर्क्स, नागपुर	६।।)
३१६३०	सेक्रेटरी, आर्य स्त्री-समाज, रुड़की ...	६।।)
३१६३१	श्रीयुत मनसुखलाल मोदी, अदन कैम्प	"
३१६३२	सेक्रेटरी, आवाराज क्लब, आवागढ़ (एटा)	६)
३१६३३	श्रीयुत दुर्गाप्रसाद वर्मा, वार्धा ...	२)
३१६३४	कुँवर रामराजसिंह, भिखनगाँव ...	६।।)
३१६३६	श्री० एस० एल० शर्मा, धनधुका (अहमदाबाद)	"
३१६३७	श्रीयुत बाबूराम जी वर्मा, पो० कटगी	३।।)
३१६३८	श्रीमती राधादेवी, चौक, लखनऊ ...	६।।)
३१६३९	श्रीयुत सरजूप्रसाद वर्मा, पो० कासमर	"
३१६४०	श्रीयुत अगमप्रसाद, मु० पो० जरायकेला	२)
३१६४३	पं० हनुमानप्रसाद, विजयपुर ...	६।।)
३१६४४	मिसेज़ विद्यावती भाटिया, जबलपुर	"
३१६४५	मेसर्स कौशलकिशोर शिवकुमार, अलीगढ़	"
३१६४६	मिसेज़ बी० कुमार, शिमला हील ...	"
३१६४७	श्रीयुत नवलकिशोर गौड़, जयपुर	३।।)
३१६४८	श्रीयुत भावसिंह पटेल, बारवानी स्टेट	३।।)
३१६४९	श्रीयुत ब्रह्मानन्द जी, हसनपुर, मुरादाबाद	६।।)
३१६५०	श्रीयुत पद्मचन्द, जौहरी बाज़ार, जयपुर	"
३१६५१	मिसेज़ दवे, जबलपुर ...	"
३१६५२	श्रीयुत इन्द्रसेन, जलन्धर सिटी ...	"
३१६५३	मिस्टर अनन्तप्रसाद भटनागर, अमरोहा, मुरादाबाद	"
३१६५४	श्रीयुत नरेन्द्रसिंह, मु० पो० मोकहना	"
३१६५६	श्रीयुत इशाक मुहम्मद, पो० छरेरा	"
३१६६३	मिसेज़ कपूर, अजमेर ...	६।।)
३१६६६	श्रीयुत बच्चूनारायण श्रीवास्तव, पो० मनसी, मुङ्गेर	"
३१६६७	श्रीयुत लीलाधर पटवारी, पो० सङ्गरिया	"
३१६६८	श्रीयुत कालूराम अग्रवाल, पो० कलचीनी	"
३१६६९	मेसर्स गनेशमल नानकचन्द, श्रीगङ्गानगर	३।।)
३१६७०	श्रीयुत बनवारीप्रसाद सिंह, पो० रोशनगञ्ज	"
३१६७१	पं० युगलकिशोर पाठक, मु० पो० थाना	"
३१६७३	बाबू शिवप्रसाद जी, अमरोहा ...	"
३१६७४	सेठ अनन्तलाल जी, जयपुर सिटी	६।।)
३१६७५	मिसेज़ ए० पी० माथुर, काश्मीरी गेट, दिल्ली	"
३१६७६	श्री० बी० आर० कोविद, गोला गोकरननाथ (खेरी)	"
३१६७७	श्रीयुत लाहौरीमल जी, लुधियाना...	"
३१६७८	मिसेज़ सुशीलाबाई, पचमढ़ी ...	"
३१६७९	श्री० गुलाबसिंह वर्मा, जयपुर सिटी	"
३१६८०	मेसर्स प्रतापसिंह गुरुप्रसाद, अकोला	"
३१६८१	वैद्यराज महादेवप्रसाद वर्मा, ब्यावर	"
३१६८२	मिसेज़ अविनाशचन्द्र, धोलपुर स्टेट	६।।)
३१६८३	मिसेज़ माताप्रसाद, बम्बई ...	"
३१६८५	श्री० राजकिशोरी देवी, पो० रुद्रपुर	"
३१६८६	बा० रामलाल, मारवाड़ जङ्क्शन ...	"
३१६८७	श्री० श्याम बाबू जायसवाल, पो० दीनापुर कैण्ट	"
३१६८८	बाबू राजेन्द्रप्रसाद, कृष्ण-भवन, गया	"
३१६८९	श्री० जगन्नाथ राम, पो० रातू, राँची	"
३१६९०	मैनेजर किशोर आर्य रिडिङ्ग रूम, डेरा भोपीपुर, काँगड़ा ...	"
३१६९१	सेक्रेटरी, कुण्टी लायब्रेरी, रामपुरा	६)
३१६९२	मेसर्स लाडूराम मङ्गीलाल जौहरी, जयपुर सिटी	६।।)
३१६९३	श्रीयुत मीनालाल, बाकरगञ्ज, पटना	"
३१६९४	लैन्स नायक देवसिंह, लैन्सडाउन	"
३१६९५	मिसेज़ राजकुमारी शुक्ला, बाराबङ्की	"

निम्न-लिखित पुराने ग्राहक नम्बर के ग्राहकों के रुपए हमें मिले हैं।

ग्राहक न०	प्राप्त रक़म	ग्राहक न०	प्राप्त रक़म
३४५६	६॥)	१६२५२	६॥)
२९८१३	,,	१५७७९	,,
७७३८	,,	१४६१०	,,
२९७१४	३॥)	१०१७३	,,
४५६७	६॥)	७६८३	,,
९९४६	,,	१२५१६	,,
२७१२३	,,	२३०८३	,,
३००४०	,,	२९५९१	,,
२८६३	,,	१९०५८	,,
२१४२७	,,	२९९५५	,,
२९९३०	,,	२९८५९	५)
७९२५	५)	२३९५६	६॥)
१५९२०	६॥)	२३५५३	,,
२७२८९	,,	२८४७६	१॥)
५००५	४।।।≡)	२७४७३	६॥)
२७६२६	६॥)	२३७४६	,,
२४८९४	५)	१८४४१	,,
१८६३८	६॥)	११३७५	,,
१२३२७	,,	१२५८३	,,
१२७२१	,,	१२१३३	,,
१३५७६	,,	१२२३२	,,
२८६३२	,,	३००३७	,,
४१८५	,,	२४००६	,,
२४४६८	,,	२४५५३	,,
२३८२३	,,	२४००९	,,
२४००४	,,	२४६९६	,,
२३८०९	,,	२४४६६	,,
२३७८७	,,	२६२४८	,,
२६१७८	,,	२६१३०	,,
२६३९२	,,	२३४७९	,,
२३५०१	,,	२२५१३	,,
२३३५१	,,	२३०८२	,,
२३३८४	,,	२३४२०	,,
३१२५०	,,	२७१९६	,,
२७३८५	,,	२७३०४	,,

ग्राहक न०	प्राप्त रक़म	ग्राहक न०	प्राप्त रक़म
२७२६०	६॥)	२७३२७	६॥)
२७३६७	,,	२७३३९	,,
३०९१२	,,	२७४२९	,,
३०९२१	,,	१६१४२	,,
१६०९५	,,	१६१३८	,,
१५९७१	,,	१६२२६	,,
१५९७२	,,	१६०७१	,,
१६१३२	,,	१६०६६	,,
१६२०१	,,	१६५१४	,,
२९८२९	,,	२९८३०	,,
२९८७०	,,	२९८५६	,,
२९८४९	,,	९२७	,,
३०१७२	,,	३२४०	,,
९४२	,,	३०२७	,,
३९७५	,,	४२०१	,,
७८४९	,,	७६३५	,,
८०६८	,,	११२८९	,,
८०४१	,,	७५२८	,,
९४५४	,,	८०३८	,,
३००१०	,,	३०११४	,,
३०११३	,,	३०००३	,,
२९९८५	,,	२९८६६	,,

निम्न-लिखित ग्राहक नम्बर के ग्राहकों को मार्च सन् १९३३ का अङ्क मार्च के पहले सप्ताह में वी० पी० द्वारा सेवा में भेजा जाएगा। आशा है, वी०पी० स्वीकार कर वाधित करेंगे।

६८५	७८२	९८६	१०६६	१०७४	१०८८
१०९०	१०९२	१०९८	११०६	११२१	११२८
११३४	११३८	११३९	११४४	११४७	११६१
११६५	११७४	११७५	११७६	१३४९	१४०९
१९६४	२००१	२०१४	२०२८	२०३०	२०३१
२०४५	२०७६	२०८९	२१०२	२११५	२६१७
३३८३	३४२६	३५१०	३५२०	३५२२	३५२४
३५२९	३५३३	३५८४	३६०७	३६१०	३६२७
३६४४	३६४८	४२६५	४२८८	४४७२	५३६९
५३७९	५३८४	५३८९	५४१४	५४४२	५४६६
५५२२	५५२४	५५४२	५५४५	५५५७	५५६७

५५७७ ५५७८ ५५७९ ५६३८ ६६६३ ६७०९
६७१२ ८०५५ ८०८९ ८१२८ ८१३९ ८१४१
८१५४ ८१५६ ८२२६ ८२५७ ८२७९ ८३०५
८५१४ १०३५८ १०४४२ १०५१९ ११८८४ १२३२३
१२७०१ १२७४४ १२७५१ १२७६६ १२७७८ १२७८१
१२८१२ १२८१६ १२८२१ १३८३४ १२८३५ १२८५०
१२८६३ १२८७५ १२८८२ १२८८६ १२८९० १२९०१
१२९०६ १२९१५ १२९२५ १२९२९ १२९३० १२९५४
१२९६१ १२९६२ १२९८३ १२९८६ १२९८७ १४४२९
१४४६४ १४४७६ १५९०६ २४७७१ २४७७५ २४७९६
१६५१३ १६५९१ १६६५९ १६७०१ १६७५६ १६७५८
१६७६९ १६७७० १६७९५ १६८२६ १६८२७ १६८२८
१६८३२ १६८४२ १६८६७ १६८८२ १६८८३ १६८९२
१६९२५ १६९३६ १६९३७ १६९३८ १६९३९ १६९४०
१६९५३ १६९५५ १६९६४ १६९७८ १६९८९ १७०००
१७००१ १७०११ १७०१६ १७०२० १७०३५ १७०३७
१७०५३ १७०५४ १७०५७ १७०५८ १७०६६ १७०७८
१७०७९ १७०८२ १७१२० १७१६१ १७१६२ १७१६६
१७२७५ १७३२९ १९४७८ १९६१६ १९८०६ १९९८०
२०१७६ २०५२५ २२५०९ २४२४८ २४३७६ २४५९४
२४५९५ २४६०५ २६६२८ २४६३१ २४६४२ २४६४३
२४६४५ २४६५१ २४६५२ २४६७२ २४६७४ २४६८१
२४६८२ २४६८६ २४६८७ २४६९७ २४६९९ २४७१५
२४७१८ २४७२९ २४७३० २४७३२ २४७३५ २४७४९
२४७५३ २४७५६ २४७५७ २४७५९ २४७६८ २४७६९
२४८०९ २४८१५ २४८१६ २४८२२ २४८२५ २४८४४
२४८५९ २४८७१ २४८७३ २४८७५ २४८८४ २४८९५
२४८८७ २४८८८ २४८९४ २४९०६ २४९०८ २४९१९
२४९२२ २४९३० २४९४१ २४९४५ २४९४८ २४९५८
२४९६३ २४९६४ २४९६६ २४९६९ २४९७० २४९७८
२४९९४ २४९९९ २५००३ २५०२३ २५०७२ २५०७८
२५०८७ २५०८८ २५०९१ २५०९६ २५०९९ २५१०४
२५१०७ २५१०८ २५११२ २५११५ २५१३२ २५१३३
२५१५५ २५१६१ २५१६२ २५१७५ २५१८२ २५१८३
२५१८४ २५१८७ २५१८९ २५१९४ २५२१६ २५२२८
२५२६१ २५२६२ २५२७१ २५२९३ २५३०९ २५३१३
२५३१७ २५३२८ २५३४८ २५३४९ २५३८१ २५३९१

२५४१८ २५४२० २५४२५ २५५९८ २५७७३ २५७८८
२५८२८ २५८३८ २५८४६ २५८४९ २५८७२ २५८७३
२५८७५ २५८७८ २५९०७ २६०४७ २६२०२ २६५८२
२६६१० २७६२७ २७६९१ २७६९२ २७६९३ २४८०७
२७६९५ २७७०३ २७७०४ २७७१३ २७७४२ २७७५२
२७७७० २७७७५ २७७७७ २७७७८ २७७७९ २७७८२
२७७८५ २७७८८ २७७९० २७७९३ २७७९४ २७७९५
२७७९६ २७८०० २७८०१ २७८०३ २७८०६ २७८२०
२७८२४ २७८२६ २७८२८ २७८३१ २७८३३ २७८३५
२७८३९ २७८४९ २७८५० २७८५१ २७८५४ २७८५५
२७८५७ २७८५८ २७८६३ २७८६९ २७८६६ २७८७०
२७८७४ २७८७५ २७८७९ २७८८० २७८८५ २७८८९
२७८९३ २७८९४ २७८९५ २७८९० २७९०१ २७९०२
२७९०३ २७९०९ २७९१० २७९११ २७९१३ २७९१४
२७९२३ २७९३० २७९३३ २७९३६ २७९३८ २७९४५
२७९४६ २७९४९ २७९५२ २७९५६ २७९४९ २७९५२
२७९५६ २७९५७ २७९६१ ५७९७९ २७९८० २७९८१
२७९८३ २७९८६ २७९८८ २७९९० २७९९५ २८०००
२८००१ २८०१० २८०१७ २८०१८ २८०६१ २८०६४
२८११० २८१८७ २८२०६ २८२३३ २८२६९ २८३२९
२८५६७ २८७२९ २८७६२ २८८३८ २८८४२ २८८६६
२९०१५ २९०८८ २९०४४ २९०६७ २९०६८ २९१५३
२९१९३ २९८११ ३००८० ३००८८ ३००९८ ३०१०७
३०११० ३०११६ ३०११८ ३०१२० ३०१२२ ३०१२४
३०१२८ ३०१२९ ३०१४६ ३०१४७ ३०१५१ ३०१५२
३०१५८ ३०१६० ३०१६४ ३०१६५ ३०१६८ ३०१६९
३०१७० ३०१७० ३०१७७ ३०१८० ३०१८१ ३०१८३
३०१९२ ३०१९३ ३०१९४ ३०१९५ ३०१९६ ३०१९८
३०१९९ ३०२०० ३०२०१ ३०२०८ ३०२०९ ३०२१०
३०२११ ३०२१३ ३०२१४ ३०२१६ ३०२२७ ३०२३०
३०२३१ ३०२३२ ३०२३३ ३०२३४ ३०२३५ ३०२३६
३०२३७ ३०२३२ ३०२३९ ३०२४९ ३०२५१ ३०२५२
३०२५३ ३०२५९ ३०२६० ३०२६१ ३०२६२ ३०२६३
३०२७६ ३०२७९ ३०२८१ ३०२८२ ३०२८९ ३०२९४
३०२९६ ३०२९७ ३०२९८ ३०२९९ ३०३०० ३०३०१
३०३०२ ३०३०३ ३०३०४ ३०३१० ३०३११ ३०३१२
३०३१५ ३०३३६ ३०३४५ ३०३४६ ३०३६१ ३०३८७
३०३९३ ३०४६८ ३०५५३ ३८०८७ २८०९०

एक हेडमास्टर का कथन

अवश्य पढ़िए

अपने घर के लोगों तथा देशवासियों को कठिन से कठिन बीमारियों से मुक्त करना चाहते हों, तो एक जिल्द "बृहत् बायोकेमिक विधान" पढ़िए। इसमें होमियोपैथिक के अन्तर्गत चुने हुए दवाइयों का तथा हरएक प्रकार की जाँच का पूरा वर्णन है। केवल एक यही किताब पढ़ कर आप एक प्रवीण डॉक्टर बन सकते हैं। अन्यथा मूल्य वापस। 'विश्वमित्र' आदि से प्रशंसित। सजिल्द लगभग ४०० पृष्ठ, पुस्तक का मूल्य ३।) कुछ दिन के लिए ॥=) कमीशन दिया जायगा।

पता—एम० आर० बैनर्जी, हेडमास्टर

जामताड़ा S.P.

DEGREES BY CORRESPONDENCE.

H.L.M.S., H.M.D., H.M.B.E.H.Ph. D.Sc.H. Bhishagvar, Hakemisher, etc., Homœo, Ayur-Unani degree by post. Homœo-Materia-medica Rs. 5. Homœo-Practice of Medicine Rs. 4. Send 2 anna stamps for prospectus :— Indian Homœopathic Institute & Society (Regd.) P.O. Mahuva, (Kathiawar).

केसर-पाक

यह अनुभूत और आनन्दकारी पाक प्रत्येक स्त्री-पुरुष तथा बच्चे-बूढ़े के लिए बहुत ही लाभदायक है। इसके सेवन से हर प्रकार का भय, रञ्ज, शोक, घबराहट, हैरानी, परेशानी व थकावट तथा दिल व दिमाग़ की कमज़ोरी, नज़ला, ज़ुकाम आदि रोग दूर होकर शरीर पुष्ट, मोटा और बलवान होता है और चित्त सदा प्रसन्न रहता है, पाचन है; व भूख ख़ूब लगाता है। मूल्य १ पाव का डब्बा ३० दिन के लिए २) डाक-व्यय अलग। मिलने का पता :—

नेशनल फ़ारमेसी करनाल (पञ्जाब)

NATIONAL PHARMACY

Karnal, (Punjab)

प्रसव के पीछे की दुर्बलता दूर करने के लिए

सुख-सञ्चारक

ही एकमात्र दवा है

जो अङ्गूरी दाखों से बना हुआ, मधुर और स्वादिष्ट होने के कारण चेहरे पर सुर्ख़ी और बदन में स्फूर्ति लाता है, भूख बढ़ाता है, जिससे बदन में ख़ून और मांस बढ़ता है, दस्त साफ़ लाता है, स्त्री-पुरुष, बूढ़े, बालक सभी को सब ऋतुओं में उपकारी है। क़ीमत बड़ी बोतल २), छोटी बोतल १) रु०!

व्यापारियों तथा सद्गृहस्थों को नमूना मुफ़्त। ख़रीदते समय सुख-सञ्चारक का नाम देख कर ख़रीदिए। सब दुकानदारों और दवा बेचने वालों के पास मिलेगा।

गर्भाशय के रोगों की निश्चित दवा

प्रदरारि

श्वेत-प्रदर, रक्त-प्रदर, ऋतु-कष्ट, अनियमित ऋतु आदि गर्भाशय के सब रोगों की एकमात्र दवा है। क़ीमत १॥) रु०!

मँगाने का पता—सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

आपके नाम की असली सोने की अँगूठियाँ
मोहक और आकर्षक

चौकोर नगीने पर रङ्गीन मीने की ज़मीन और उस पर आपके नाम का पहिला हरूफ़ सोने के सुनहले रूप में। 'ए' से लेकर 'ज़ेड' तक जो हरूफ़ चाहिए, फ़िट करवा लीजिए। पूरे विश्वास के साथ मँगाइए। दाम ९ करेक्ट असली सोने की ५), १४ करेक्ट ८) और १८ करेक्ट १०)। दो मँगाने से डाक-ख़र्च माफ़।

पता—स्वीटज़रलैण्ड वाच कम्पनी
C/o पोस्ट बॉक्स नं० ६७०१, कलकत्ता

बवासीर की अचूक दवा

अगर आप दवा करके निराश हो गए हों, तो एक बार इस पेटेण्ट दवा को भी आज़मावें। ख़ूनी या बादी, तथा चाहे पुराना, १५ दिन में जड़ से आराम। ३० दिन में शरीर बलवान न हो तो चौगुना दाम वापस। मूल्य १५ दिन का ३) रु०। ३० दिन का ५) रु०। अपना पता पोस्ट तथा रेलवे का साफ़-साफ़ लिखें।

पता—शुक्र औषधालय,
लहरिया सराय, दरभङ्गा

श्वेत-कुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता! यदि इस जड़ी के तीन ही दिन के लेप से सुफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना दाम वापस दूँगा। जो चाहें ~) का टिकट भेज कर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य ३) रु०।

पता—वैद्यराज पं० महावीर पाठक,
नं० १२, दरभङ्गा

सिर्फ़ दस रुपए में
ऑफ़िस क्लाक और वॉल क्लाक

जिसके लिए ६ वर्ष की गारण्टी दी जाती है।
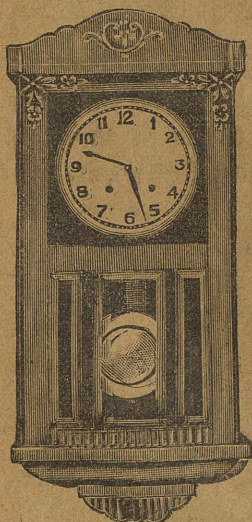
बिल्कुल नए ढङ्ग का रेगुलेटर, बहुत ठीक पेण्डुलम की चाल, और चाँदी की धातु से बना मनोहर डायल, वॉलनट या ओक की लकड़ी का केस जिस पर बढ़िया पॉलिश की गई है। घण्टा और आधा घण्टा बजाती है। एक बार चाबी लगाने से आठ दिन चलती है। सूरत ठीक चित्र से मिलती हुई है। क़ीमत ६ इञ्च के डायल वाली क्लाक की १०) और ८ इञ्च डायल वाली की १४॥)। ऑर्डर के साथ ३) पेशगी और रेलवे-स्टेशन का नाम भेजना ज़रूरी है। ख़रीदारों को नए साल का कलेण्डर मुफ़्त भेजा जायगा।

सोल एजेण्ट—यङ्ग इण्डिया वाच कम्पनी,
१५९ सी, मछुआ बाज़ार, कलकत्ता

नए साल की भारी बिक्री!

कम मूल्य में सब से अधिक विश्वास योग्य

लिवर कलाई की घड़ियाँ। मज़बूत मशीन तथा नए से नए डिज़ाइन
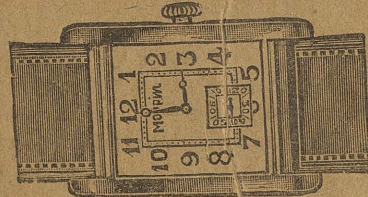
और फ़ैशन वाली अब केवल बहुत ही कम मूल्य पर बेची जाती हैं। अपनी घड़ियों को प्रसिद्ध करने के लिए हमने बिक्री के लिए नया माल मँगाया है। मूल्य ३) रु० में गोल, ३॥) में बढ़िया और ४॥) में सब से बढ़िया। न टूटने वाली जार प्रूफ़ लिवर पॉकेटवाच २।) में, बढ़िया ३।) में, सब से बढ़िया ४।), में ऑफ़िस की दीवाल घड़ी १६"×१२" नाप की ७॥) में और २१"×१४" वाली १०॥) में। केवल दीवाल घड़ियों के ऑर्डर के साथ नज़दीकी स्टेशन को लिख कर ३) पेशगी भेजने चाहिए।

नोट—प्रत्येक पारसल के साथ एक १९३३ का सुन्दर कलेण्डर और डायरी तथा एक फ़ाउण्टेन बिलकुल मुफ़्त भेजे जाते हैं। ३ घड़ियाँ एक साथ ख़रीदने वालों को डाक तथा पैकिङ्ग-ख़र्च माफ़।

प्रिन्सली इण्डिया वाच कम्पनी,
पो० बॉक्स नं० १ (सेक्सन सी-ए) कलकत्ता

शीघ्रता कीजिए ! थोड़ी सी प्रतियाँ और शेष हैं ! Regd. No. A—1154

केवल एक मास में ही पहला संस्करण (दो हज़ार) समाप्त हो चला !

दिल की आग उर्फ़ दिल जले की आह

यह उपन्यास नहीं, उपन्यासों का चक्रचूड़ामणि है; औपन्यासिक कलाओं का अद्भुत चमत्कार है।

हृदयग्राही रोचकताओं का अपूर्व भण्डार है ! उपन्यास-जगत में एक अलौकिक सृष्टि है !

इस रङ्ग, इस ढङ्ग, इस कोटी और इस चोटी का उपन्यास आपको कहीं भी ढूँढ़ने से न मिलेगा।

पृष्ठ-संख्या ९००; सर्व-साधारण के लिए मूल्य ५) से घटा कर ४) कर दिया गया ! स्थायी ग्राहकों से ३)

लेखक—श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Munshi Naujadik Lal Srivastava, Editor, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad